View metadata, citation and similar papers at core.ac.uk

brought to you by CORE

provided by Etheses - A Saurashtra University Library Service

Saurashtra University
Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Vala, Devi R., 2009, *हिन्दी की सतसई परम्परा के संदर्भ में किशोर सतसई का समीक्षात्मक अनुशीलन*, thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/273

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

''हिन्दी की सतसई परम्परा के संदर्भ में किशोर सतसई का समीक्षात्मक अनुशीलन''

(A Critical Study of the Kishor Satsai with a Reference of Hindi Satsai Tradition)

(सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी.
(हिन्दी) की उपाधि के लिए
प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध

❖ ***प्रस्तुत कर्ता*** ❖

देवी आर. वाला
शोधछात्रा हिन्दी विभाग,
सौराष्ट्र विश्व विद्यालय,
राजकोट - ३६० ००५. (गुजरात)

❖ ***शोध - निर्देशक*** ❖

डॉ. गिरीशभाई त्रिवेदी
प्राध्यापक हिन्दी विभाग,
सौराष्ट्र विश्व विद्यालय,
राजकोट - ३६० ००५ (गुजरात)

❖ ***वर्ष - २००९*** ❖

शपथ - पत्र

मैं यहाँ दावे के साथ कहती हूँ कि मेरा यह शोध-कार्य बिल्कुल मौलिक और स्वयं स्फूर्तः है। कही भी अर्थात् अन्य किसी विश्व विद्यालय मैं इस विषय पर कोई कार्य नहीं हुआ है।

साथ ही साथ मैं यह कह सकती हूँ कि साहित्यकार किशोर काबरा के व्यक्तित्व और कृतित्व को और गहराई से जानने के लिए मेरा शोध प्रबन्ध उपयोगी सिद्ध होगा।

दिनांक :

शोध - छात्र

(देवी वाला)

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री देवी वाला ने मेरे निर्देशन में यह शोध - प्रबन्ध ''**हिन्दी की सतसई परम्परा के संदर्भ में किशोर सतसई का समीक्षात्मक अनुशीलन**'' सौराष्ट्र विश्वविद्यालय राजकोट की पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि के लिए तैयार किया है। इन्होंने उक्त विषय पर यथाशक्ति अध्ययन एवं विश्लेषण - विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरुपण किया है। इस शोध - प्रबन्ध का कोई अंश अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

दिनांक :

शोध - निर्देशक

(डॉ. गिरीश. जे. त्रिवेदी)
हिन्दी भवन
सौराष्ट्र विश्व विद्यालय
राजकोट.

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ नं.
१	❖ भूमिका :	०७-०८
	१. विषय सम्बन्धी दो बातें	
	२. शोध-कार्य का उद्देश्य	
	३. शोध-विषय की उपयोगिता	
	४. शोध-प्रबन्ध का कार्यक्षेत्र	
	५. सामग्री संकलन की दिशा	
	६. प्रस्तुत शोध कार्य के विचार बिन्दु	
२	❖ कृतज्ञताज्ञापन :	०९-१०
३	अध्याय : १	११-५५

डॉ. किशोर काबरा : जीवन एवं कवन

❖ व्यक्तित्व :

❖ भूमिका

१.१ जन्मकाल एवं बाल्यकाल

१.२ मन्दसोर का नन्दकिशोर

१.३ शिक्षा - दीक्षा

१.४ काव्य - संस्कार

१.५ जीविका

१.६ विवाह एवं परिवार

१.७ अहमदाबाद आगमन

१.८ नौकरी से त्यागपत्र

१.९ स्वतंत्र लेखन

१.१० भावि योजना

१.११ सालस व्यक्तित्व

❖ ***कृतित्व :***

प्रकाशित साहित्य :

(क) काव्य-संग्रह

१. सारथी, मेरे रथ को लौटा ले।

२. साले की कृपा

३. टूटा हुआ शहर

४. ऋतुमती है प्यास

५. हाशिएँ की कविताएँ

६. मैं एक दर्पण हूँ

७. चंदन हो गया हूँ

(ख) किशोर सतसई

(ग) प्रबन्ध काव्य

(घ) शोध प्रबन्ध एवं निबन्ध

(च) रीतिकालिन काव्य में शब्दालंकार

(छ) साहित्यिक निबन्ध एवं अध्ययन, मनन और अनुशीलन

(ज) बाल-साहित्य

(झ) अनुवाद

(ट) संपादन एवं संकलन

(ठ) संयुक्त संपादन

(ड) कृतियों के अन्य भाषाओं में अनुवाद

(ढ) शोध प्रबन्ध एवं समीक्षा ग्रंथ

(ण) अन्य संदर्भ ग्रंथ एवं विशेषांक

(त) सहयोगी संकलन : ७५ पुस्तकें

(थ) लघुकथा - संग्रह

❖ ***संदर्भ***

४ ***अध्याय-२*** ५६-७१

संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य में सप्तशती परंपरा

❖ प्रस्तावना

❖ परंपरा का स्वरुप

❖ सप्तशती का अर्थ

❖ संस्कृत में संख्यापरक ग्रंथो की परम्परा

❖ सात की संख्या का आकर्षण

❖ मुक्तक शैली

❖ सप्तशती परंपरा का आदि ग्रंथ

❖ पूर्ववर्ती साहित्य में श्रृंगार निरुपण

❖ सप्तशती परम्परा की अक्षुण्णता

❖ ***संस्कृत-प्राकृत सतसई - परंपरा परिचय***

- ❖ हाल सतसई
- ❖ आर्या सप्तशती
- ❖ भर्तृहरि शतक
- ❖ अमरुक शतक
- ❖ चौर पंचाशिका व आर्या सप्तशती
- ❖ संदर्भ

५ ***अध्याय-३*** ७२-१२४

हिन्दी सतसई साहित्य : ऐतिहासिक विरासत

- ❖ प्रस्तावना
- ❖ हिन्दी सतसई परिचय
- ❖ सतसई भेद
- ❖ तुलसी सतसई
- ❖ रहीम सतसई
- ❖ मतिराम सतसई
- ❖ वृन्द सतसई
- ❖ रसनिधि सतसई
- ❖ राम सतसई
- ❖ वीरसतसई
- ❖ विक्रम सतसई
- ❖ बिहारी सतसई
- ❖ हरिऔध सतसई
- ❖ संदर्भ

६ ***अध्याय-४*** १२५-१७३

किशोर सतसई - कथ्य एवं शिल्प

- ❖ ***प्रस्तावना***
- ❖ ***किशोर सतसई में निरुपति कथ्य के विविध आयाम***

१.१ व्यक्ति विषयक संवेदना

१.२ समाज विषयक संवेदना

१.३ संस्कृति विषयक संवेदना

१.४ राजनीति विषयक संवेदना

१.५ आधुनिकता सम्बन्धी संवेदना

❖ 'किशोर सतसई' में शिल्प निरुपण

❖ शिल्प

❖ भाषा

❖ अलंकार

❖ बिम्ब

❖ प्रतीक

❖ रस

❖ गुण-दोष

❖ निष्कर्ष

❖ संदर्भ

७ ***अध्याय-५*** १७४-२१२

डॉ. किशोर काबरा एक समग्र मूल्यांकन :

उपलब्धियाँ एवं सम्भावनाएँ

❖ प्रस्तावना

❖ डॉ. किशोर काबरा के साहित्य का वैविध्य

❖ उपलब्धियाँ एवं सम्भावनाएँ

❖ युगबोध

❖ अनुवाद

❖ सम्पादन

❖ शब्दचित्र

❖ पत्रपत्रिकाएँ और पाठ्यपुस्तकें

❖ भाषा की द्रष्टि से

❖ डॉ. किशोर काबरा की काव्य साधना :

❖ सतसई परंपरा की अविस्मरणीय उपलब्धि - किशोर सतसई

१. प्रकृति

२. पुरुष

३. परिवेश

४. पर्यवेक्षण

५. परिलेखन

६. पर्यालोचन

७. परिणति

८ ***अध्याय-६*** २१३-२१७

उपसंहार

९ परिशिष्ट २१८-२२८

१० ❖ ग्रंथानुक्रमणिका २२९-२३२

१. आधारग्रंथ

❖ किशोर सतसई

२. सहायक ग्रंथ

३. पत्र-पत्रिकाएँ

(१) विषय सम्बन्धी दो बातें :-

साठोतरी हिन्दी कविता के शीर्षस्थ हस्ताक्षरों में कविवर किशोर काबराजी का महत्वपूर्ण स्थान है आप हिन्दी के प्रतिभासंपन्न कवि एवं पश्चिमांचल का गौरव है। काबराजी कवि होने के उपरांत निबंधकार, आलोचक, कहानीकार, शब्दचित्रकार, अनुवादक, एवं संपादक भी हैं । काबराजी की गद्य प्रतिभा लघुकथाओं; साहित्यिक निबंधों प्रबन्ध-काव्य में शब्दालंकार आपका शोध प्रबन्ध रहा है। जिसके साथ ही साथ साहित्यिक निबन्ध भी लिखे हैं। बाल- साहित्य में 'तितली के पंख' (१९७२) 'भारत-दर्शन ' (१९९८) जैसी १२ पुस्तकें प्रगट हो चुकी हैं जिनमें से 'खट्टे अंगुर' 'चोर की खोज ' जैसी कहानियाँ आज 'प्रायमरी' स्कूल में पढाई जा रही हैं। ५ लघुकथा संग्रह , ६ अनुवाद , ५ संपादन एवं ४ प्रकार के संकलन व संयुक्त संपादन भी किए हैं । अन्य लेखकों के सहयोगी संकलन एवं ग्रंथ जिनमें विभिन्न रचनाएँ, सम्मतियाँ भूमिकाएँ आदि प्रकाशित हुए हैं। डॉ. काबराजी पर ७ शोध प्रबन्ध हुए हैं।

काबराजी साहित्यकलाश्री, 'साहित्य शिरोमणि', 'विद्या वाचस्पति', 'राष्ट्रभाषा आचार्य', 'साहित्य श्री', 'साहित्यमणि' आदि पुरस्कारों से सम्मानित हुए हैं । उसी प्रकार मानद उपाधियों में रु १०००- से लेकर रु ११०००- तक के पुरस्कार मिले हैं ।

(२) शोध कार्य का उदेश्य :-

प्रस्तुत शोध कार्य के पीछे मेरी अपनी लगन विशेष रुप से रही है। यों तो प्रत्येक शोधार्थी लगन लिए ही रहता है। शोध की पैनी द्रष्टि, अदम्य लालसा, जिज्ञासा, विषय के प्रति अभिरुचि आदि बातों से ही शोध कार्य को परिपूर्ण किया जा सकता है । शोध मनुष्य की एक स्वाभाविक वृति होती है। किसी न किसी क्षेत्र में शोध-कार्य जारी ही रहता है। शोध कार्य के द्वारा उपादेयता सिध्ध हो सकती है। कुछ ऐसे अनछुए मुदें प्रकट में आ सकते हैं। यही बडी उपलब्धि कही जा सकती है। इस तरह हम कुछ नया प्रदान कर सकते हैं।

किशोर सतसई के मूल्यांकन की बात जब सामने आती हैं तो कहना पडेगा कि कुछ छुटमुट आलोचना पत्र-पत्रिकाओं में प्रकट हुई हैं समग्र रुप से मुल्यांकन और कुछ बिन्दु खोजना शेष रह जाता है मैंने इस दिशा में काम करने की योजना बनाइ है और उसे नब्बे प्रतिशत साकार करने का सफ़ल प्रयास किया है। मेरा इरादा यह है कि किशोर सतसई के कथ्य और शिल्प को भली-भाँति समजकर इसका अध्ययन प्रस्तुत किया जाय; एक नया पथ प्रस्तुत किया जा सके । निःसंदेह मेरा यह कार्य भावी शोध कार्य के लिए उपयोगी

सिध्ध होगा ही। मैंने अपने शोधकार्य को कुल पाँच अध्यायो में प्रस्तुत किया हैं । जिनका संक्षेप में निरुपण करती हुँ।

❖ *शोध विषय की उपयोगिता :*

प्रस्तुत शोध विषय को मैंने क्यों चुना ? प्रायः प्रत्येक शोधार्थी की यही बात होती है । 'सतसई' नाम बडा रोचक और रससभर है और सतसई की परंपरा बडी प्राचीन है । प्राचीन से आर्वाचीन तक की यात्रा मुझे लगता है कहीं नही हुई । इस उद्देश्य से प्रेरित होकर मैंने अपनी शोधयात्रा का प्रारंभ किया । 'किशोर सतसई' बिलकुल नया विषय है । इस विषय पर न जाने क्यों आज तक उदासीनता बरती गई। इस सतसई में तो धर्म, ज्ञान, विज्ञान, अध्यात्म, सुखदुःख, राजनीति, समाज, सांस्कृतिक परंपरा, साहित्य आदि कई विषय एक साथ प्रस्तुत हुए हैं । विहारीजीने तो गागर में सागर भरा, किन्तु किशोरजीने तो छोटी-सी गगरी में महासागर भरा । शोध के क्षेत्र में भावी अनुसंधित्सुओं को इससे बडा फायदा होगा यह बात शत-प्रतिशत निश्चित है ।

➢ *शोध प्रबन्ध का कार्यक्षेत्र :*

'सतसई' पर बहुत काम हुआ है, किन्तु आधुनिक सतसई रचना पर बहुत कम । इस द्रष्टि से मैंने आधुनिक रचनाकार किशोर काबराजी और उनकी 'सतसई' को चुना । इसके अंतर्गत किशोर सतसई के भावपक्ष और कलापक्ष को सम्यक अध्ययन किया जायेगा । न केवल इतना बल्कि इसके स्थान-निर्धारण की भी चर्चा की हैं ।

➢ *सामग्री संकलन की दिशा :*

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध सतसई परंपरा और किशोर सतसई के लिए मैंने किशोर काबराजी के पद्य-साहित्य का आधार सामग्री के रुप में उपयोग किया । इसके उपरांत प्रायः तमाम सतसईयां अध्ययन के केन्द्र में रही । न केवल इतना किन्तु डॉ. घनश्याम अग्रवाल, श्रीमती वैजयन्ती, श्री दीपक पण्डया, डॉ. सत्यनारायण कलगी, डॉ. प्रमोद गुप्ता आदि शोधार्थियों की कृतियां और शोध-प्रबन्ध सहाय में आई है । यों तो सामग्री संकलन के लिए बहुत सारे फुटकल आलेख भी उपयोग में आये है ।

इसके साथ-साथ साहित्यकार किशोर काबराजी का साक्षात्कार बडा महत्व का रहा है । साक्षात्कार के अलावा पत्र के माध्यम से, दूरभाष के द्वारा भी मैंने काबराजी से प्रेरणा ली है ।

निर्देशक का महत्व तो शोध-प्रबन्ध का महत्व का अंग है । यही से शोधकार्य करने की सही दिशा मिली है । मुझे अपने निर्देशक से सही दिशा मिली जैसे एक पिता अपनी पुत्री को सही दिशा निर्देश देते हैं ।

कहा जाता है कि ''मित्र जीवन की औषधि है'' मेरी प्यारी बहन शांति एक मित्र या सखी जैसी रही है - जिसनें सामग्री संकलन से लेकर से शोध प्रबन्ध पूर्ण करने तक का हौंसला दिया है तो साथ ही मैं भाग्यशाली रही हुँ कि एक और स्वयं साहित्यकार जीवंत है, जिन्होनें प्रेरणा दी है दूसरी और पिता जैसे गुरुजी मिल गये तो मित्र भी सुख में पीछे और दुःख में आगे रहकर मेरे कार्य को पूर्ण करवाने के लिए प्रशास्त हुए । दूसरी ओर मेरे पति क्रिष्ना ने भी एक मित्र जैसा व्यवहार करके सामग्री संकलन की दिशा में अग्रसर रहे ।

- ***<u>प्रस्तुत शोधकार्य के विचार बिन्दु :</u>***

प्रायः शोधकार्य सर्वथा मौलिक होता है । मौलिकता इसका प्रधान गुण है । इस मौलिकता में गहन चिंतन, मनन और अध्ययन की आवश्यकता होती है । अपने शोधकार्य के पूर्ण होने तक मैंने अपनी लगन और निष्ठा को बनाये रखी है।

- ***<u>कृतज्ञताज्ञापन :-</u>***

कृतज्ञता या आभार शब्द बडी मात्रा में प्रयुक्त होता है । किन्तु शब्दो में इत्तना भार नहीं रहता जितना हृदय में । जितना हृदय में अहोभाव होता पूरा-पूरा उसे अभिव्यक्त नहीं कर सकते । कुछ ऐसे विद्वान होते है जो सदैव दूसरों की सहायता करते रहते है । ऐसे ही एक सज्जन मेरे पितातुल्य गुरुवर्य डॉ. गिरीशभाई त्रिवेदी है जो सौराष्ट्र युनिवर्सिटी के हिन्दी भवन में प्राध्यापक के पद पर अपना कर्तव्य निभा रहे है । मेरा सौभाग्य रहा है कि उनके सानिध्य में एम.ए., दो खण्ड, एवं एम.फिल कुल मिलाकर तीन साल अध्ययन करने का लाभ मिला है । ऐसे ही शालीन व्यक्तित्व के धनी आदरणीय गिरीशभाई ने सही अर्थ में 'गुरु' की भूमिका निभाई और 'गोविन्द दिये बताई' अर्थात् डॉ. किशोर काबराजी गोविन्द रुप में मिले जिनके कृतित्व को लेकर एम.फिल में लघुशोध तैयार किया । फिर भी लगा कि प्यास अधूरी रह गई । किशोरजी के साहित को ज्यादा पढना चाहिए । इन साहित्य में से किशोर सतसई से में अधिक प्रभावित हुई, मैंने किशोरजी का संपर्क कर प्रेम और सद्भावना प्राप्त करके अपनी यह अभियान शुरु कर आज पूर्णतया पर पहुंच चुकी हूं । इन दोनों विद्वानों की सदैव ऋणी रहूंगी ।

सौराष्ट्र विश्व विद्यालय के हिन्दी भवन के अध्यक्ष डॉ. एस.पी.शर्माजी का मैं आभारी हूं । जिनका सहयोग : प्रोत्साहन सदा मिलता रहा । मेरे निर्देशक श्री गिरीशभाई एक पिताजी की भूमिका में रहे तो माताजी की भूमिका के रुप में (श्री गिरीशभाई की पत्नी) श्री मंजुलाबहन ने भी मुझे बार-बार प्रोत्साहन एवं प्रेरणा दी हैं ।

इस कृतज्ञता जैसे अवसर पर मैं अपने माता-पिता की सदैव ऋणी रही हूं जिन्होनें बडा आर्थिक, सामाजिक कष्ट उठाकर यहां तक पढाई हैं । मेरे भाईयों- भाभीओं ने भी काफी सहयोग की भावना प्रकट की हैं जिनकी ऋणी रही हूं ।

इस पथ पर मेरे जीवनसाथी क्रिष्ना के पूर्ण सहयोग के बिना मैं अपना कार्य परिपूर्ण कर ही न पाती। उन्होने मुझे सहकार देने में कोई कसर नहीं छोडी है । उनमें पति का अधिकार पूर्ण भावना नहीं किन्तु उत्कृष्ठ मैत्रीभाव से मुझे आगे बढाने की तत्परता दृश्यमान होती है ।

मेरी छोटी एवं प्यारी बहना शांतिने क्षण-क्षण पर नियत समय में ही कार्य पूर्ण करने की प्रेरणा दी है इनके ऋण से मैं कभी मुकत नही हो सकती । मेरी प्यारी बहन मेरे लिए ज्योति बनकर रही जिसके आलोक में मैं अपने इस शोधकार्य को अंतिम रुप दे सकी हूं । आपने सदैव मुझ पर स्नेह की वर्षा की जिससे मेरा ये कठिन रास्ता सरल एवं आसान रहा ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध को सुचारु रुप से कम्प्युटरराईझ करने के लिए श्री जयेशभाई एवं श्री मनीषभाई (विलनेट कोम्प्युटर - जुनागढ) की मैं आभारी हूँ । जिन्होंने छोटे-बड़े भैया जैसा व्यवहार कर योग्य समय पर सहकार दिया है ।

अंत में मैं उन सभी गुरुजनों, सहकार्यकर, मित्रों, सहृदयी, शुभचिंतकों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष-परोक्ष रुप में मुझे सहायता प्रदान की हैं।

अध्यायः – १

डॉ. किशोर काबरा : जीवन एवं कवन :

व्यक्तित्त्व :

भुमिका :

१.१ जन्मकाल एवं बाल्यकाल

१.२ मन्दसोर का नन्दकिशोर

१.३ शिक्षा - दीक्षा

१.४ काव्य - संस्कार

१.५ जीविका

१.६ विवाह एवं परिवार

१.७ अहमदाबाद आगमन

१.८ नौकरी से त्यागपत्र

१.९ स्वतंत्र लेखन

१.१० भावि योजना

१.११ सालस व्यक्तित्व

कृतित्व :-

प्रकाशित साहित्य

क काव्य संग्रह

ख सतसई

ग प्रबन्ध - काव्य

घ शोध - प्रबंध एवं निबंध

च बाल - साहित्य

ज अनुवाद

ङ संपादन एवं संकलन

च संयुक्त संपादन

च सहयोगी संकलन

छ लधुकथा संग्रह

भूमिका :-

हिन्दी में एक प्रसिध्ध उक्ति हैं - 'होनहार बिरवाँ के होत चिकने पात '(१) अर्थात जो प्रतिभा संपन्न होता है उसके लक्षण बाल्याकाल से ही दिखाई देने लगते हैं । २६ दिसम्बर १९३४ के दिन मध्यप्रदेश के मन्दसौर गाँव में जन्मे बालक 'नन्द किशोर काबरा ' ने हिन्दी कविता के गण्यमान कवियोमें अपना नाम शामिल करा दिया है । कवित्व शकित या तो जन्मजात होती हैं; या फिर प्रयत्न साध्य । जहाँ तक किशोर काबरा का प्रश्न हैं ; कवित्व शकित उनमें जन्मजात थी।

वे बाल्यकाल से ही स्वाभिमानी प्रकृति के थे। ऊँची कद-काठी; साँवला रंग, गहरी स्वप्निल आँखें, दबे-पतले होठ भाल पर झुलती लटें उनका सादगीपूर्ण वेशभूषा और संतोषी जीवन उनके व्यक्तित्व कोओर भी निखारनेवाले तत्व थे। तुलसीदास की काव्यपंक्ति (सूक्ति) 'जब आवै संतोषधन, सबधन धूरि समान', उन्होंने अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया।

डॉ. किशोर काबरा आधुनिक पीढी के अत्यन्त लोकप्रिय कवि एवं साहित्यकार हैं। इन्होंने अपने साहित्य में अभाव, शोषण,उत्पीडन,अन्याय,अत्याचार और गरीब के हृदय के धावों का विशद, व्यापक औार सफल चित्रण किया है। इनकी कविताओं का मूल स्वर स्वातंत्र्योतर मानस की अभिव्यकित है । किशोर काबरा ने जीवन के यथार्थ की सफल अभिव्यक्ति की है। वस्तु और शिल्प की दृष्टि से उनकी कविता में निखरी हुई कला है ?

ऐसे ही डॉ. किशोर काबरा एक व्यकित नहीं, कविता के मादक संस्पर्श का रोमांच हैं।

आपकी कविता कल्पना के पंख लगाकर यथार्थ की भावभूमि पर बडी तीव्र गति से उडती है । किशोरजी के कंठ से कविता बहती है तो ऐसा लगता है - एक अजस्त्र स्त्रोत फूट पडा है मधुर-शीतल जल

का जिसमें सामाजिक बहता चलता है, दूर-दूर तक। यही हाल उसकी लेखनी का है। लिख रहा है बस, ऐसे कि जैसे गंगोत्री से कविता की धारा निरन्तर बहती जा रही हैं।

१. जन्मस्थान काल एवं बाल्यकाल :-

प्राय: साहित्यकार के जन्मकाल निर्धारण में मतभेद रहता है। लेकिन हमारे प्रतिभा संपन्न कवि किशोर काबरा के जन्मस्थान एवं काल के बारे में मतभेद नही है। किशोर कावराजी का जन्म उषाकाल २६ दिसम्बर सन् १९३४ में मालव प्रदेश के मन्दसौर (दशपुर) गाँव में हुआ। उनकी माता का नाम सरजूबाई और पिताजीका नाम प्रभुलालजी था।

ऐसे प्रभुलालजी के तेजस्वी बालक के धरती को स्पर्श करते ही नन्हें अधरों से जो क्रन्दन बहा होगा, अवश्य ही उनमें लय ताल और छंद रहे होंगे, तभी तो अधर का स्दन ही तो गान बनकर प्रवाहित हुआ काल की पीठिका पर। तभी तो लय ताल और छंद में बंधा कागज,कलम व जीवन। पिता प्रभुलालजी काबरा की पाँचवी संतान में वस्तुत: पंचम स्वर जाग उठा। पिताजीने उसी मुहल्ले में रहनेंवाले नन्दकिशोर विजयवर्गीय के नाम पर इस शिशु का भी नामकरण-संस्कार कर दिया और इस प्रकार यह बालक 'नन्दकिशोर' के नामसे अलंकृत हो गया। दो अतिशयताओं के बीच बालक जीवन की डगर पर साँस- साँस बढने लगा। भोली-भाली निरीह ; गैया सम सीधी-सादी माँ और लावे मे तपे ज्वालामुखी की तरह पिता यानी कि कोमलता और कठोरता के बीच नन्दकिशोर का अबोध जीवन स्वप्नजीवी की तरह एक के बाद एक वर्ष पार करता बढता रहा।

किशोर काबरा का बाल्यकाल संघर्षपूर्ण रहा। आमतौर पर तो काबराजी माहेश्वरी जाति के थे। माहेश्वरी जाति बडी घनाढय, व्यावसायिक और व्यावहारिक मानी जाती है। परंतु नंदकिशोर के पिताजी तीनों गुणों से पडा उन पर। क्या कष्ट भोगे है प्रभु लालजीने! कारण था कि माता-पिता से उनकी बनी नही; फलस्वरुप एक धोती और एक लोटा लेकर अपनी दुनिया बसाने अलग हो गए। इस अलगाव से कष्टों का अम्बार टूट पडा उन पर। क्या कष्ट भोगे हैं प्रभु लालजी ने ?

स्मृतियाँ उभरती हैं तो रोंगटे खडे हो जाते हैं। दशपुर के पास छोटा-सा गाँव दलोदा और उसके समीप छोटे-से टपरियोंवाले गाँव बड़प्पन और झरकन में अपने यौवन का दरिद्रता एवं अभावों के कुंड में

झोंकते रहे समझौता नहीं किया तो नही किया। खुशामद नही की । दाने-दाने के लिए बाट जोहते रहे पत्नी,बच्चे सब पर कहीं कभी किसी के सामने हाथ नही फैलाया। छोटे- मोटे धंधो से जो पाया, वही घर में आया और नहीं तो शाक-पान खाकर या फाका करके यह परिवार उस छोटे से गाँव की सरहद में किसी तरह समय काटता रहा। किसे पता था, कलम के धनी एक कवि का शैशव इसी गरीबी की छाँह में पल रहा हैं।

(१.२) मन्दसौर का नन्दकिशोर :-

मन्दसौर (दशपुर) कालिदास की जन्मभूमि हैं या नहीं ; इस पर विद्वानों में मत-मतान्तर हैं, परन्तु यह मन्दसौर इस आलोच्य कवि किशोर काबरा की जन्मभूमि है, इसमें कोई विवाद नहीं, सन्देह नहीं । इसलिए किशोर काबरा एक व्यक्ति नहीं, मन्दसौर की माटी, मालवा की धडकन के जीवन्त अस्तित्व के प्रतिनिधि का नाम है; जो विगत चालीस वर्षो से एक संपूर्ण समर्पित साहित्यकार की पूरी शक्ति एवं आस्था के साथ माँ सरस्वती के अनोखे, अदम्य, अजस्त्र, अस्त्र-लेखनी से जुडा हुआ है तथा भारत के उतर-मध्य एवं पश्चिमांचल के मूर्धन्य साहित्यकारों की जब चर्चा होती हैं तो डॉ. किशोर काबरा शीर्षस्थ पंक्ति में होते हैं।

इनके कविता कुसुमों की सर्वाधिक मादक मस्त, खुशबु पवन के झोंकों की मलय बनाती हुई दिखाई देती हैं। मध्यप्रदेश के मन्दसौर से लेकर सागर की लहरों से सजे सुंदर गुजरात के द्वारिका तक इनकी कविता की बाँसुरी गूँज रही हैं। बीस से अधिक काव्य-संग्रहों, खण्डकाव्यों, गीत-प्रगीत कथा आदि से जुडे ग्रंथों के कारण यह नाम हिन्दी जगत के नयनों में मूर्तिमंत हो उठा हैं। पिछले आठ-दस वर्षो में तो यह नाम साहित्य-वसुधा पर न केवल चर्चित व प्रतिष्ठित हुआ हैं पुरस्कृत और गौरवान्वित भी हुआ हैं । मन्दसौर का (नन्दकिशोर) यह पुरूष आज पूर्ण मुकुलित होकर सरस्वती के आनन को भरपूर सुवासित कर रहा हैं।

यह वही मन्दसौर है जिसके लिए कवि कुलगुरू कालिदास ने किसी यक्षिणी के नयनों के गुप्त प्रगटभाव को दशपुर की भोलीभाली अज्ञात यौवनाओं की विस्फारित पलकों में देखा था और चम्बल नदी पार कर के आगे बढनेवाले मेध से कहा था-' हे मेध ! चम्बल पार करने के बाद तुम्हें प्रसिद्ध दशपुर नगर मिलेगा। वहाँ ललनाएँ तुम्हें अवश्य देखेंगें क्योंकि ये कौतुहल प्रिय हैं। उनकी आँखों के गहरे सागर में कहीं खो मत जाना कहीं ऐसा न हो कि तुम वही रह जाओ और मेरा संदेश यों ही धरा रह जाए' (२)

वैसे तो मन्दसौर का उल्लेख महाभारत, बृहत्संहिता, कथा सरित्सागर; राजतरंगिणी, मेधदूत, नन्दी सूत्रवृति, उतराध्ययन सूत्र आदि जैनागमों में भी उसकी चर्चा हैं। बंगाल के महामहोपाध्याय स्व.ह रप्रसाद शास्त्री और नागपुर के डॉ.केदार जैसे विद्वानों ने तो दशपुर को कवि कुलगुरू कालिदास की जन्मभूमि तक माना हैं। जिस भूमि में कालिदास का जन्म हुआ है ऐसी ही मालवा की मिट्टी में जन्में डॉ.किशोर काबरा का स्थान साहित्य विधा में शीर्षस्थ है जो उनके व्यकित्व और कृतित्व से ही पता चलता है।

(१.३) शिक्षा-दीक्षा :-

डॉ.किशोर काबराजी माहेश्वरी जाति के थे और माहेश्वरी जाति बडी धनाढ्य, व्यावसायिक और व्यावहारिक मानी जाती है, परन्तु काबराजी इन तीनों गुणों से वंचित थे। अत: आर्थिक विपन्नता ने नन्द किशोर को अन्तर्मुखी बना दिया तथा इस शिशु को देखकर ऐसा आभास भी नहीं होता था कि यह कुछ हो सकेगा। न ही ऐसे लक्षण नजर आते थे। वैसे इस भूमि पर यह उकित प्रसिद्ध हैं - ' पूत के पग पालने में ही दिखाई देते हैं, परन्तु जिस पूत को न तो पालना नसीब हुआ और न ही पर्याप्त लालन-पालन, उसके कया लक्षण ! बाल्यकाल में मन्दसौर स्थित एक परिजन के यहाँ गोद भी रखे गये, परन्तु वहाँ की उपेक्षाओं और प्रताडनाओं ने ऐसा असर किया कि बीमारी ने धर दबोचा। पिता प्रभुलालजी को उसे ऐसी हालत में सिर पर उठाकर गाँव लाना पडा। और किसी प्रकार देशी इलाज - झाड-फूँक, डाम-दाग आदि किया गया, जिससे जान में जान आई, परन्तु अस्वस्थता अभाव, उपेक्षा, अव्यवस्था आदि सभी विपरीत परिस्थितियों ने उसे सोचने, खोने और डूबने के लिए प्रेरित किया।

यह कोई छ-सात वर्ष का वयकाल था। इस उम्र में इस अबोघ, चिन्तायुक्त बालक पर कविता का कोई चिह्न नहीं उभरा था, जैसा वे स्वयं कहते हैं - एक लय गूँजती हुई उन्हें प्रतीत होती थी, पर यह क्या हैं, समझ में नहीं आती थी । (३) इस काल में इनके पिताश्री प्रभुलालजी अपने ढंग की कविता करते थे, कविता लिखते थे। साथ ही प्रकृतिने उन्हें मीठा गला और बुलंद आवाज दी थी; जिससे उनके कवित्त मधुर व ओजमय बन जाते थे। किशोर काबरा को ये गुण विरासत में मिले हैं और पिता के इस ऋण को वे स्वीकार करते हैं। उनका व्यक्तित्व भी उन पैतृक गुणों के अतिरिक्त पिता से ही रक्तमें मिला हैं। अचेतनरूप से गीत-संगीत के प्रति- पिता की रूझानने मन को पोषण देने का काम किया है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं हैं।

इन्ही संस्कारों के साथ निकट के गाँव के पटशाला जैसे स्कूल में विद्याभ्यास प्रारंभ हुआ, जो लगभग २ कोस की दूरी पर था। २ कोस जाना और दो कौस आना वह भी नंगे पाँव , जर्जर वस्त्र और दुबला-पतला तन लिए। यहाँ दो कक्षाएँ ही पढ पाया कि परिवार में परिवर्तन आया, जिसने जीवन का सारा रूख ही बदल दिया। यह रूख था दरिद्रता, दैन्य और दु:ख दर्दो का जिसने बाहर से एक-दूसरे से जुडे परिवार को भीतर तक तोड दिया। माता-पिता इसी सोच में डुबे रहते कि हमारा जो हुआ सो हुआ, इन बच्चों का भविष्य क्या होगा ? बनिए के बेटे का जीवन किसान-मजदूर से भी गता बींता हो - यह भाग्य की विडम्पना नहीं तो ओर क्या हैं ? आखिर यह तय हुआ कि यह गाँव छोड दिया जाए और यही हुआ। सदा के लिए उस गाँव छोड मन्दसौर की राह पकडी जहाँ मेहनत-मजदूरी जो भी हो, करके पेट पालने का निश्चय किया। ग्रीष्म भी तपती चिलचिलाती धूप में तवे की तरह जलती धरती पर नंगे पैरों और वहाँ से किसी बस में तवे की तरह जलती धरती पर नंगे पैरों और वहाँ से किसी बस में बैठकर मन्दसौर जहाँ की धरती इन्हें फ़िर बुला रही थी।

पौघे ने जमीन पकडी। जहाँ थोडी अन्दर गई। डाली थोडी ऊपर उठी और कोंपलें फूटती नजर आई। यह शर्मिला, गुमसुम, डेढ पसली का पतला-दुबला, साँवला छोकरा पढने में तेज निकला। साघनों के अभाव में भी यह हवा से स्वास्थ्य और शक्ति खींचता रहा। मन्दसौर में जनूकपुरा स्थित मंडी कमेटी के ऊपरी भाग में स्थित स्कूल किशोर का पहला ज्ञान मंदिर था ; जहाँ उसकी मित्रता एक बालक से हो गइ जो एक साथ और अपंग उसकी तरह दुबला-पतला, परन्तु तेजस्वी आँखों वाला तथा आत्म-विश्वास से भरा-पूरा था। दोनों दोस्तों के गाढ बन्धन में बँघ गये और हायर सैकण्डरी तक तो दोनों की दोस्ती के चर्चे होने लगे। खूब पटती थी दोनों में। जहाँ देखो साथ। वह बालक भी आज पढ-लिखकर मन्दसौर में ही अंग्रेजी के प्रोफेसर पद पर आसीन है - नाम हैं रामानुजदास मंत्री।

डॉ. किशोर काबराजी और रामानुजदास दोनों की मैत्री गाढ-मैत्री थी। ये दोनों मित्र इसी काल में गणपति चौक में किसी दुकान की बाहरी पोच पर बैठ जाते और तुकबन्दियों करतें, गाते गुनगुनाते और अपनी इन तुकबन्दियों पर खिलखिलाकर हँसते। उन्मुक्त हँसी - जिसमें न उन्हें दुनिया की चिंता और न दुनिया को इनकी। दोनों मैत्री के पायपीय लोक में विचरण करने और नि:स्वार्थ दोस्ती के झुले पर पेंगे भरने जो आज भी वैसी ही पुष्पितफ़लित हैं। दोनों में कई हस्तलिखित पत्रिकाएँ निकाली और अपनी प्रतिभा को साहित्य की भूमि पर रोपना शुरू कर दिया। यही नहीं, सामाजिक क्षेत्र में भी बाल-विचार प्रौढ विवाह, मृतक-भोजन

आदि कुप्रथाओं के विरोघ सभाएँ की और अपनी आत्मशक्ति का भरपूर प्रयोग किया। इण्टर कॉलेज में भी यह हँसों की जोडी जमी रहती तथा क्रमश: कवि रूप में ख्याति अर्जित करने लगे। इससे कुछेक को ईर्ष्या भी होती थी और वे दोनों के बीच दरार पैदा करने की कोशिश करते परन्तु दोनों के सात्विक सम्बन्घ दिन-प्रतिदिन मजबूत ही हुए। तत्कालीन प्रिन्सीपल डी.एन.खजांची भी इन दोनों से प्रभावित थे।

अब थोडी बातें कवि के शिक्षा-दीक्षा की करें ।

डॉ.किशोर काबराजी की शिक्षा-दिक्षा के बारे में संक्षिप्त में कहें तो -

१९५० - मैट्रिक : मध्यप्रदेश बोर्ड, भोपाल, द्वितीय श्रेणी

१९५२ - इण्टर : मध्यप्रदेश बोर्ड, भोपाल, द्वितीय श्रेणी

१९६२ - बी.ए.: विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

१९६८ - साहित्यरत्न हि.सा.सं.इलाहाबाद, द्वितीय श्रेणी

१९६५ - बी.एड.सागर विश्वविद्यालय, प्रथम श्रेणी

१९६७ - एम.ए. विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन द्वितीय श्रेणी

१९७२ - पी.एच.डी.गुजरात युनि.अहमदाबाद

(१.४) काव्य - संस्कार :-

डॉ.किशोर काबरा और रामानुजदास दोनों मित्र थे वह बात सही है लेकिन उन दोनों का कार्यक्षेत्र अलग-अलग था। किशोरजी को कविता रास आई और रामानुज को नेतृत्व। किशोर का भोला-भाला प्रतिभासंपन्न कल्पनाशील, लयमय व्यकितत्व था जो कविता के उद्यान में ठहुकता था वस्तुतः नन्दकिशोर को कवि ही बनना था। कवि बनने के लिए ही इस बालक का जन्म हुआ था हालाँकि अधिकांश मित्र उनकी और उनकी कविता की मजाक उडाया करते थे, परन्तु वे सब उस उम्र की चपलता और नासमझियाँ थी। वही मित्र -मंडली आज इसी नन्दकिशोर और उसकी कविता को खूब आदर और सम्मान देती है और स्वयं को जिन्दगी के क्षेत्र में कोल्हू का बैल कहते है।

कवि के रूप में जहाँ तक किशोर काबराजी का प्रश्न है वहाँ तक तो वे जन्म से ही कवि थे लेकिन उन कवि को प्रोत्साहन एवं परिस्कार देने के लिए कोई काव्य-गुरू की जरूरत होती थी। और ऐसे ही

काबराजी के काव्य-गुरू है शिक्षक श्री मदनलालजी जोशी जिन्होंने कक्षा ८ में वार्षिक पत्रिका में ली जानेवाली कविता को तराशा तो था पर पीठ भी थपथपाई थी यह कहकर कि - ''तुम लिख सकते हो''। उस समय एक श्री नागेश महेता थे जो अफ़ीम गोदाम में नौकरी करते थे और कवि, कहानीकार के रूप में भी छपते थे ।

नन्दकिशोर उस कवि को मुग्ध-भाव से देखते और उनकी प्रकाशित रचनाएँ देखकर सोचते - मेरी भी कविताएँ कभी छपें । नागेशजी भी इस बालक की प्रतिभा से आशान्वित थे। किशोर ने उनकी आशाओं को जिस तरह आकार और मूर्तिमान किया है, उन दोनों विभूतियों के संस्कारों को उजागर किया है ; उसे देखकर वृद्धावस्था के छोर पर बैठे दोनों साहित्य आत्माओं - श्रीमदनलालजी और नागेशजी को अतीव आनंद और आह्लाद प्राप्त होता है , ऐसा जैसे किसी तपस्वी की तपस्या फलीभूत हो गयी हो। किशाोर भी उन साघकों के प्रति नत-मस्तक हैं , जिनके संस्कारों ने किशोर को काव्य -जगत का प्रख्यात कवि किशोर बना दिया।

(१.५) जीविका :-

बचपन से ही काबराजी संघर्षों के बीच जीएं हैं। इन्टरमीडिएट के बाद पिताजी के इस वाक्य मे ''कमाओ और खाओ'' अब पढाने की हमारी हिम्मत नहीं है ने अध्ययन पर विराम लगा दिया। मित्र-मित्रादि आगे कॉलेजों में चले गये.; परन्तु नन्दकिशोर इस वक्त अभागे रहे। नौकरियों के लिए प्रार्थना पत्र देते रहे और इसी बीच कम्बल केन्द्र में क्लर्की की नौकरी मिल गई। पेट भरने के लिए यह पहला कदम था। जीविका की शुरूआत जावरा, सीताचऊ धिसहते रहे। सालभर और जब भी फुरसत मिलती कलम कागज पर कविता सँवार देते। धार से प्रकाशित होनेवाली 'उषा ' में उन दिनों और गोष्ठियों के भी निमंत्रण आने लगे। इस से एक 'इमेज' बनने लगी कि 'नन्दकिशोर' कवि भी है ; कविता लिखता हैं।

एक दिन इन्दौर जाने का काम पडा। उन दिनों श्री मदनकुमार चौबे (जो मन्दसौर के थे) वर्हा से 'कुमार' पत्र निकालते थे और इतवारिया में रहते थे। किशोर के मन में बिना पत्रकारिता व प्रेस के ज्ञान के 'जागरण ' पत्र के कार्यालय में धुस गए। परन्तु केवल कविता करने से कोई पत्रकारिता होती हैं ! वर्हा से उलटे पैर आये तो 'वीणा' पत्रिका के सम्पादक से मिल गए। उस समय श्री मोहनलाल 'वियोगी' उसके सम्पादक थे। उन्होंने पूछा - 'कितनी कविताएँ लिखी है ?' यहीं कोई ५० -६० ; काबराजी का सोत्साह

उत्तर था। वियोगी ने कहा - केवल छ : पंक्तियाँ छापूर्गा। जब एक हजार कविताएँ हो जाएँगी तो पूरी एक कविता। गजब की कसौटी थी, मगर कैसी मेहनत करानेवाले लोग थे ! क्या जमाना था ! कसते थे, तपाते थे और कुन्दन बनाते थे। काबराजी कब हार माननवाले थे। वीणा का तार ही बनना है तो खिंचाव से क्या डरना! ऐसे 'वीणा' और 'काबरा' का अटूट बन्धन हैं ।

यही जहाँ आत्मसंतोष के लिए कविता लिखते थे तो पेट के लिए एक वकील के यहाँ (कारकुन) नकल नवीस की तरह कुछ दिनों काम किया और फिर शिक्षा-विभाग की कृपा से शिक्षण की नौकरी मिल गई। इधर मास्टरी और उधर प्राइवेट पढाई और प्रतिवर्ष एक परीक्षा देने का संकल्प ठान लिया। फिर क्या था ! श्रम, अध्यवसाय, संधर्ष एवं निष्ठा से जमकर काम करने का दौर शुरू हुआ। बी. ए. साहित्यरत्न, एम. ए . संस्कृत की परिक्षाएँ एक-एक कर उत्तीर्ण करते चले गए और अपने मुकुट में पंख ही पंख सजा लिए।

शिक्षक के रूप में सरकार ने स्थानान्तर करके कई स्थलों के दर्शन करा दिए। धुंधडका, कनधट्टी मल्हारगढ, खंडवा, रामपुरा आदि गाँवों से शहर तक तपते गए। अपनी गृहस्थी सीमेटे यह यायावर जीवन से जूझने के लिए चलता रहा, चलता रहा। जीवन की त्रस्तता इन्हें बराबर घेरे हुए थी और रात -रात भर मेहनत कर इस त्रस्तता से लडाई जारी थी। तेरह वर्ष की मध्यप्रदेशीय मास्टरी में कई मोड आए , परिवर्तन आए , संधर्ष खडे रहे। इन सब के बाद भी साहित्य का दायरा तहसील स्तरीय रहा। इससे अधिक सिर्फ अपनों की दुनिया।

(१६) विवाह एवं परिवार :-

भारतीय संस्कृति में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता हैं। किसी भी परिवार में पुत्र वयस्क हो जाए तो परिवार में एक चिंता एवं तीव्र आकांक्षा होती है विवाह कर देने के और फिर २०-२१ की आयु तो बहुत ज्यादा होती थी उस समय नन्द-किशोर की आयु २१ की गयी थी ; अत : समाज ,परिवार की यह मान्यता थी कि अब विवाह हो ही जाना चाहिए। कहीं छोकरा कुँवारा न रह जाए। लडकीवालों ने देखने आना शुरु कर दिया और जब भी ऐसा मौका आता, कसीदे की टोपी पहनाकर तेल से चेहरा चमकाकर, बनाकर, लम्बा कोट पायजामा पहनाकर बेटे को भेजते थे। इसी परिवेश में काबराजी कई 'इन्टरव्यूं' में गये । कई इसलिए कि इनके पास दो छाप थी - एक तो परिवार गरीब था, दूसरा लडका प्रतिभासंपन्न था। और उस

समय गरीबी - अमीरी ज्यादा देखी जाती थी। यहाँ तक कि गरीब लडकेवालों को दहेज देना पडता था। काबराजी को इस गरीबी की किंमत दहेज देकर नहीं चुकानी पडी क्योंकि उनकी बहन कौशल्या जिसकी शादी रतनगढ हुई थी - ने रतनगढ में ही बात चलाई और पक्की करवा दी। कन्या का नाम था -गीता। यद्यपि इस समय लडकी देखने का रिवाज नहीं था फिर भी बहिन से मिन्नतें करके पनघट से आती गीता को देखा था जो उम्र में केवल चौदह वर्ष की थी। किशोरजी ने उस १४ वर्ष की पनिहारिन में क्या देखा और क्या नहीं, मगर मगर वह भोली-भाली गबरू कमसिन कवि किशोर के पल्ले बँध गई। विवाह हो गया , शहनाईयाँ बज गई और जिन्दगी के नाटक का एक महत्वपूर्ण दृश्य पूरा हो गया। किशोर एम.ए., गीता चौथी पास , मगर इससे न तो किशोर में सुरखाब के पर लगे , न गीता के पत्नीत्व में कोई खाई पैदा हुई। पति-पत्नी तो पति-पत्नी ही होते हैा और इस पति-पत्नी की नाव भी जीवन-सागर में बह चली। और इस वाटिका में तीन पुत्रियाँ और एक पुत्र संजोये। भोली गीता को इतना सारा आनन्द मिला है। आनन्द तो इस बात का और भी अधिक है कि उसके पति को लोग बडा कवि मानते है। वह कविता ववविता तो नहीं समझती पर यह सब देख-सुनकर अच्छा लगता है। आखिर क्यों न लगे किशोरजी 'पति परमेश्वर' जो हैं। किशोर भी उनके इस सहयोग का अन्तःकरण से आभारी हैं कि उन्होंने अपनी सौतन कविता का कभी विरोध नहीं किया। उन्हें उसके साथ उन्मुक्त विचरण करने दिया। भला, विवाह का इससे मधुर अर्थ और क्या होगा ?

(१.७) अहमदाबाद आगमन :-

डॉ.किशोर काबराजी मूलत : मध्यप्रदेश के मन्दसौर के थे लेकिन बाद में अहमदाबाद कुछ कारणों से आना पडा । किशोरजी की मेहनत अब रंग लाना चाहती थी और जो शिक्षा प्राप्त की थी उसका भी फल मिलता था । भोपाल रीजन ने केन्द्रीय विद्यालयों के अध्यापकों की माँग की और हिन्दी पी.जी.टी.में चयन हो गया। इस चुनाव व केन्द्रीय सेवाओंने ' मेंहदी तो वावी मालव, एनो रंग गयो गुजरात ' वाली बात थी। २० जुलाई १९६८ के दिन गुजरात की वसुन्धरा पर कदम रखा और केन्द्रीय विद्यालय, अहमदाबाद में अपनी सेवाका नया अध्याय आरंभ किया। तब से वे इस भूमि से बँधे हैं और यही उनकी कार्यभूमि बनी हुई हैं। ३०-३१ वर्ष हो गए आज। इन वर्षो में अपने नाम से 'नन्द ' हटाया और मात्र ' किशोर काबरा ' रह गये। अध्ययन की एक और मंजिलने इन्हें पीएच.डी. की उपाधि से अलंकृत कर डॉ.किशोर काबरा बना दिया। इस उपलब्धि ने उन्हें अपने शिक्षण-जगत में पर्याप्त सम्मान दिया। हालाँकि पीएच.डी.की इस सेवा में न तो

आवश्यकता थी ओर न ही सरकार इस उपलब्धि पर पुरस्कृत करती, फिर भी ज्ञान का पिपासु इस शिखर पर तो चढता ही हैं। सो काबराजी ने भी यह मंजिल तय की।

इस मंजिल को पाने में निश्चय ही अच्छे मार्गदर्शक ,अच्छे मित्रों का अनमोल सहयोग रहा है। काबराजी की दृष्टि से ये भाग्यशाली रहे है कि उन्हे अच्छे मित्र मिले , अच्छे शिक्षक , अच्छे मार्गदर्शक मिले। अच्छे गुरु के आशीर्वाद सदा उनके सिर पर रहे जिनमें डॉ– अम्बाशंकर नागर भी एक हैं जिनका असीम स्नेह किशोरजी के प्रति रहा है । किशोरजी भी उसी सम्मान और श्रद्धा से गुरु के प्रति समर्पित रहे , वरना इस युग में शिष्य गुरु को बेच खाने की सोचता है। डॉ .नागरजी किशोरजी के पी एच डी के निर्देशक बने और किशोरजी के शोध-कार्य की डेढ वर्ष में ही पूर्णाहुति देखकर स्तम्भित रह गए । 'न भूतो न भविष्यति ' वाली बात हुइ। नागरजी आज भी दोहराते हैं -'मेरी जानकारी में डेढ साल में शोध कार्य पूरा करने वाला और कोई छात्र इस युनिवर्सिटी में नहीं हुआ हैं।' आगे मी संभावना नही हैं। गुरुजी की वरद छत्रछाया में जो सिलसिला शुरु हुआ वह आबाद रुप से प्रवाहित हैं-प्रगति के हिमालय को स्पर्श करने के लिए ।

(१.८) नौकरी से त्यागपत्रः-

डॉ काबराजी कहा करते हैं कि - आप, जितना त्याग करो उनसे अधिक आपको मिल जाता है। ऐसा कहनेवाला काबराजी एक प्रतिष्ठित कवि हैं। ऐसा कवि जो आज उन्मुक्त रुप से रहते हैं। काबराजी ने स्वेच्छा से त्यागपत्र दिया था। त्यागपत्र देने से पहले कई विद्वान जैसे डॉ अम्बाशंकर नागरजी (काबराजी के पीएच डी के गुरु , मार्गदर्शक थे) ने भी समझाया कि काबराजी त्यागपत्र मत दो। लेकिन जो कवि विचारों से उन्मुक्त होते हैं वे अपने मन की ही बात किया करते हैं।

डॉ. काबराजी केन्द्रीय विद्यालय के सेवाकाल के दौरान दो-तीन ट्रान्सफर हुए और धूम-फिर कर फिर अहमदाबाद । यानि कि अहमदाबाद जीवन की धुरी बना रहा। सन् ८८ में उन्हें तरक्की मिली और उप प्राचार्य बनाकर हरिद्वार भेज दिया गया। परिवार को छोडकर काबराजी को गंगा के किनारे जाना पडा जहां लहरे गिनने के अलावा काबराजी करते भी क्या ? यह समय इनके लिए बडा पीडा दायक बन गया, बेटे की नौकरी छूट गई; पिताजी का देहावसान हो गया अतः अहमदाबाद ; मन्दसौर और हरिद्वार के बीच भटकते रहे। कलमने भी चुप्पी साध ली । प्राचार्य के रुप में प्रशासन समय को निगल जाता और बाकी परिवार की

चिन्ता, जिसमें पत्नी पुत्र और पुत्रवधु थे। पुत्रियों का विवाह तो वे कर ही चुके थे और तीनो सुखी परिवारों में चली गई थी। हरिद्वार में बैंठकर परिवार ,मित्र सभी यादें तिलमिला देती थी और सबकी इच्छा थी कि वापस अहमदाबाद आ जाए और इस का एक ही रास्ता था त्यागपत्र। चार -चाढे चार हजार की नौकरी मगर कविता की मनुहार वे टाल नहीं सके। घर परिवार , मित्रों की दूरी सह न सके और इसी भावना के घेराव में निर्णय ले ही लिया। अपनी नौकरी गंगा की लहरों को अर्पित कर चले आए काबराजी फिर अपनी कर्मभूमि में अपनी कलम की स्याही सूखने से पहले ।

(१ ९) स्वतंत्र लेखन :-

विशुध्ध कलमजीवी की तरह जीना भी एक महानता है, जिसमें हैं पूर्ण समर्पण, तपस्या और साहि त्य की अपूर्व साधना। काबराजी ने त्यागपत्र इसी निश्चय से दिया होगा और वस्तुतः तभी से यह कलम का धनी अहमदाबाद की गगनचुम्बी चिमनियों के बीच भी कविता की सुवास छोड रहा हैं। काबराजी अपने इस स्वतंत्र लेखन से संतुष्ठ हैं। अपने निर्णय से उन्हें आत्मसंतोष हैं। और चेह रे पर सहज मुस्कान हैं कि पुरा समय वे लेखनी को दे रहे हैं और लेखन उनकी रोजी रोटी नही हैं। स्वान्तः सुखाय हैं सबकुछ रात के आगोश में- जब जग सोया होता है , ढाइ-तीन बजे से सुबह तक छ : साढे छ : तक अक्षरों को सजाते हैं। चोथे प्रहर और फिर शाम को अपने मित्रों के नाम, कार्यक्रमों के नाम . . . जरा की मस्ती के नाम ।

(१.१०) भावि योजना :-

सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा प्रतिभा संपन्न व्यक्ति की भावि योजना कुछ अलग ही होती हैं ऐसे ही किशोर काबराजी प्रतिभा संपन्न व्यकित हैं और ऐसे साहित्यकार की योजना क्या होती हैं यह सभी जानते है। काबराजी का स्वप्न लेखन और प्रकाशन है। प्रतिवर्ष उनकी नई कृतिर्यां पाठकों को मिलती रहें- यही उनकी हार्दिक कामना है । सशक्त, समर्थक व सार्थक साहित्यकार के रुप में वे अंकित रहें।

(१.११) सालस व्यक्तित्व :-

काबराजी वैसे तो बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि हैं। योग, संगीत, चित्र, प्राकृतिक चिकित्सा सभी में उन्हें आनन्द मिलता हैं। उनकी स्वयंकी प्रकृति सरल और सीधी हैं। छल-कपट से दूर , वे भोले इन्सान हैं। चेहरे पर चिन्तन की रेखाए छायी रहती हैं , परन्तु उदासी नहीं। वे मुस्कुराते, हँसते और कहकहे लगाते हैं,

मुक्त रुप से। वे सक्रिय पिता भी हैं तो व्यस्त व्यवस्थित पति मी, निद्वन्द्व प्रसन्न दोस्त हैं तो शांत-स्थिर हमदर्द पडोसी व रिस्तेदार भी। उन्होंने दायित्व की भावना को समजा है और हर दायित्व निभाया है। शिक्षक हो या प्राचार्य तटस्थ,निर्लिप्त रुप में उन्होंने अपना कर्म जग को अर्पित किया है। शत-प्रतिशत इन्सानियत से पूर्ण है। क्रोध टपकता है , परन्तु अन्याय और अत्याचार पर। वे स्वाभिमानी हैं और यश व सम्मान के लोभी। निर्मल स्वभाववाले काबराजी वस्तुतः कवि प्रतिभा से मंडित हैं।

※ काबराजी का कृतित्व :-

साठोत्तरी हिन्दी कविता के शीर्षस्थ हस्ताक्षरों में डॉ. किशोर काबराजी का महत्वपूर्ण स्थान हैं। वे हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि एवं पश्चिमांचल के गौरव हैं। काबराजी मुलतः कवि हैं साथ ही निबंधकार, आलोचक, कहानीकार, शब्द चित्रकार, अनुवादक एवं सम्पादक मी हैं । आपकी गद्य प्रतिभा लघुकथाओं से साहित्यिक निबंधो और शोध-प्रबन्ध तक तथा काव्य साधना क्षणिकाओं- मुक्तकों और प्रबन्ध काव्यों तक व्याप्त हैं। आपका कवित्व कवि- सम्मेलनों के श्रोताओं से लेकर पाठकों की हृदयभूमि तक प्रतिष्ठित हैं।

डॉ. किशोर काबराजी की काव्य-साधना आज तीन दशकोंकी सुदीर्धयात्रा पूरी करने के बाद भी अखण्ड रुप में चल रही हैं। इनके साहित्य को निम्नलिखित विभागों में बाँटा जा सकता हैं।

- **प्रकाशित साहित्य :-**

डॉ. किशोर काबराजीका समग्र साहित्य प्रकाशित है । काबराजी के साहित्य को हम इस तरह बाँट सकते हैं।

(क) काव्य संग्रह :

(१)जलते पनघट : बुझते मरघट - १९७२ - अभिनव भारती अहमदाबाद

(२)साले की कृपा - १९७५ - अभिनव भारती अहमदाबाद

(३)सारथि, मेरे रथ को लौटा ले - १९७६ - अभिनव भारती अहमदाबाद

(४)टुटा हुआ शहर - १९८३ साहित्य सरकार दिल्ली

(५)ऋतुमती हैं प्यास - १९९० - चिंता प्रकाशन दिल्ली

(६)हाशिये की कविताएँ - १९९५ - कर्णावती प्रकाशन, अहमदाबाद

(७)मैं एक दर्पण हूँ - १९९६ - अविराम प्रकाशन, दिल्ली

(८)चंदन हो गया हूँ - १९९९ - पश्चिमांचल प्रकाशन, अहमदाबाद

डॉ. किशोर काबरा मूलत: कवि हैं। काबराजी ने अपनी कविता में मनुष्य और मनुष्यता का स्वर सुनाया है। मैं यहाँ उनके काव्य-संग्रहों का थोडा-बहुत उल्लेख करना चाहूँगी।

१) 'जलते पनघट : बुझते मरघट'

डॉ. काबराजी काव्य साधना का प्रथम सोपान हैं।- ' जलते पनघट : बुझते मरघट ' । इस काव्य संकलन में ५१ कविताऐं का संग्रहित हैं। इसमें कुछ कविताऐं मुक्तक छंद में भी लिखी गई हैं। कविताओं में कवि के कटु-मधुर अनुभवों की प्रतिध्वनिर्यां स्पष्ट सुनाई पडती हैं। आधुनिकता के नाम पर समाज और देश में व्याप्त प्रवचना, कुण्ठा और अनास्था के बावजूद इन कविताओं में कवि ने आस्था और विश्वास के गीत गाए हैं। भाव के चिंतन के धरातल पर रची हुई कविताएँ, चिंतन, मनन की उस वसुधा पर ले जाती हैं जहाँ संवेदनाओं का सागर लहराता है तथा प्रेय से श्रेय की ओर आत्मबोध के द्वार खुलते हैं । '' मेंहदी के फूल '' शीर्षक कविता में कवि की ये पंक्तिर्यां इसी ओर संकेत करती हैं। -

जब तू दे जाया करती थी, दर्शन मुझको साँझ-सवारे,
भूल नहीं पाता हूँ वे दिन, कितने मीठे कितने खारे !
मौसम की बेटी को धरती से-धोकर ससुराल भेजती,
मैं पलाश का ठूंठ बना सब देख रहा हूँ मन को मारे ॥ (४)

आज आधुनिकता के नाम पर कृत्रिम भावभूमि को जोतकर अनावस्था व कुंठा के ही बीज बोने का कतिपय कवियों का कवि कर्म चल रहा है। डॉ. काबरा का कवि इस तथा कथित कवि - कर्म से पूर्णतः तो नहीं किन्तु अंशतः अवश्य अलग है। प्रारम्भिक कुछ गीतिप्रधान कविताएँ हमारे हृदय को झंकृत कर जाती है, तो मध्य की कुछ भाव एवं संवेदनापूर्ण कविताएँ हमें चिंतन-मनन एवं आत्मबोध की उस भूमि का पर ले जाती है। जिस भावभूमि का पर पहुँढ़कर आत्मा प्रेम से श्रेय की ओर उन्मुख होती दिखाई देती है। देखिए प्रारंभ की कुछ पंक्तिर्यां.....

''जब तुम दे जाया करती थी, दर्शन मुझ को साँझ - सकारे,

भूल नहीं पाता हूँ वे दिन, कितने मीठे कितने खारे !

मौसम की बेटी को धरती से धोकर ससुराल भेजती,

मैं पलाश का ठूंठ बना सब देख रहा हूँ मन को मारे।''

जब मध्य की कुछ भावमय एवं संवेदनापूर्व पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं.....

''जब तक पिंजरे से बाहर थे

छायावादी थे;

रहस्यवादी थे;

भलभलके गीत गाते

चाहे पहन रहे खादी थे।

फिर प्रगतिवादी बना दिया

अनखाई रोटी ने,

फिर प्रयोगवादी बना दिया

अनब्याही बेटी ने।''(५)

कविने अपने काव्य में चिंतन प्रधान पंक्तियाँ का भी सुंदर रुप में वर्णन किया है.....

''उर्मिला रोती - रोती रुक गई,

यशोधरा राहुल को पय पिलाना भूल गई,

विष्णु प्रिया बादल सी ताक रही है,

अरे, ये लोग किसे उठाकर लिए जा रहे हैं ?''

तो दूसरी ओर कहते हैं -

''जिन्दी में नरक है साकार मौत ?

वह तो मोक्ष या नूतन जनम का द्वार।

जिन्दगी में वर्ग है, विद्वेष है; दुत्कार(६)

किन्तु,

मरघट कर रहा है एक - सा सत्कार

'प्रेमचंद फिर मर गया' कविता आजके इस नीति-न्याय एवं ईमान-इन्सान के दुष्काल पर एक करारा व्यंग्य है,

''आज 'रंगभूमि' के सूरदासने अपनी जमीन
इस कमीने युग के हाथों बेच दी।
आज 'गोदान' का होरी,
बीस आने में अपना कफन खरीद लाया।
आज फिर 'गबन' की नायिकाने
अपने पति से प्यार के बदले
चन्द्रहार मँगवाया।
आज 'नमक का दारोगा'
रुपयों की थैली पर
गलकर पानी हो गया।
आज गंगी का घड़ा
ठाकुर के कुएँ में गिर गया,
अब सज्जनता का दंड कौन भोगे ?
क्योंकि,
आज प्रेमचन्द एक बार मर गया।''(७)

'शब्दों की खेती', 'इँसा और मैं', बंदर गांधी का या डार्विन का ?' 'मौत को मैंने चुना है' आदि कविताएँ बड़ी प्रेरक हैं। 'मौत को मैंने चुना है' की कुछ पंक्तियाँ देखिए.....

''कमल की सौगंध खाकर कह रहा हूँ-
मौत ही इस प्राण की सच्ची नकल,
जिन्दगी दो-चार दिन की है रखले''(८)

ये पंक्तियाँ हमारे सामने जीवन-मृत्यु की सच्ची परिभाषा रख देती है; जिसे बिना किसी झिझक के कवि से नग्न रुप में प्रस्तुत कर दिया है ? कवि की कविता में एक ओर जहाँ ग्रामीण दृश्य, खेत-खलिहानों के लहलहाते मनोरम चित्र हैं, वहीं दूसरी ओर महानगरो की विषमताओं से भरी हुई संत्रासं एवं कुंठाग्रस्त जिजीविषा की नारकीय यातना भी दिखाई देती है।

कवि के लय की पकड़ बेजोड़ है; स्वर भी मुखर है, किन्तु भाव कहीं-कहीं दब-सा गया है। बिम्ब व प्रतीक विधान के लिए कवि की कल्पना बडी ही सजीव है।

समय के साथ साथ कविता के स्वर भी बदलते हुए है, क्योंकि कवि को युग की घड़कन के साथ जो चलना पड़ता है। प्रारंभिक कविता में मधुमय प्रणय के हास उल्लास भरे व्यापार से सराबोर मधुमास की मादकता है। 'खोल दो अवरुद्ध मन की अर्गलाएँ में जहां स्वरकी उत्तान तान है वही दूसरी पंक्ति 'द्वार पर देखा, अरे ! मधुमास आयां में प्यार का छलकता जाम है। कविने भाव-भूमि में निष्ठा और आस्था के बीज डालकर शब्दों की खेती की है। निःसंदेह शब्दों के ये खेत प्रारम्भ से लेकर अन्त तक लहलहाते नजर आते है। कविता में शब्द, बिम्ब और प्रतीक का सुन्दर गुंफन हुआ है। इस काव्य संग्रह की भूमिका में डॉ. अम्बाशंकर नागरने ठीक ही लिखा है -

''उनके शब्दवृंतो पर जहाँ भावों की कलियाँ मुस्करा रही है वहाँ
बिम्ब एवं प्रतीकों की कलियाँ भी फैली हुई है, जिनमें नई कविता के बीज गुंफित है।''(९)

कवि की कुछे कविताओं में लय की खूंटियों पर टँगे आस्था के स्वर सहज ही सुनाई दे जाते है, निष्ठा और आस्था के इस कवि के स्वर में महनतम अनुभूतिपरक भावों की सहज अभिव्यक्ति है, तो कल्पना की उड़ान भी और चिंतन की गहराई भी। 'मेंहदी के फूल' से 'मैं मुखौटे बेचता हूँ। तक आते - आते किशोर कवि पूर्ण तरुण बन जाता है और 'चिंता मेरी माँ तक पहुँचते ही अचानक बूढ़ा हो जाता है। तरुण कवि का अचनाक इस तरह बूढ़ा हो जाना पाठकों का जरा खलता है। 'जलते पनघट बुझते मरघट' शीर्षक एक ही नजर में पाठकों को चौंका देनेवाला है। काफी मीन-मेष करने पर शीर्षक ही सार्थकता के साथ तालमेल बैठता है।

कवि काबरा 'अपनी बाते' में पाठकों से आशा रखते हैं- 'मैं पाठको की आँखों से आलोचना का पैनापन नहीं अपितु हृदय का आस्वादन चाहता हूं।''

अतः हम कह सकते हैं कि ''जलते पनघट बुझते मरघट' कविता संग्रह प्रबुद्ध एवं भावमय एवं मन के जिए और भोगे हुए क्षणों का संवाहक है।

सारथि, मेरे रथ को लौटा ले -

२) सारथी, मेरे रथ को लौटा ले :

काव्य के विभिन्न छंदो के पहिए वाले इस 'सारथी, मेरे रथ को लौटा ले', काव्य-संग्रहरुपी अद्‌भूत रथ में भावों की वल्गाएँ और कल्पनाओं के अश्वों को विचार का सारथी मन की गति से भी तेज़, काव्य के धरातल पर ऐसी गति प्रदान करता है कि, ... उसमें बैठे डॉ. किशोर काबरा मानव मन के विभिन्न स्थितियों को चित्रित करते - करते अंत में आत्मबोध की गहराइयों में डूबकर स्वयं कहने लगते हैं- इस काव्य के केन्द्र में वस्तुतः मैं ही रथ हूँ, मैं ही रथी हूँ, मैं ही सारथी हूँ।''

काव्य की मुख्य तीन विधा - कविता, गीत, गज़ल की त्रिवेणी पर तैयार कर काव्य संग्रह में समाज, धर्म, राजनीति, जीवन, साहित्य, यथार्थ, व्यंग्य आर्सू, ऋतु, प्रेम, नीति, दर्शन, सौंदर्य, प्रकृति जैसे विषयों का महाकुम्भ है।

३) साले की कृपा :

डॉ. किशोर काबराजी के काव्य-संग्रह की दूसरी कविता ''साले की कृपा'' है जिसकी कुछ कविताएँ हास्यरस से भरपूर हैं। हास्य वैसे भी जीवन की एक महनीय आवश्यकता है, जिसके अभाव में जीवन दूभर सा लगता है। यह हास्य ही है जो एक नई ताजगी प्रदान करता है। काबराजी का व्यक्तित्व भी इसी प्रकार का है। उनके जीवन में भी गहराइयाँ अधिक हैं, उथलापन कम। उन्होंने इस हास्य एवं व्यंग्य से पूर्ण कविताओं में अपने मनकी कथा - व्यथा को बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने अर्थ पर भी व्यंग्य प्रस्तुत किये है। उनकी समकालीन कविताएँ नए प्रतीक, नई उद्‌भावनाओं में रची-बसी हैं। इन कविताओं में राजीनीति, युद्ध, न्याय व्यवस्था, मनोवृति, समय की वर्धमानवृति, अवसरवादिता, रोजमरा की जिंदगी, कभी-कभी जाग जानेवाली आध्यात्मिक्ता आदि को प्रस्तुत करके जीवन को नई व्याख्या देने का भी प्रयास किया है। क्योंकि कवि वर्षो से महानगर से जुड़ा हुआ है, इसलिए युग की समकालीन कविता में महानगर का चित्रण, प्रदुषित

वातावरण, उसमें दौड़ती, भागती, हाँफती जिंदगी का सूक्ष्म-चित्रण, पौराणिक कथ्यों की आवश्यक्ता आदि को नवीन प्रतीकात्मक्ता में बांधा है।

एक प्रकार से कवि काबराजी भारत की समस्या को व्यक्त करने के प्रयास में रहे हैं और उन्होंने अपनी साहित्य रचनाओं में इसे रेखांकित करने का अद्‌भूत प्रयत्न किया है।

'साले की कृपा' के मनोरंजक व्यंग्य धर्म की एक ही वानगी पूरे संग्रह की पहचान के लिए पर्याप्त है-

''पतिने अपनी नवविवाहित पत्नी को समझाते हुए कहा -

और यह है मेरी धाय माँ का चित्र !

बचपन में इन्होंने दूध पिलाया था,

मर ही गया होत,

इन्होंने मुझे जिलाया था।

आह ! इनका हृदय बाहर - भीतर से

कितना पारदर्शक, साफ और पवित्र था।

वधूने दोनों हाथ जोड़ दिये

सामने

निपल लगी दूध की बोतल का चित्र था।(१०)

डॉ. किशोर काबरा की नज़र नर-नारी सम्बन्धों पर अधिक विस्तार से गयी है। सूक्तियों और चुटकुलों की कविता का बनाना पहनाने में उन्हे पर्याप्त सफलता मिली है। निश्चय ही 'साले की कृपा' की कविताएँ मनोरंजक और पैनी कविताएँ है।

४) टुटा हुआ शहर :-

'टुटा हुआ शहर' संग्रह की कविताओं में कवि की बलवत्तर अनुभूतियों एवं प्रौढ भाषा-शिल्प के दर्शन होते हैं। व्यकित, समाज और राष्ट्र के प्रति कवि का दायित्व बोध यहाँ और भी तीव्र रुप में व्यकत हुआ हैं।जीवन के कारागार में कैद आज के आदमी की तस्वीर को कवि ने कितने मर्मस्पर्शी रुप में अंकित किया हैं --

''मैं
एक निचुडे हुए कपडे की तरह
बरामदे के किसी कोने में अलगनी पर
टाँग दिया गया हूँ ।'' (११)

इस काव्य संग्रह में काबराजी का संवेदनाओं में औद्योगिक एवं मशीनी सभ्यता से उत्पन्न महानगर, उनमें रहनेवाले आदमी का छोटा होता हुआ कद और उनकी कुंठाओ को देखकर, नगरबोध में पीड़ा दिखती है, वहीं उनके दिल में संकलित गाँ के जीवन की मधुर स्मृतियाँ साकार हो रही है। अपने दायित्व की स्याही को कलम का नोंक से सफेद पृष्ठों पर दिल में पत्नी कविताओं को अपनी वेदना, संवेदना और ममत्व में पिरोकर उतारा है।

भारत की प्राचीन सभ्यता के हिमायती डॉ. किशोर काबरा वर्तमान परिवेश में मनुष्यता, सामाजिकता और राष्ट्रीयता का अन्त देख अन्दर से इतने आहत होते हैं कि, उनकी रचनाएँ कही महानगरों के नंगेपन से दुखित दिखती है तो कहीं इस बात का उत्तर तलासती नजर आती है कि शायद महानगरों का नागरिक नाग से तो उत्पन्न नहीं हुआ।

अच्छा है तुम्हारा नगर
अच्छे हैं तुम्हारे नागरिक
एक बात बताओ दोस्त
यह 'नागरिक' नाग से बना है न !(१२)

प्रशासन और उसके ढीले कामकाज के बीच झूलती शिक्षित बेरोजगार नौजवान को लाचारी का एक शब्द चित्र देखिए-

एकलव्य बेचारा कटे हुए अँगूठे को लेकर
बस घूम रहा- ओफिस - दर ओफिस में
कागज - दर कागज में
फाइल - दर फाइल में (१३)

५) ऋतुमती हैं प्यास :-

ये विशुद्ध गीत-संग्रह हैं, जिसमें उपमालंकार एवं लाक्षणिक प्रयोगों से समलंकृत प्रकृति का चित्रोपमा एवं बिम्बात्मक चित्रण देखते ही बनता हैं ।

डॉ. किशोर काबराजी की 'ऋतुमती है प्यास' हिंदी साहित्य में एक चर्चित कविता है। उनके साठ गीतों को पुस्तकाकार में 'ऋतुमती है प्यास' शीर्षक से चिंता प्रकाशन, पिलानीने प्रकाशित किया । इस पुस्तक की देशभर में चर्चा हुई है ।

गीत क्रम की दृष्टि से 'सपनों की ग्रंथ' पहला गीत है जिसके बोल हैं -

'डूब गया कलरव में दिन
भीग गई शबनम से रात।' (१४)

संपूर्ण कविता मर्म स्पर्शी और हृदयग्राही है। एक और प्यारा गीत है 'रात कोई दस्तक दे रहा था' जिसकी हर पंक्ति पढ़ने - सुनने की बरबस इच्छा होती है क्योंकि शीर्षक का तारतम्य तभी सही बैठता है। - यथा -

''मैं हवाओं के भरोसे चुप रहा पर
रात कोई गीत दस्तक दे रहा था।''(१५)

ऐसी ही एक और रचना के बोल हैं-

उतर से यों चली बयार, इधर - उधर बिखर गए प्रश्न।

किशोर काबरा के प्रत्येक गीत की प्रत्येक पंक्ति गहरे अर्थ और अभिव्यंजनाएँ संजोए रहती है तथा रचना छोटी हो, मध्यम या बड़ी उसकी हर पंक्ति दूसरी पंक्ति से जुड़ी रहती है। यहीं नहीं यह सिलसिला प्रथम पंक्ति से अंतिम पंक्ति तक जारी रहता है। इसीलिए पाठक कोई भी गीत पूरा पढ़े बगैर नहीं रहता। ऐसे ही एक गीत की पंक्ति हैं-

''शब्दों का कद कितना छोटा है,
फिर भी वे नाव रहे कब से वेदांत।''(१६)

उपर्युक्त रचना में शब्दों की रोमांच और निहितार्थ असीम है। अन्य गीतों में भी पाठक यही पाता है - यथा -

ठहर गए क्षण के संदर्भ,

ठिठक गई आँख की इकाइर्यां।

बिखर गया पंखुरी - सा दिन,

फूल गई सेमल - सी रात ॥''(१७)

कवि की विशेषता यह रही कि जो उन्होंने जीवन में देखा है उसका ही ईमानदारी से अपने साहित्य में चित्रण किया है।

६) हाशिएँ की कविताएँ :-

हाशिएँ की कविताएँ काव्य-संग्रह को प्रबन्धकार डॉ. काबराजी के कवि-कर्म का उपोत्याद कहा जा सकता है। इसमें कवि की ३०१ क्षणिकाएँ ग्रन्थस्थ हैं; जो वस्तुतः प्रबन्ध-रचना के दौरान कवि के हृदय में उत्पन्न सम-सामाजिक बोध से सम्बन्धित चिन्तन कणिकाएँ हैं ।

७) मैं एक दर्पण हूँ :-

यह कवि का नवीनतम काव्यसंग्रह है । प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में भावों का टहकापन है तो व्यंग्य का चुटकीलापन भी हैं । कविता चाहे सामाजिक बोध से अनुप्राणित हो या वैयकितक चेतना संयुकत हो किन्तु कवि की एक गहरी जीवन दृष्टि सर्वत्र जुडी रहती हैं ।

८) चंदन हो गया हूँ :-

'चंदन हो गया हूँ' - गजलसंग्रह में ६० तरोताजा और बेहतरीन गजले हैं । इसके विषय में डॉ. कुँअर बेचैन ने ठीक ही लिखा हैं - 'डॉ. किशोर काबरा का यह गजल संग्रह भाव-सम्पदा, कला-कौशल, भाषा-सौष्ठव बिम्बयोजना तथा सरलता और सहजता की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कृति हैं ।'

डॉ. काबराजीने इस गज़ल संग्रह में प्रत्येक सवाल वह चाहे प्रत्यक्ष रुप से किया गया हो या परोक्ष रुप में, रुचिकर हो या अरुचिकर, अवस्था का हो या व्यवस्था का दर्शनीय हो या गोपनीय सभी का जवाब देने के लिए इन गज़लों में वे पर्त दर पर्त खुले है वही पंखुरी दर पंखुरी खिल भी है। वस्तुतः चीड़ से चंदन बनने

तक, मुक्तक से महाकाव्य के राजमार्ग पर की गई बिना पड़ाव व मुकाम की सृजनयात्रा अन्तर्यात्रा के दौरान कतरा-कतरा टपकी हुई गज़ले हैं।

जीवन संघर्ष, व्यवस्था, वर्तमान, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक हालत, प्रेम, परिवेश जो कुछ कविने महसूस किया उन सब क्षणों का समय का यथार्थ चित्रण सामने रखा है इनमें जहाँ टूटन, छूटन, बिखराव है वहीं आस्था - विश्वास भी । ये आनंदित भी करती है। अतः कह सकते है कि भविष्य का रास्ता भी दिखाकर प्रेरित करती है।

कवि की काव्य रचनाओं में द्वंद्वात्मकता दिखाई देती है। इस संग्रह में युगीन समस्याएँ सामाजिक विसंगतियाँ राजनैतिक चालबाजियाँ आम आदमी की कुंठाएँ वैज्ञानिक उपलब्धियों की अमानवीय परिणतियाँ जैसे विषय भी गज़ल का केन्द्र बने हैं।

सहीकता में गहन गंभीर और महत्वपूर्ण बात रखकर चिन्तन को जागृत कर सोचने को विवश करती है। कवि का प्रत्येक शेर आदमी का संपूर्ण जिन्दगी को एक शेकर में व्यक्त करके कहते हैं।

''जन्म से लेकर मरण तक दौड़ता है आदमी
दौड़ते ही दौड़ते दम तोड़ता है आदमी।''

''जंगल सब शहर हो गए,
और शहर जहर हो गए,
राम और रहीम है कहाँ ?
उन्हें चार प्रहर हो गए।''(१८)

इस पंक्ति के माध्यम से किशोरजी की काल्पनिकता का दर्शन होता हैं। सहजता, सरलता से अपनी बात स्पष्टरुप से बताई है। जिसमें अपनी भाषा बिम्ब एवं प्रतीक है जिसमें अजीब मिठास और अपनापन है। कवि का यह मौलिक अंदाज व सहजता ही उनके गज़ल काव्य की अपनी विशेषता है जो उन्हें विशेष महत्व के साथ साहित्य में विशिष्ट दर्जा देती है।

बारह ज्योतिर्लिंग और चारों धामों की यात्रा पर निकला तीर्थालु यात्रा के अंतिम मुकाम पर जाकर खुद तीर्थ बन जाता है तो मुक्तक से महाकाव्य की सृजनयात्रा के बाद काबराजी का नीड़ से नन्दनवन होना और चीड़ से चंदन होना स्वाभाविक है।

''घिस गया इतना कि चंदन हो गया हूँ,
झुक गया इतना कि वंदन हो गया हूँ।''

''अर्थ लय तुक तान-सारे व्यर्थ हैं अब,
गीत गलकर मात्र गुंजन हो गया हूँ।''(१९)

आदमी रिश्तों और दायित्वों के दो पाटों के बीच कैसे पिसता है, इसकी अभिव्यक्ति करता यह शेर देखिए-

''पिताने वसूली थी बचपन की कीमत,
ये बेटा बुढ़ापे का लगा किराया।''(२०)

कवि किशोर मालवा की पावन पवित्र भूमि पर जन्मे हैं अपने मालवा से वे मोहित भी है और उन्हें गर्व भी है। उज्जैन के महाकाल पर पावन धरा पर, गर्व करते कहते हैं-

''महाकाल का शून्य गड़ा इस धरती पर
है धरती की काली माटी मालवा की।''(२१)

देश के वर्तमान नेताओं की राजनीतिने कवि को बहुत आहत किया है वे दुखी है देश की इन नेताओं से जो-

''देश की अच्छी हिफाजत कर रहे हो।
श्वेत विधवा का समझ कर रहे हो।''(२२)

जल समस्या सामाजिक ही नहीं राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समसामाजिक एक जवलंत मुद्रा है उसी की अभिव्यक्ति उनके साहित्य में देखने को मिलती है - यथा -

''ऐसी पड़ी डकैती चौपट हुई है खेती,

केवल बची है रेती पैदी में इस नहर के।''

''घी दूध आसमाँ पर पानी गया रसातल

बस सामने हमारे प्यालें बचे जहर के।''(२३)

इस प्रकार किशोर काबराजी का काव्य-संग्रह बहुत चर्चित एवं युगबोध के समान है।

९) किशोर सतसई :-

हिन्दी कविता के शीर्षस्थ हस्ताक्षरों में कवि किशोर काबराजी का महत्वपूर्ण स्थान है । वे हिन्दी के प्रतिभासंपन्न कवि एवं देश के पश्चिमांचल के गौरव है। डॉ.काबराजी कविता ही नहीं लिखने वरन् पूरी निष्ठा के साथ जीते भी है। दूसरें शब्दों में कहे तो वे जो लिखते हैं इसे जीते हैं और जो जीते हैं वही लिखते है। यही कारण है कि उनके काव्यों में अनुभूति की सच्चाई एवं युगबोध अपनी समग्रता के साथ व्यकत हुआ है।

किशोर-सतसई को कविने सात सोपानों में विभाजित करके जरा जीवन संबंधी अपना विराट अनुभव व्यकत कर दिया है। इन सात सोपानों को कवि ने इस प्रकार बाँटा हैं --

(१) प्रकृति (२) पुरूष (३) परिवेश

(४) पर्यवेक्षण (५) परिलेखन (६) पर्यालोचन

(७) परिणति.

इन में से मैं यहाँ एकाद उदा.देकर किशोर-सतसई का थोडा-बहुत उल्लेख करूँगी , क्योंकि किशोर सतसई का विस्तृत रूप से अध्ययन अध्यास चार में करना है ।

'सतसई' कवि ने आज के मानव की विडम्बनाओं और असफलताओं पर कवि ने कई दोहों में व्यंग्यात्मक टिप्पुणर्यां दी है। पूर्व और पश्चिम के विद्वानों ने मनुष्य को किन-किन नजरों से देखा है, देखिए-

पर्हुंच गया है चांद पर पश्चिम का विज्ञान ।

रोटी तक पर्हुंचा नहीं पूरब का इन्सान ॥ (२४)

प्रेम, पीडा, प्रारब्ध औंर परिवेश से जुडे हुए कइ प्रश्नों को उठाया है कवि ने। कई दोहे तो पुरे चित्र की तरह बडे फलक पर फैले नजर आते हैं; जैसे

मंदिर से मस्जिद बनी , मस्जिद से मैदान ।
पत्थर में ही खो गया मेरा हिन्दुस्तान॥ (२५)

भुख, गरीबी, काहिली, लूटफाट, आंतक ।
भारत के माथे लिख भाग्य के यही अंक ॥ (२६)

पाँवों में बसाखिर्यां, हाथों में हथियार ।
लँगडी - लूली यह सदी आ पहुँची इस पार ॥ (२७)

'किशोर- सतसई' में संक्षिप्त, गोपन, सारल्य, तारल्य, सांकेतिकता,लाघव, अर्थगांभीर्य, साहजिकता, रमणीयता, लोकप्रियता, लोकरंजकता, श्रुतिसुखदता, चित्रात्माता, शाश्वती औंर समसामयिकता का मंजुल मिलन हुआ है। इन दोहों को देखकर यह बात स्पष्ट हो जाती हैं कि दोहा बनाया नहीं जाता, बन जाताहैं। किशोर में छिपा नन्दकिशोर स्वयं को भी ढूंढ रहा हैं इनमें, स्वयं के ऋण का उपाय भी ढूंढ रहा हैं इनमें -----

''उलझ गया, संसार में, कैसे पाऊँ छोर ।
सुलझा दो इस गाँठ को मेरे नन्दकिशोर ॥'' (२८)

१०) प्रबन्ध काव्य :-

(१) उतर महाभारत - १९९० - अभिव्यक्ति, दिल्ली.

(२) उतर रामायण - १९९४ - अविराम प्रकाशन,दिल्ली.

(३) परिताप के पाँच क्षण - १९७९ - स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद.

(४) धनुषभंग - १९८२ - एस.चंद हेड क.नई दिल्ली.

(५) नरो वा कुंजरो वा - १९८४ - साहित्य सरकार, दिल्ली

११) शोध-प्रबन्ध : एवं निबन्ध :-

(१)रीतिकालीन काव्य में शब्दालंकार - १९७५, जवाहर प्रकाशन, मथुरा.

(२)साहित्यिक निबन्ध - १९९४ - शान्ति प्रकाशन, रोहतक.

(३)अध्ययन, मनन और अनुशीलन - १९९९ पश्चिमांचल, अहमदाबाद.

कहा गया है कि - गद्यं कविनां निकषं वदति । पद्य के साथ-साथ गद्य में भी उसी अधिकार और क्षमता से लिखनेवाले डॉ. किशोर काबरा सव्यसाची ही तो हैं। डॉ.काबराजी का गद्य-लेखन, बाल-साहित्य से लेकर निबन्धों एवं शोध-प्रबन्धों जैसे प्रौढ साहित्य तक परिव्याप्त हैं। काबराजी का प्रथम संग्रह गद्य-ग्रंथ सन् १९७५.में प्रकाशित शोध-प्रबन्ध -- रीतिकालीन काव्य में शब्दालंकार ।

१२) रीतिकालिन काव्य में शब्दालंकार :-

काबराजी का यह शोध प्रबंध है जिसमें -

काबराजी ने वैदिककाल से अद्यावधि शब्दालंकारों का वैज्ञानिक पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया है। समुचे ग्रंथ में पदे-पदे गद्यकार डॉ.काबराजी का कवि झाँकता दीख पडता हैं।

डॉ. किशोर काबरा का यह 'रीतिकालीन काव्य में शब्दालंकार' पीएच.डी. का स्वीकृत शोध-प्रबंध है। प्रारंभ में अपने ग्रंथ के विषय में यह विचार व्यक्त किए हैं''- प्रस्तुत शोध-प्रबंध रीतिकालीन काव्य से संबंधित शब्दलंकारों के अध्ययन का सर्वप्रथम प्रयास है। इसमें संस्कृत काव्यशास्त्र में विवेचित शब्दालंकारों की पृष्ठभूमि में रीतिकालीन शब्दालंकारों एवं उनके परवर्ती प्रभावों का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन किया गया है तथा कई नवीन निष्कर्षो का उद्घाटन किया गया है। उपसंहार में भी इस को पुष्ट करते हुए इतना और जोड़ा गया हैं - ''यह शोध-प्रबंध अपने आप में पूर्ण इकाई के रुप में अविकाल से आज तक के शब्दलंकार का शास्त्रीय एवं प्रयोगात्मक इतिहास प्रस्तुत करता है।''

ग्रंथ को दस परिच्छेदों मे विभाजित किया गया है। प्रथम चार परिच्छेद भूमिका के रुप में नियोजित हैं। प्रथम परिच्छेद में शब्दालंकार को व्यापक्ता का विवेचन करते हुए उसका काव्यशास्त्र के विभिन्न संप्रदायों से महत्वपूर्ण चमत्कार, नादसौंदर्य, प्रकृति और लोकजीवन की द्रष्टि से उसकी गरिमा पर प्रकाश डाला गया है। शास्त्रास्त्रों और आभूषणों के बृहद चित्रों से सुसज्जित चित्रालंकारों में क्रमशः संग्राम की अचेतन कुंठा को

काव्यानंद में और आभरण की लालसा को शब्दालंकार की विलीनता में परिणित होते पाया गया है। लेखकने 'विधान पक्ष' और 'वस्तु पक्ष' में क्रमशः अलंकार संप्रदाय और रससंप्रदाय को रखकर शास्त्रीय 'वस्तु' शब्द के अर्थ का मिरादर कर किया है जो अनुचित है। द्वितीय परिच्छेद में अलंकार का लक्षण एवं वर्गीकरण किया गया है। इसमें कोई नवीनता नहीं है। आचार्य मम्मट के अन्वय व्यतिरेक भाव और आचार्य रुपक के आश्रयाश्रयि भाव में ऐसा-कोई विरोध नहीं कि मम्मट के वर्गीकरण को अशुद्ध मान लिया जाये। आश्रयाश्रयि भाव का निर्णायक अन्वय व्यतिरेक भाव ही तो है। हर अलंकार शब्द के आश्रय या अर्थ के यह अन्वय और व्यतिरेक ही तो बतायेगा। तृतीय परिच्छेद में शब्दालंकार का लक्षण और वर्गीकरण उपस्थित किया गया है। पुनरुक्ति, प्रयत्नलाघव, उच्चारण-साम्य या स्वर एवं ध्वनिसाम्य, कौतुक-कौतुहलप्रियता, वक्रमार्ग की अभिरुचि, गोपिन का आनंद आदि। मन स्तत्यों का शब्दालंकार का आधार समझा जा सकता है। जहां शब्दाश्रित चमत्कार या श्रवणरमणीयता हो यहां शब्दालंकार होता है। लेखकने वर्गीकरण (१) वर्णात्मक (२) शब्दात्मक (३) अर्थात्मक और (४) चित्रात्मक रुप में किया है। चतुर्थ परिच्छेद में संस्कृत में शब्दालंकार विवेचन की परम्परा का अन्वेषण किया गया है। इसमें शब्दालंकार के इतिहास को (१) भरत (२) ध्वनिपूर्वकाल (३) ध्वनिकाल और (४) ध्वन्युत्तरकाल में विभाजित करके भरत से अचार्य विश्वनाथ तक संक्षेप से निरुपित किया गया है।

पंचम परिच्छेद से 'रीतिकालीन काव्य में शब्दालंकार का विवेचन प्रारंभ होता है। इस परिच्छेद में हिन्दी साहित्य के रीतिकाल का इतिहास, प्रवृत्तिर्यां, शास्त्रीय एवं साहित्यिक पृष्ठाधार, रीतिकालीन कवियों का वर्गीकरण और शीर्षकों में हिन्दी इतिहास में बहुचर्चित क्षुण्णमार्ग पर संकलित किया गया है। षष्ठ परिच्छेद वस्तुतः विश्षलेषण और तर्कसंगत प्रतिपादन की द्रष्टि से महत्वपूर्ण है और इसमें नवीनता लक्षित होती है। इसमें शब्दालंकारों में प्रत्येक का लक्षण और विवेचन ऐतिहासिक अनुक्रम में किया गया है। अनुप्रास, यमक, श्लेष, प्रहलिका, चित्र, पुनरुक्तवदाभास और वक्रोकित इन सात शुद्ध एवं स्वतंत्र रीतिकालीन शब्दालंकारों की अच्छी मीमांसा की गयी है। सबसे अधिक उल्लेखनीय विशेषता चित्रालंकार के विशद् विवेचन की है जो कि रीतिकालीन कवियों में प्रिय विषय रहा है। ग्रंथ की उपादेयता परिशिष्ट में छत्तीस आकार एवं बंधचित्रों के सोदाहरण सन्निवेश से और बढ़ गया है। इन चित्रों से चित्रालंकारों के समझने में भी सरलता हो गयी है। पृष्ठ १३५ से १५० तक चित्रालंकार का निरुपण दर्शनीय है। सप्तम् परिच्छेद 'रीतिबद्ध काव्य में शब्दालंकार'

केशव शब्दालंकार'' पूर्व परिच्छेदों में निरुपित सिद्धांत पक्ष का व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक स्वरुप परिलक्षित करता है। नवम परिच्छेद में 'रीतिमुक्त काव्य में शब्दालंकार' का सोदाहरण निरुपण किया गया है। पद्माकर को रीतिमुक्त कवियों में परिगणित करना कहाँ तक उचित है यह विचारणीय है। उनका 'पद्माभरण' अलंकार ग्रंथ उसी तरह पाठकों को प्रिय है जैसे राजा जसवंतसिंह का 'भाषा-भूषण' । यही ठीक है कि उन्होंने 'कुवलयानंद' की तरह शब्दालंकारों को अपने अलंकार ग्रंथ में उनके समान कवि विरल हैं। उनका 'जगद्विनोद' भी रस ग्रंथ है। दशम परिच्छेद में रीतिकालीन शब्दालंकार की परवर्ती परम्परा का विचार करते हुए लेखकने (१) भाषा सम (२) वीप्सा और (३) पुनरुक्ति प्रकाश को नवीन अलंकार बताया है जो विशेष महत्व नहीं रखता क्योंकि विश्वनाथ और भिखारीदास आदि उनके विषय में लिख चुके थे। नवीन काव्यशास्त्रियों का कुछ परिचय इस परिच्छेद में अवश्य मिल जाता है।

डॉ. काबरा ने चित्रालंकार आदि के उदाहरण देने में गुजरात के कवि महेरामण सिंह की कृति 'प्रवीण सागर' और दयाराम की कृति 'दयाराम सतसई' का भी उपयोग किया है जिससे रीतिकाल और ब्रज भाषा का दूरगामी प्रभाव संकलित होता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि रीतिकालीन अलंकारों के सैद्धांतिक और प्रयोगात्मक इतिहास को अवगत करने के लिए आलोच्य ग्रंथ प्रशंसनीय है।

१३) साहित्यिक निबन्ध एवं अध्ययन, मनन और अनुशीलन :-

'रीतिकालीन काव्य में शब्दालंकार 'में जो बात काबराजीने कही है वही बात इस साहित्यिक निबन्ध में कही है। इन दोनों निबन्ध में भी शत-प्रतिशत सही है। स्वयं काबराजी का विधान अपने इन निबन्ध संग्रहोंके संबन्ध में उद्धरणीय है :- '' इनमे कवि है , कलम है , कागज है। इनमें भूमि है , भूमिका है , भौमिकता है। इनमें ग्रंथ है , ग्रंथकार है , ग्रंथावलोकन है। इनमें जीवन है , जगत है , जगन्नियता है।(२९)

१४) बाल-साहित्य :-

(१)तितली के पंख - १९९२ - अभिनव भारती, अहमदाबाद.

(२)टिमटिम तारे - १९९५ - अभिनव भारती, अहमदाबाद.

(३)बालरामायण (प्र.सं) १९७२ - सद्विचार परिवार, अहमदाबाद.

(४)बालरामायण (सचित्र) - श्रीकृष्ण जन्मस्थान - मथुरा.

(५)बालरामायण (तृ.सं.) - पश्चिमांचल प्रकाशन, अहमदाबाद.

(६)बाल कृष्णायन - १९७९ - श्रीकृष्ण जन्मस्थान - मथुरा.

(७)आज यौवन ने पुकारा देश को - १९८५ - सद्विचार परिवार, अहमदाबाद.

(८)भारत-दर्शन - अभिव्यकित, दिल्ली.

(९)हम सब पंछी - १९९२ - अविराम प्रकाशन, दिल्ली.

(१०) खट्टे अंगुर - १९९४ - अलंकार प्रकाशन, दिल्ली .

(११) सदाचार की कहानियाँ - अलंकार प्रकाशन, दिल्ली .

(१२) चोर की खोज - अलंकार प्रकाशन, दिल्ली .

(१३) नीति की कहानियाँ - अलंकार प्रकाशन, दिल्ली .

(१४) रोचक कहानियाँ - अलंकार प्रकाशन, दिल्ली

हिन्दी में बाल-साहित्य अत्यल्य है और जो मिलता है वह अपूर्ण। पत्र-पत्रिकाएँ भी इस क्षेत्र में या तो सीमांकन नहीं कर पाई है या फिर उसका यथोचित पालन नहीं हो पाया है। डॉ. काबराजीने अपने ललित साहित्य सृजन के साथ अपनी स्याही की तुलिका को समाज के इस महत्वपूर्ण अंग की ओर भी मोडा है तथा महत्वपूर्ण कृतियाँ रची हैं।

किशोरजीका बालसाहित्य बहुत विस्तृत साहित्य है। लेकिन इनमें से एक-दो का ही उल्लेख करूँगी।

अ) तितली के पंख :-

डॉ. किशोर काबरा कृत बाल-साहित्य में ' तितली के पंख ' का महत्वपूर्ण स्थान है , जिसे विवेचकों ने नवीन उपलब्धि के रूप में माना है। इस में कविने अपनी कवित्व प्रतिभा को ही प्रस्तुत किया है और गीतों से इसके कोमल बालवयु का निर्माण किया है। गीतों में पूरा सम्मोहन भाव है और बाल-बालिकाएँ सहज ही इनकी ओर आकर्षित हो उठते हैं।

इस संग्रह के गीतों के विषय में डॉ. अम्बाशंकर नागर ने कहा है कि - ''किशोर काबरा की तितली का पंख शक्कर की रोटी है ; जहाँ से तोडो वहीं से मीठी हैं। ''(३०)

ब) टिमटिम तारे :-

अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष में डॉ. किशोर काबरा ने बालकों को एक विशेष उपहार दिया है और वह है बालगीतों का संग्रह , 'टिमटिम तारे '। कवि काबराजी ने अपने संग्रह में इसी प्रकार के ३६ गीत सजाए हैं, जिन्हें तीन सोपानों में बाँटा गया है। स्वयं लेखक ने कहा है कि -''जब कभी तुम्हारी कलम के पाँव रात की गहरी स्यारी में डगमगाने लगे , तब हो सकता है कोई टिमटिमाता हुआ तारा तुम्हें बाँधकर मंजिल तक ले जाए।(३१)

क) बाल - रामायण :-

बाल-साहित्य के अन्तर्गत किशोर काबरा की बाल रामायण अत्यन्त प्रसिद्ध और मनोहारी रचना है , जिसका प्रणयन अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के प्रारम्भ मे ही किया गया है। बाल रामायण एक ऐसी कृति है जो समस्त राम-कथा को अत्यन्त ही सरल और सुबोध रुप में प्रस्तुत करती है। नागरजीने रस कृति की प्रशस्ति करते हुए कहा है- 'रचना है यह ललित ललाम '।

बाल रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के अनुपम चरित्र का महिमा गायन किया है। कहा जाता है कि - श्रीराम के चरित्र का गायन करना कवि तथा संतो का प्रिय कर्म रहा है। 'अनंता, बहुविध कहहि सुनहि सब संता।' अतः काबराजीने भी यह प्रणाली रखी है। अतीत की विरासत भविष्य की थाती बन सके इस उद्देश्य से समकालीन हिन्दी साहित्य में डॉ. काबराजीने सरस, सरल शब्दावली, प्रवाहमयी भाषा तथा सोलह - सोलह पंक्तियों के साठ छंदो में बाल पाठकों के लिए रामकथा की प्रस्तुति की है।

कवि अम्बाशंकर नागरने ठीक ही लिखा है -

''ग्रंथ बहुत थे, किंतु बाल-

रामायण जैसा ग्रंथ तथा।

कवि किशोरने रची इसलिए,

राम चरित्र की रुचिर कथा।''(३२)

प्रायः बालक देश का भविष्य होते है। बाल मन पर कविता के माध्यम से किसी चरित्र में समाहित अच्छाइयों को आर्शापित किया जा सकता है। श्रीराम का चरित्र मानवीय सद्गुणों का समन्वय है। पुत्र, बंधु,

स्वामी, सखा, सामान्यजन तथा राजा प्रत्येक रुप में श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम है। रामचरित्र का बिम्ब बाल मन पर स्थायीरुप से अंकित हो सके, इस उद्देश्य से इस बाल रामायण को सुमधुर स्वर साम्राज्ञी डॉ. रंजाना हरीश के स्वर तथा प्रसिध्ध संगीत निर्देशक श्री दानसिंह की धुन में ध्वनिमुद्रण भी किया गया हैं।

''जय रघुनंदन जय सियाराम'' की टेक के साथ यह रामकथामृत पाठकों, गायको तथा श्रोताओं को रस-गंगा तथा भाव-नर्मदा में अवगाहन कराकर उन्हें चरित्र निर्माण की प्रेरणा प्रदान करने में समर्थ है।

बाल रामायण में रामकथा का वर्णन तो है साथ ही इस कृति में शुद्ध शब्दावली तथा छंद प्रवाहमयता का भी दर्शन होता है। जैसे -

''सदा सुहानी मंगल कारिणि
अवधपुरी शोभा की खान।
जहाँ बिराजे जन-मानस में
सीता वल्लभ राम सुजान।(३३)

राम राज में प्रजा सुखी थी,
नहीं किसी को कोई कलेश।
सारी जनता धर्म परायण,
जात-पात का वहीं न लेश।(३४)

वर्तमान राजनैतिक अराजकता के दर्शनविहीन समय में रामराज्य ही आदर्श हो सकता है-

मर्यादा पुरुषोत्तम हरदम-
जनमत का करते सम्मान।
सुख-वैभव बढ़ चला, सबेरे-
जैसे चढ़ता है दिनमान॥(३५)

डॉ. काबराजीने बाल - रामायण में ठीक ही कहा है -

'इस छोटी-सी रामायण में
बोल रहे है युग के प्राण।

बच्चों इसके बल पर होगा,

सारी दुनिया का कल्याण।'

कवि बच्चों का आहवान करता है-

'रावण जैसे दुष्टों से तुम,

सदा बचाना अपना देश

बच्चों ! याद हमेशा रखनी

रामायण का यह संदेश।''(३६)

अतः यह लघुकृति हिंदी के साहित्य मंदिर में सतत प्रज्जवलित एवं पुष्प की तरह महेंक उठेगी क्योंकि इसमे संस्कृतनिष्ठ, ग्रामीण तथा ऊर्दु से प्राप्त शब्द योजना का प्रमाण मिलता है। उसी तरह लोकोक्तियों एवं मुहावरों सा प्रयोग भी सहजरुप में प्रस्तुत कर पाठकों का दिमाग जीत लिया है।

ड) बाल - कृष्णायन :-

बाल - कृष्णायन में बालक कृष्ण के चरित्र का वर्णन किया है। सामान्य जन, विद्वान, बूढ़े-बालक, साक्षर-निरक्षर, छोटे-बड़े, नर-नारी सभी के प्रिय गोवर्धनधारी श्री कृष्ण की महागाथा का वर्णन बाल-कृष्णापन में किया है। नटवर श्री कृष्ण की कथा तथा उनका चरित्र मात्र भारत में नहीं परंतु समग्र सृष्टि की अमरप्रेरणा स्त्रोत्त तथा अप्रितम धरोहर है। १८ पंक्तियों के ६० सरस गेय छंदो में कृष्ण-कथा को संवेदना रुप सागर को बिन्दु में समेटना दुष्कर है। किंतु कवि किशोरने इस असंभव कार्य को संभव ही नहीं लेकिन सरल बना दिया है।

हर पनघट पर श्याम छिपाए

हर तप पर बंशी की तान।

कल कल कदमे कालिंदी, बस

करती कान्हा का गुणगान।।(३७)

भज गोविंदम भज गोपाल के सम्मुट युक्त, १६-१५ मात्राओं पर यतिमय इन छंदो में भाव, रस, बिम्ब, शब्द तथा शिल्प का पंचतत्व मिश्रित है।

यह कृति नर्मदा की सलिल-तरंगो की तरह प्रवाहमयता इतनी बाँधती है कि पूर्ण वाचन के बाद भी मन में पदों की ध्वनि गुंजती रहती है।

कवि किशोरजीने बाल - कृष्णापन में कई जगह प्रकृति का सुरम्य चित्र खींचा है। कृष्ण जन्म के समय प्रकृति का वर्णन हूबहू किया है - जैसे-

वर्षा रानी लेकर आई,
मानो गज़ मोती के पाव।
नदिर्यां नाच रहीं, झरने भी,
खूब बजाते थे करताल,
खूश्बू लेकर चलीं हवाएँ,
पंख पसारे उड़े मराल।
बीरबहूटी लाल चुनरिया-
ओढ़ चली अपनी ससुराल।
सारस, कोर चकोर चकित थे,
मुस्काते डाली के फूल।
सत्य हो गए रथ के सपने,
स्वप्न हो गई पथ की धूल।
सावन बीता, भादौं आया,
आयी वह कजरारी रात।
कारागृह के अंधकार में
उतरा जैसे पुण्य प्रभात।
प्रकट हुए खुद दीनदयाल।
भज गोविन्दं, भज गोपाल॥(३८)

कंस के अत्याचारों, पूतना, तृणावर्त, यमलार्जुन, बकासुर, अंधासुर, कालियानाग तथा स्वयं कंस का नाश करने के साथ - साथ नंदकिशोर की बाल - लीलाएँ माखनचोरी, चोरहरण, गोपालन, गोवर्धन-लीला का विश्वसनीय वर्णन कविने किया है। राधा-कृष्ण के मिलन तथा रासलीला का शिष्ट-शालीन तथा सुमधुर शब्दचित्र पाठक के मन को मोह लेता है -

शरदपूर्णिमा की शुभ रजनी,
शुभ्र चांदनी का विस्तार।
कान्हा की बाँसुरिया सुनकर,
आई सब तजकर धर-बार।
बरसाने की चपल राधिका,
वृंदावन के नवलकिशोर।
एस प्राण दो देह हो गए,
ऐसी बंधी प्रीत की डोर।
जुड़ी गोपियाँ परिमण्डल में,
शुरु हुआ फिर अद्‌भूत रास।
जड़-चेतन सब मुग्ध हो गए,
देख रास के हास - विलास।
समय रुका मानो उस काल।
भज गोविन्दं, भज गोपाल॥(३९)

सांदीपनि आश्रम सुदामा से मैत्री, द्वारका निर्माण, रुकिमणी वरण, शिशुपाल वध, पाण्डवों से मैत्री, लाक्षागृह प्रसंग, विदुर का अनुराग, कुरुक्षेत्र युद्ध, गीताज्ञान तथा अंत में श्री कृष्ण की लीला प्रसंगो का भी यथाक्रम प्रस्तुत किया हैं। साथ ही आंतरिक लोककल्याण के पक्ष को उजागर करने के साथ चमत्कारपूर्ण अंधश्रद्धा का परिहार भी किया है। बाल-पाठकों के मनोविकास की द्रष्टि से यह पक्ष महत्व का स्थान रखता है। योगी-भोगी तथा राग-विराग के आधार पर कृष्ण को एक साथ देखा है और हमारे डॉ. काबराजीने सही तरीके से दिखाया है।

''लेकिन लोगों के भीतर भी,
योगीराज रहे भगवान।
सुख सुविधाओं के सिरहाने
उगी हुई संयम की पाँख।
भोग-योग दोनों पर मानों
लगी हुई थी उनकी आँख।''(४०)

बाल - कृष्णयापन में काबराजी ने बालमानस को सहज एवं सरलता से गूढ़तम गीता को सरलतम शब्दों में प्रस्तुत किया है। जैसे -

''सच्ची कर्म वही है, जिसमें
नहीं छिपी हो फल की चाह।
सच्चा धर्म वही है, जिसमें,
रहे निरंतर एक प्रवाह।
कोई धर्म नहीं है छोटा
और नहीं है कोई भव्य।
करें सभी निष्काम भाव से,
हम अत्यन्त - अपना कर्तव्य।(४१)''

कल की चिंता किए बिना ही हमें निष्ठा से कर्म करने का बोध डॉ. काबराजीने बाल कृष्णयापन में दिया है।

माधुर्यपूर्ण शब्दावलि, सरल, सरस, भावपूर्ण तथा बिम्ब विधान के साथ इसकृति को पठनीय बना दिया है। ऐसा लगता है कि पूरी कृष्ण-जीवन गाथा बार बार पढ़ना ही चाहिए इतना नवीनतम ग्रंथ है।

डॉ. किशोर काबरा के बाल - साहित्य में इसके अतिरिक्त 'हम सब पंछी', 'सदाचार की कहानियाँ' और 'चोर का खोज' आदि उल्लेखनीय है।

ई) आज यौवन ने पुकारा देश को :-

काबराजी युवा-नेता में समस्त भारत के यौवन के आगमन को देखते और स्वागत करते हैं । इसमें कवि को नए संकल्प और नए स्वप्न दिखाई दिए है। नए भारत की नई कल्पना जागी है। कुल मिलाकर इककीस राष्ट्र और राष्ट्रीयता से इक्कीस ओतप्रोत गीतों को कवि ने इसमें प्रस्तुत किया हैं।

१५) अनुवाद :-

(१) हरि का मार्ग- सत् विचार परिवार , अहमदाबाद

(२) भागवत प्रसादी- सत् विचार परिवार , अहमदाबाद

(३) पाप, प्रायश्चित और प्रभु - सत् विचार परिवार , अहमदाबाद

(४) विद्यार्थियों और युवकों से - सत् विचार परिवार , अहमदाबाद

(५) वचनामृत बिन्दु - सत् विचार परिवार , अहमदाबाद

(६) अमृत बिन्दु - सत् विचार परिवार , अहमदाबाद

(७) क्रिकेट के विश्व कीर्तिमान ए.आर.सेठ. अहमदाबाद.

(८) क्रिकेट सीखिए - बल्लेबाजी ए.आर.सेठ. अहमदाबाद.

(९) क्रिकेट सीखिए - गोलंबाजी ए.आर.सेठ. अहमदाबाद.

(१०) भारतीय क्रिकेट खिलाडी ए.आर.सेठ. अहमदाबाद.

(११) मुक्ता, योगभिक्षु प्रकाशन, अहमदाबाद.

(१२) गरजते सागर का मौन

(१३) चक्षुदान - सत् विचार परिवार , अहमदाबाद

(१४) कुण्ठारोग से मुकित - सत् विचार परिवार , अहमदाबाद

(१५) घुमड़ते सागर का मौन - (हि.सा. अकादमी, गांधीनगर) १९९५.

(१६) भूगोल कक्षा - ८ (हि.सा. अकादमी, गांधीनगर) १९७३.

(१७) भूगोल कक्षा - ५ (हि.सा. अकादमी, गांधीनगर) १९७५.

(१८) भूगोल कक्षा - ६ (हि.सा. अकादमी, गांधीनगर) १९७७.

(१९) प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोग मुक्ति (प्रयोग ट्रस्ट, अह.) २००२.

(२०) स्वामी कल्याण देव (सद् विचार परिवार, अह.) २००३.

१६) संपादन एवं संकलन :-

(१) पँखेरू पश्चिम के शान्ति प्रकाशन, रोहतक

(२) बूँद - बूँद धर में शान्ति प्रकाशन, रोहतक

(३) पछुवा के हस्ताक्षर शान्ति प्रकाशन, रोहतक

(४) गवाक्ष हिन्दी साहित्य परिवार, अहमदाबाद.

(५) राष्ट्रभाषा हिन्दी गु.प्र.रा.भा.प्र.समिति, अहमदाबाद.

१७) संयुक्त संपादन :-

(१) आधुनिक गुजराती कविताएँ - हि.सा.अ.गांधीनगर.

(२) गुजरात के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज -१ -हि.सा.अ.गांधीनगर.

(३) गुजरात के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज -२ -हि.सा.अ.गांधीनगर.

(४) आधुनिक गुजराती एकांकी. हि.सा.अ.गांधीनगर

(५) गुजरात के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज -१, १९९५. (हि.सा. अकादमी, गांधीनगर)

(६) गुजरात के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज -२, १९९५. (हि.सा. अकादमी, गांधीनगर)

(७) आधुनिक गुजराती कविताएँ, १९९६, (हि.सा. अकादमी, गांधीनगर)

(८) आधुनिक गुजराती एकांकी, १९९७, (हि.सा. अकादमी, गांधीनगर)

(९) शिक्षको माटे अध्ययनपोथी, कक्षा - ७, १९७२, (गु.रा.प्रा.मं.गांधीनगर)

(१०) शिक्षको माटे अध्ययनपोथी, कक्षा - ५, १९७२, (गु.रा.प्रा.मं.गांधीनगर)

(११) गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य, २००३ (हि.सा. परिषद, अह.)

(१२) राजेन्द्र शाह की कविताएँ, २००४ (हि.सा.अ.गांधीनगर)

(१३) हिन्दी बाल वाचनमाला कक्षा-२, १९८०, (गु.रा.शा.मं. गांधीनगर)

(१४) हिन्दी कक्षा-५, १९९७, (गु.रा.शा.मं. गांधीनगर)

(१५) हिन्दी कक्षा-६, १९८०, (गु.रा.शा.मं. गांधीनगर)

(१६) हिन्दी कक्षा-६, १९९२, (गु.रा.शा.मं. गांधीनगर)

(१७) विद्यापीठ हिन्दी बाल पाठावली, भाग-१, २००३, (गु.वि.अह.)

(१८) विद्यापीठ बाल एकांकी, २००४, (गु.वि.अह.)

(१९) सुबोध भारती, प्रवेशिका-१, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली)

(२०) सुबोध भारती, प्रवेशिका-२, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(२१) सुबोध भारती, भाग-१, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(२२) सुबोध भारती, भाग-२, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(२३) सुबोध भारती, भाग-३, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(२४) सुबोध भारती, भाग-४, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(२५) सुबोध भारती, भाग-५, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(२६) सुबोध भारती, भाग-६, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(२७) सुबोध भारती, भाग-७, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(२८) सुबोध भारती, भाग-८, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(२९) सुबोध भारती अभ्यास, पुस्तिका प्रवेशिका-१, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(३०) सुबोध भारती अभ्यास, पुस्तिका प्रवेशिका-२, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(३१) सुबोध भारती अभ्यास, पुस्तिका भाग-१, (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(३२) सुबोध भारती अभ्यास, पुस्तिका भाग-३, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(३३) सुबोध भारती अभ्यास, पुस्तिका भाग-४, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(३३) सुबोध भारती अभ्यास, पुस्तिका भाग-५, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(३४) सुबोध भारती अभ्यास, पुस्तिका भाग-६, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(३५) सुबोध भारती अभ्यास, पुस्तिका भाग-७, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(३६) सुबोध भारती अभ्यास, पुस्तिका भाग-८, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(३९) अभिनव भारती प्रवेशिका, भाग-१, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(४०) अभिनव भारती, भाग-१, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(४१) अभिनव भारती, भाग-२, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(४२) अभिनव भारती, भाग-३, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(४३) अभिनव भारती, भाग-४, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(४४) अभिनव भारती, भाग-५, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(४५) अभिनव भारती, भाग-६, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(४६) अभिनव भारती, भाग-७, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(४७) अभिनव भारती, भाग-८, १९८० (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(४८) अभिनव भारती, अभ्यास पुस्तिका, प्रवेशिका-१, १९८८ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली), कई संस्करण

(४९) अभिनव भारती, अभ्यास पुस्तिका, प्रवेशिका-२, १९८८ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(५०) अभिनव भारती, अभ्यास पुस्तिका, प्रवेशिका-३, १९८८ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(५१) अभिनव भारती, अभ्यास पुस्तिका, प्रवेशिका-४, १९८८ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(५२) अभिनव भारती, अभ्यास पुस्तिका, प्रवेशिका-५, १९८८ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(५३) अभिनव भारती, अभ्यास पुस्तिका, प्रवेशिका-६, १९८८ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(५४) अभिनव भारती, अभ्यास पुस्तिका, प्रवेशिका-७, १९८८ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(५५) अभिनव भारती, अभ्यास पुस्तिका, प्रवेशिका-८, १९८८ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली) कई संस्करण

(५६) हितोपदेश की कहानियाँ, १९८७ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली)

(५७) पंचतंत्र की कहानियाँ, १९८७ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली)

(५८) रामायण की कहानियाँ, १९८७ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली)

(५९) महाभारत की कहानियाँ, १९८७ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली)

(६०) भागवत की कहानियाँ, १९८७ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली)

(६१) उपनिषदों की कहानियाँ, १९८७ (एस.चंड, एडके नई दिल्ली)

(६२) राष्ट्रभाषा हिन्दी, १९९७

❖ ***कृतियों के अन्य भाषाओं में अनुवाद :-***

(१) एक टुकडा जमीन (लघुकथा) गुजराती, डॉ. मीना पण्ड्या

(२) टीपे टीपे कडवुं सच (लघुकथा) डॉ. मीना पण्ड्या

❖ ***शोध प्रबन्ध एवं समीक्षा ग्रंथ :-***

(१) डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ. घनश्याम अग्रवाल

(२) नरो वा कुंजरो वा : परंपरा और युगबोध - श्रीमती वैजयंती

(३) डॉ. किशोर काबरा के खण्ड काव्य - दीपक पंड्या

(४) आधुनिक मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य - डॉ. सत्य नारायण

(५) घनुषभंग - एक अनुशीलन - डॉ. घनश्याम अग्रवाल

(६) डॉ. किशोर काबरा व्यक्तित्व और साहित्य - एक अनुशीलन - डॉ. प्रमोद गुप्ता

(७) डॉ. किशोर काबरा के प्रबन्ध काव्य - एक अनुशीलन - **देवी वाला**

(८) धनुष भंग - एक अध्ययन - वेद व्यास

(९) किशोर काबरा और उनका काव्य - डॉ. ईश्वरचंद गर्ग

(१०) डॉ. किशोर काबरा के प्रबंध काव्यों में नारी - मनीषा रंगाणी

(११) डॉ. किशोर काबरा के काव्य में संवेदना और शिल्प - प्रवीणा रावल

(१२) हिन्दी की सतसई परम्परा के संदर्भ में किशोर सतसई का समीक्षात्मक अनुशीलन - **देवी वाला**

(१३) डॉ. किशोर काबरा के बाल साहित्य में एक अध्ययन - मीना

(१४) डॉ. किशोर काबरा के काव्य में नारी चेतना - फाल्गुनी सोचा

❖ ***अन्य संदर्भ ग्रंथ एव विशेषांक :-***

(१) बालगीत इतिहास साहित्य और समीक्षा - निरंकर देव सेक्सेना

(२) हिन्दी साहित्य का इतिहास भाग - २, डॉ. आलोक कुमार

(३) हिन्दी का खण्ड काव्य - डॉ. शिवप्रसाद गोयल

(४) कवि और समीक्षक - आमने सामने - डॉ. वीरेन्द्रसिंह

(५) नवगीत और लघुकथा - डॉ. जगदीश शुकल

(६) दिक्काल सर्जना - डॉ. विरेन्द्रसिंह - प्रबन्ध काव्यों में आधुनिक बोध - डॉ. उवर्षि शर्मा

(७) गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता - चन्द्रपाल सिंह क्षत्रिय

(८) स्वातंत्र्योतर हि. कविता के महाभारत के पात्रों का चरित्रांकन

(९) हिन्दी कविता : आठवाँ दशक

(१०) लघुकथा, पहचान और परख

(११) गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता - सं. डॉ. अम्बाशंकर नागर

(१२) गुजरात की समकालीन कविता - सं. गोवर्धन शर्मा

(१३) गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता - सं. डॉ. गोवर्धन शर्मा

(१४) ताप्ती लोक - (विशेषांक-२००७) - सुरत की पत्रिका।

(ट) सहयोगी संकलन : ७५ पुस्तकें

(१)पाठ्य पुस्तकों का सह संपादन - ५५ पुस्तकें - एस.चंद,-ऐड.सं.दिल्ली.

(२)पाठ्य पुस्तकों का सह संपादन - २० पुस्तकें - पा.प्र.भ.गुजरात राज्य, गांधीनगर.

(ठ) लधुकथा संग्रह :-

(१)एक चुटकी आसमान - १९८६ पाण्डुलिपि प्रकाशन -दिल्ली.

(२)एक टुकडा जमीन - १९९१ शान्ति प्रकाशन, -रोहतक

(३)बूँद -बूँद कडवा सच - १९९७ कर्णावती प्रकाशन, अहमदाबाद.

(४)एक टुकडा जमीन (गुजराती) - लक्ष्मी पुस्तक भंडार, अहमदाबाद.

(५)टीपे - टीपे कडवुं सच (गुजराती)- कर्णावती प्रकाशन, अहमदाबाद.

गद्यकार काबराजी के गद्य - शिल्प का सर्वाधिक मनोहर रूप हमें उनकी लधुकथाओं में देखने को मिलता है। ये लघुकथाएँ काबराजी के गद्य की उस शिष्टगत चेष्टा के दर्शन कराती है जिसमें उन्हों ने 'एक चुटकी आसमान', 'एक टुकडा जमीन' और 'बूँद-बूँद कडवा सच' को समेटना चाहा है। आपकी कई

लघुकथाएँ अपने समकालीन बोध हलकेपन और चुटकीलेपन के कारण उर्दू के स आदत हुसैन मंटो की याद दिलाती हैं।

डॉ. किशोर काबरा की अखण्ड काव्य साधना ने क्षणिका से खण्ड काव्य और मुक्तक से महाकाव्य तक की सफल यात्रा की है। काव्य -साधना की सफलता का यह सबसे बडा प्रमाण है। कि हिन्दी कें मूर्धन्य कवियों और सुप्रसिघ्घ साहित्यकारों ने इनकी काव्य- कला की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है तब मैं काबराजी का अभिनंदन किन शब्दों में करुं ? प्रा. भगवानदास जैन के शब्दों में इतना कहूँ कि -

''खोज डाला कुल जहाँ में, कुछ पता तेरा नहीं,
जब पता तेरा लगा, तो अब पता मेरा नहीं ॥

संदर्भ सूची :

(१) डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. घनश्याम अग्रवाल - पृ. ९

(२) डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. घनश्याम अग्रवाल - पृ. ४९

(३) डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. घनश्याम अग्रवाल - पृ. ४५

(४) महेंदी के फूल, पृ. ५

(५) महेंदी के फूल, पृ. ६

(६) महेंदी के फूल, पृ. १०

(७) डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. घनश्याम अग्रवाल - पृ. १५

(८) डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. घनश्याम अग्रवाल - पृ. १६

(९) डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. घनश्याम अग्रवाल - पृ. १६

(१०) साले की कृपा : डॉ. किशोर काबरा, पृ. १५

(११) टुटा हुआ शहर : डॉ. किशोर काबरा, पृ. १०

(१२) टुटा हुआ शहर : डॉ. किशोर काबरा, पृ. ९

(१३) टुटा हुआ शहर : डॉ. किशोर काबरा, पृ. ११

(१४) ऋतुमती है प्यास : डॉ. किशोर काबरा, पृ. ५

(१५) ऋतुमती है प्यास : डॉ. किशोर काबरा, पृ. १०

(१६) ऋतुमती है प्यास : डॉ. किशोर काबरा, पृ. ७

(१७) ऋतुमती है प्यास : डॉ. किशोर काबरा, पृ. ८

(१८) चंदन हो गया हूँ : डॉ. किशोर काबरा, पृ. ८

(१९) चंदन हो गया हूँ : डॉ. किशोर काबरा, पृ. ७

(२०) चंदन हो गया हूँ : डॉ. किशोर काबरा, पृ. ९

(२१) चंदन हो गया हूँ : डॉ. किशोर काबरा, पृ. ९

(२२) चंदन हो गया हूँ : डॉ. किशोर काबरा, पृ. ११

(२३) चंदन हो गया हूँ : डॉ. किशोर काबरा, पृ. १२

(२४) किशोर सतसई सोपान - ३ (परिवेश) दोहा - (३०४), पृ. ५४

(२५) किशोर सतसई सोपान - ३ (परिवेश) दोहा - (३०४), पृ. ४०

(२६) किशोर सतसई सोपान - ३ (परिवेश) दोहा - (३०४), पृ. ४४

(२७) किशोर सतसई सोपान - ३ (परिवेश) दोहा - (३०४), पृ. ५६

(२८) किशोर सतसई सोपान - ३ (परिवेश) दोहा - (३०४), पृ. १११

(२९) साहित्यिक निबंध एवं अध्ययन, मनन और अनुशीलन, पृ. ५

(३०) तितली के पंख - डॉ. किशोर काबरा, पृ. ४

(३१) टिम टिम तारे - डॉ. किशोर काबरा, पृ. ५

(३२) बाल रामायण - डॉ. किशोर काबरा, पृ. १०

(३३) बाल रामायण - डॉ. किशोर काबरा, पृ. १२

(३४) बाल रामायण - डॉ. किशोर काबरा, पृ. १०

(३५) बाल रामायण - डॉ. किशोर काबरा, पृ. १०

(३६) बाल रामायण - डॉ. किशोर काबरा, पृ. १२

(३७) बाल कृष्णायन - डॉ. किशोर काबरा, पृ. ११

(३८) बाल कृष्णायन - डॉ. किशोर काबरा, पृ. १२

(३९) बाल कृष्णायन - डॉ. किशोर काबरा, पृ. १३

(४०) बाल कृष्णायन - डॉ. किशोर काबरा, पृ. १४

(४१) बाल कृष्णायन - डॉ. किशोर काबरा, पृ. १६

अध्याय - २

संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य में सप्तशती परंपरा

प्रस्तावना :-

प्रस्तुत अध्याय में संस्कृत और प्राकृत साहित्य की एक दीर्घ परंपरा मिलती है। इस परंपरा के द्धारा वैदिक एवं पौराणिक सभी गाथाओं से हम परिचित होते हैं। मूलतः मातृवंदना, देव वंदना, देवी आराधना आदि भक़ितभावपूर्ण ढंग से होता आ रहा हो। दैव्यापराधक्षमा स्त्रोत यह भी मूलतः देवी वंदना ही है। जैसे

या देवी सर्वभूतेषु शकित रुपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम :॥(१)

या देवी सर्वभूतेषु मातृरुपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम :॥(२)

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरुपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम :॥(३)

इस प्रकार इस स्त्रोत के द्वारा देवी की उपासना की गई है। ये संस्कृत साहित्य में तो मिलती ही है पर परवर्ती साहित्य में यह धारा एक परंपरा के रूप में स्थापित हो गई है। इस परंपरा में हम थोडा अवगहन करेंगे।

❖ परंपरा का स्वरूप :-

परंपरा एक व्यापक शब्द है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका व्यापक सम्बन्ध है। साहित्य, धर्मशास्त्र, कला एवं समाजविज्ञान के क्षेत्र में परंपराओं के विविधरूप दिखाई देते हैं। परंपराओं में स्वीकृत प्रथाओं तथा प्रणालियों का अनुसरण एवं पूर्वकाल से चली आती हुई विचारधाराओं की अभिव्यकित होती है। डॉ. विद्यालंकार का कथन है -- ''परंपराओं से तात्पर्य उन आदर्शो, रीतियों,प्रवृतियों एवं स्थापनाओं से है जो पूर्ववर्ती कवियों से उत्तरवर्ती कवियों को प्राप्त होती चली आई ; तथा जो कवि समाज में स्वीकृत होने से स्वयं मेव काव्य में प्रचलित हो गई है। ''(४) गतानुगतिकता, मान्यता या विश्वास इसके लक्षण है। डॉ. सुधाकर पाण्डेय का कथन है -- ''चेतना के वे प्रेरणा बिन्दु जहाँ से भविष्य की सर्जना को दिशा एवं गति

प्राप्ति होती है ; परंपरा के प्राण है। प्रत्येक सभ्य समाज में परंपरा प्रगति के लिए द्वार खोलती है और भविष्य की चेतना को स्पंदित करने में योगदान देती है। उसकी जडता तो काल की गोद में विलीन हो इतिहास का विषय बन जाती है ; किन्तु बन प्रवाहित होती रहती है। ''(५) साहित्य सृजन अनादि काल से होता चला आ रहा है। प्रत्येक युग में उसने नया-नया रूप-रंग धारण किया जिसमें सजीव परंपरा का योग अतीत की भाँति श्रेयस्कर-रूप में रहा है। सतसई परंपरा भी प्रत्येक युग में नया रूप-रंग धारण करके प्रवाहित मिलती है।

❖ सप्तशती का अर्थ :–

संस्कृत के सप्तशती शब्द का अपभ्रंश रूप है ' सतसई '। संस्कृत साहित्य में सौ सात सौ, हजार श्लोको की रचना करने की परिपाटी बहुत प्राचीन है। वैसे तो सौ तथा सात सौ के लगभग की संख्या में रचित श्लोकों की रचना को भी ' शतक ' और ' सप्तशती ' की संज्ञा दे दी जाती है। परन्तु उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि ' शतक ' में सौ और 'सप्तशती' में सौ ही श्लोक हो । संस्कृत रचनाकारोंने इस नियम का कठोरता से पालन किया है। डॉ.सुधाकर पाण्डेय ने ' सतसई ' 'सप्तशती ' तद्भवरूप माना है।(६)

❖ संस्कृत में संख्यापरक ग्रंथों की परम्परा :-

संस्कृ त में कुछ रचनाएँ ऐसी मिलती है, जिनमें भकितमूलक शृंगार स्पष्ट लक्षित होता है । अर्थात ऐसी रचनाएँ प्राय : देवताओं के स्तवन से सम्बन्धित है। वृत्र की चतुःश्लोकी, तारसप्तक, यमुनाष्टक, सज्जनगुणदशक, वैतालपंचविशतिका महाकवि बिल्हणाकृत चौरपंचाशिका, बाणकृत्त चंडीशतक, मयूरकृत सूर्यशतक, शतसाहस्त्री संहिता (महाभारत) अष्टमहाश्री चैत्यस्त्रोत, सुप्रभातस्त्रोत सरस्वती स्त्रोत आदि भकितभाव में विभोर करनेवाली रचनाएँ है। स्त्रोतों की बहुत कुछ प्रचुरता रामायण में भी मिलती है। प्राचीन धर्मग्रंथों तथा पुराणों के स्त्रोतो में संख्यापरक नामों को प्रधानता दी गई है। संख्यापरक संग्रहों की प्रथापुराणों की देन रही है।

❖ सात की संख्या का आकर्षण :-

सप्तक,अष्टक, दशक, शतक आदि संख्यापरक नामों के अतिरिकत सात सौ संख्या के प्रति अधिक आग्रह दिखाई देता है। डॉ. राजकिशोरसिंह का कथन है - सात सौ संख्या के प्रति इस आग्रह का कारण बतलाना संभव नहीं हैं। संभवत : 'सप्त' तथा 'शती' का उच्चारण अनुप्रासात्मक तथा श्रुति-मधुर होने के

कारण अपनाया गया हो। मंत्र शासन में सात की संख्या महत्वपूर्ण होने के कारण ही कदाचित् आकर्षण का अनायास कारण रही हो,कुछ भी हो, यह निश्चित है कि ' सतसई ' में सात सौ से कुछ अधिक दोहे होते है और यह साहित्य विशेष लोकप्रिय रहा है।'' (७)

डॉ.श्याम सुन्दरदास ने बतलाया है कि -- ' सप्तशती ' और ' सतसई ' श्रृति-मधुर नाम तो अवश्य हैं।'' (८) बहुत संभव है कि अनुकर्ताओं का इसी श्रुतिमधुरताने प्रभावित किया हो। दुर्गासप्तशती गाथा सप्तशती, आर्यासप्तशती मार्कण्डेय पुराण का एरु अंश है ; जिसमें सात सौ श्लोकों द्वारा चरित्र और महात्म्य का वर्णन मिलता है। सात शतकों में बाँध देनेवाली इस परंपरा का कारण कुछ भी हो मगर यह निर्विवाद है कि सप्तशती परंपरा साहित्य-जगत की एक विशिष्ट परंपरा रही है।

❖ मुक्तक शैली :-

स्तोत्र तथा भकित के ग्रंथों से शतक सप्तशती आदि संख्यापरक नाम लिखने की परिपाटी शृंगार क्षेत्र की मुक्तक रचना के लिए भी प्रयुकत होने लगी । शृंगार मुकतकों के लिए सात सौ की संख्या का जितना आग्रह दिखाई देता है, उतना और किसी संख्या के लिए नहीं है। कहना होगा कि मुकतकों की रसगर्भ निर्भरता, वैदग्ध्यपूर्ण चमत्कृति सतसई में ही पुष्यित पल्लवित हुई है। हरेन्द्रप्रताप सिन्हा का कथन है - '' मुकतक रचना शैली का आदि स्त्रोत ऋग्वेद माना जाता है। वेदों में प्रकृति-सौंदर्य तथा प्रकृति उपासना के प्रकरण में सर्वथा मुकतक छन्दों का ही प्रयोग है। देवासुर-संग्राम तथा देवताओं के स्तोत्र-मंत्रो के अतिरिकत-मुकतक छन्दों का ही प्रयोग मिलता है।''(९) पुराणो. के अन्तर्गत शतक, अष्टक, सप्तशती आदि मुकतक शैली का प्रयोग मिलता है।

❖ सप्तशती परंपरा का आदि ग्रंथ :-

प्राचीन वैदिक साहित्य में प्राय : ज्ञानकाण्डी और कर्मकाण्डी साहित्य ही प्रचुर मात्रा में मिलता है। विक्रम संवत् के आरंभ के साथ एक तीसरे प्रकार के साहित्य का सृजन होने लगा। यह साहित्य लोकरंजनार्थ ऐतिहासिक सरस रचनाओं , मुकतकों एवं छोटे-छोटे पदों में निर्मित हुआ। इस लोकरंजनकारी साहित्य को प्रवेश सर्वप्रथम '' प्राकृत '' में लक्षित होता है। सभी विद्वानों में मतैकय मिलता है कि '' गाथा सप्तशती '' ही सप्तशती परंपरा का आदि ग्रंथ है। पं.पद्मासिंह शर्मा ने '' गाहा सतसई '' को ही अग्रिम स्थान दिया

है।(१०) आ. हजारी प्रसाद भी '' गाहा सतसई '' को ही इस परंपरा का सबसे प्राचीन ग्रंथ मानते है।(११) बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन भी द्रष्टव्य है - ''यदि सतसई लिखने की प्रथा अनुकरण पर ही चली हो तो इसमें शंदेह नहीं कि आदिम आदर्श सातवाहन की '' गाथा सप्तशती '' न ही उपस्थित किया।(१२) इन सभी कथनों का अभिप्राय यही है कि गाथासप्तशती ही सतसई परम्परा का प्रेरणास्त्रोत एवं आदि ग्रंथ है।

भारतीय लोकतंत्र का राष्ट्रीय संवत् है शकसवंत् जिसका प्रवर्तन सातवाहन (शालिवाहन) ने किया है। डॉ. शिवनन्दन कपूर का कथन है - '' ७८ ईस्वी से प्रारम्भ होनेवाला शक या शालिवाहन सवंत् भी काफी महत्वपूर्ण माना गया है। इसका उल्लेख भारतीय शिलालेखों तथा अभिलेखों में है। इण्डोचीन तथा इण्डोनेशिया तक प्राप्त संस्कृत के अभिलेखों में यह उद्धत है। इसके स्थापकों में कनिष्क , शालिवाहन के नाम मिलते है। ''(१३) डॉ. पुरूषोत्तमलाल भार्गव ने सप्रमाण सिध्ध किया है - '' शकसंवत् का मूल प्रवर्तक सातवाहन था ; जिसका राज्यरोहण काल ७८ ई. में जो शालिवाहन शकसंवत् का प्रारम्भिक वर्ष है। ''(१४) डॉ. भांडारकर ने '' अर्ली हिस्ट्री आफ दि दकखन में यही बतलाया है। ''(१५) सातवाहन वंश का तृतीय शती में पतन हुआ। धीरे-धीरे सातवाहन शब्द का प्रयोग बन्द हो गया और पंचम शती तथा बाद के प्राप्त शिलालेखों में उसे शककाल कहा जाने लगा । यह तो स्पष्ट होता है कि सातवाहन नाम संवत्सर के मूल प्रवर्तक की स्मृति में प्रयुकत हुआ है।

शालिवाहन जो प्राकृत भाषा में सालाहणहालहणहाल हो गया। मथुरानाथ शास्त्री हाल को ही शक-शालिवाहन संवत् का प्रवर्तक मानते है।''(१६)

ईसा की प्रथम शती में हाल की स्थिति माननेवाले विद्धानों में गाथासप्तशती को अधिकांश टीकाकारों के अतिरिकत श्री गौरीशंकर ओझा।(१७) श्रीधर वासुदेव सोहोनी (१८) का नाम लिया जाता है। डॉ. हरिराम आचार्य प्रमाणों से सिद्ध किया है - '' महाकवि हाल दक्षिणापथ के शक्तिशाली राजवंश सातवाहन वंश के एक प्रतापी एवं सुविख्यात सम्राट थे। ''(१९) गाथासप्तशती के प्रत्येक शतक के अन्त में जो गाथा मिलती है उसका सार यही है कि कवि वत्सलहाल ने इस प्राकृत काव्य की रचना की है जो रसिकजनों का हदयदयित है ; कण्ठहार है। प्राकृत भाषा के अनेक श्रृंगारप्रिय कवियों की गाथाओं का इसमें संकलन किया है। प्रथम शती की तृतीय गाथा से स्पष्ट होता है कि कवि वत्सल हाल ने कोटि सालंकार गाथाओं में से ७००

रसपेशल गाथाओं को चुनकर गाहासतसई का प्रवचन किया है। हाल ने रसज्ञों की रसज्ञता को तृप्त करने का उदेश्य ही सामने रखाहै ; उनके ही शब्दों में देखिए

''अभिअं पाउअकव्वं पढिउं सौउं अ जै ण आणान्ति ।
कामस्स तत तन्तिं कुणन्ति तै कहैण लज्जन्ति ॥ (२०)

(जो लोग अमृत-मधुर प्राकृत-काव्य को पढकर तथैव सुनकर भी नहीं समझते और कामशास्त्र विषयक चर्चा करते है। वे लज्जा का अनुभव क्यों नहीं करते ?) प्राकृत काव्य के ज्ञान के बिना कामशास्त्रसंबंधी तत्वज्ञान संभव नहीं है।

प्राकृत मुक्तकों का यह रचना लोकजीवन के समीप है। लोकजीवन के समीप होना ही इसकी लौकिक श्रृंगारिकता की उत्पति है। तत्कालीन लोकजीवन की रंगोली तथा उतनी ही सरल, निश्छल तथा मार्मिक अभिव्यक्ति तथा प्राकृतिक सौंदर्य चित्रों की मोहकता गाथासप्तशती में मिलती है। साथ ही नीतिआचार तथा भकित विषयक गाथाएँ कम-अधिक मात्रा में मिलती है। फिर भी गाथासप्तशती का मुख्य विषय श्रृंगार ही रहा है।

❖ पूर्ववर्ती साहित्य में श्रृंगार निरूपण :-

'गाथासप्तशती के पूर्ववर्ती साहित्य में श्रृंगारी भावना अपेक्षाकृत अल्पमात्रा में दृष्टिगोचर होती है। भारतीय साहित्य को जन्म देनेवाले वैदिक ऋषि तत्वचिंतन के साथ जिन सुमधुर भावों की अभिव्यकित कर गये , उन्हीं भावों की उमंग में ऊषा-विषयक सुक्तों में ऊषा-सुन्दरी के कल्पक रमणीय एवं मोहक चित्र उनकी हृदयग्राहिणी शकित का परिचय देते है।(२१) इन्ही चित्रों के वर्णन में श्रृंगार का क्षीण निर्झर फुटता है।

अभिलषित भावों को थोडे से चुने हुए शब्दों में अभिव्यकित की क्षमता मुक्तकों में होती है। ऋग्वेद विश्व-साहित्य में सबसे पहला मुक्तक-संग्रह है। रस निर्भर मुक्तकों के अतिरिकत नीति, देवस्तुति, प्राकृति राजप्रशस्ति आदि से सम्बन्धित मुक्तक भी उसमें उपलब्ध होते है।

ऋग्वेद के अनन्तर बौद्धो की थैरगाथा एवं थैरीगाथाओं में मार्मिक काव्य गुणालंकृत,संगीतात्मकता से युक्त जीवनानुभवों को व्यकत करके जीवन काव्य को गाया है। निर्वाण की परमशांति, नैतिकसत्य,

भावनाओं की गहनता, जीवन की कटु विषमता की अभिव्यंजना बौद्धभिक्षुओं ने मुक्तकों द्वारा ही की है। मन के सम्बन्ध से स्थावर तालपुट कहते है -

'' रोपे त्वा रूकखानि यथा फलेसि मूले तरूं छेतु तमेव उच्छसि ।
तथ्पमं चितं इदं करोसि यं मं अनिच्चम्हि चले नियुज्जामि ॥ (२२) ''

(हे चित ! इस अनित्य संसार में मुझे नियुकत (आसकत) कर तुम ऐसा ही कार्य कर रहे हो जैसे कोई फलों की इच्छा से वृक्ष लगाकर उसकी जड को ही कांटने की ईच्छा करने लगे।)

ऐसे अनेक गेय मुक्तकों में प्रकृति को मोहक चित्र अंकित हुआ है। शांतरस का निर्झर फूट पडा है। श्रृंगार का अस्पष्ट क्षीण रूप यही लक्षित होता है। परन्तु श्रृंगार की स्पष्ट धारा तो ईसवी सन् के आरम्भ के आसपास मिलती है। प्राकृत की प्रसिद्ध रचना हाल कृत -' गाथासतसई ' मुक्तकों का विशाल संग्रह है। भारतीय साहित्य में इससे एक नया प्रकरण आरंभ होता है क्योंकि इसमें संकुलित गाथाएँ भौतिक रस से ओत-प्रोत है। मंगलाचरण की गाथा से ही शिव पार्वती के प्रणयकेलियों का स्पष्ट संकेत मिलता है। लोकजीवन से संबंध बनाये रखनेवाले कवियों की श्रृंगारपूर्ण गाथाओं की यह रचना अपने समय में लोकप्रिय तो रही है और अन्य परवर्ती साहित्य को भी प्रभावित कर गई है।

❖ ***सप्तशती परम्परा की अक्षुण्णता :-***

प्रारम्भ में परम्परा का कोई महत्व नहीं रहता परन्तु जब वह स्थापित हो जाती है तब उसका महत्व बढ जाता है। जिस प्रकार स्थापित परंपरा का महत्व होता है। श्यामसुन्दर धोष के शब्दों में देखिए - '' परंपरा की रक्षा जितनी महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण परंपरा का विकास भी है। ''(२३) संस्कृत और प्राकृत के कवियों ने सप्तशती और शतक परंपरा को अक्षुण्ण और जीवित बनायें रखने का सफल प्रयत्न किया है। गाथा सप्तशती के अन्नतर जयवल्लभ द्वारा संग्रहित्र मुक्तकों का प्रसिद्ध 'वज्जालग्ग '। सतसई की भाँति सात सौ से अधिक गाथाओं को संकलित किया गया है। अतः वज्जालग्ग भी संख्याबद्ध सतसई परंपरा का ही ग्रंथ माना जा सकता है। इसमें श्रृंगारी गाथाओं की प्रचुरता मिलती है ; यद्यपि नीति प्रकृति आदि अन्य विषयों में सम्बन्धित गाथाएँ भी इसमें मिलती है। प्रा. बडिगैर का कथन है - '' वज्जालग्ग में गाथा सप्तशती की लगभग सौ गाथाएँ मिलती है। सभी गाथाये सालंकार है। अतः संस्कृत आचार्यो ने अपने ग्रंथों में गाथा सप्तशती की

अनेक गाथाओं का उदाहरण के लिए उपयोग किया है।''(२४) सरस्वती कंठभरण ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, काव्यनुशासन, शब्दानुशासन आदि ग्रंथों में उदाहरण के रूप में गाथा सप्तशती की गाथायें प्राप्त है।

गाथा सप्तशती की प्रेरणा से संस्कृत में अनेक श्रृंगार काव्यों की रचना हुई किन्तु उनका स्वर वही नही रहा जो सतसई का है। सामाजिक वातावरण के परिवर्तन से संस्कृत कवियों का सम्बन्ध लोकजीवन से न रहकर , राज-दरबारों से हो गया। गुप्त साम्राज्य और परवर्ती नरेशों के समय समृद्धि और विलासिता का वातावरण विकसित हुआ ; नागरिक रसिकता की भावना विकसित हुई। गोवर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती, अमरूककृत अमरूकशतक ने श्रृंगार रस की मादकता से सतसई परमपरा को विकसित किया। भर्तृहरि कृत शतकत्रय में (श्रृंगार शतक-नीतिशतक और वैराग्यशतक) श्रृंगार नीति, वैराग्य की जो विश्लेषणात्क व्याख्या मिलती है उसे सतसई के विकास का उदाहरण मानने में आपत्ति नहीं समय के साथ-साथ सतसईयों में अनेक रूपता के दर्शन होने लगे।

काव्य में क्रिया-प्रतिक्रिया की प्रक्रिया सदैव विद्यमान रहती है। एक प्रवृति अपने विचारों की पुष्टि करती है। कभी दबती, कभी उभराती तो कभी रूपान्तरित होती है। कभी-कभी तो वह अपना अस्तित्व ही खो बैठती है। वस्तु, भाव, भाषा में ही इनका अस्तित्व होता है। मानव प्रज्ञा सतत नयी नयी अनुभूतियों से अनुप्राणित होती है ; जीवन का प्रत्येक क्षण उसे नयी अनुभूति देता है। अत : वस्तु , भाषा,भाव आदि की द्रष्टि से गाहा सतसई से कई कवियों को प्रेरणा मिली और इन परवर्ती कवियों ने इस प्रकार की शैली में लिखे हुए अनेक ग्रंथों का निर्माण किया है।

❖ ***संस्कृत-प्राकृत सतसई-परंपरा परिचय :-***

संस्कृत और प्राकृत में संख्यापरक नामों की परंपरा सदा से चली आ रही है। ''जार्ज ग्रियर्सन ने इनकी संख्या इकतीस बतायी है। ''(२५) ग्रियर्सन के ही मत का अनुकरण करते हुए डॉ. श्याम सुन्दरदास प्राकृत से ही इस परंपरा का आरंभ मानते है।(२६) परंतु ग्रियर्सन की सूची के अतिरिकत ऐसे कई ग्रंथ है जिनमें सात सौ श्लोक है पर जिन्हे सप्तशती नहीं कहा जाता। वर्ण्यविषय, शैली भिन्न होते हुए भी भगवद्गीता में सात सौ श्लोक होने के कारण उसे सप्तशती परंपरा से अभिन्न नहीं रखा जा सकता। ईस्वी

सन् की प्रथम शती में आरम्भित होने वाली इस रचना का प्रभाव लगभग अठारवीं शती तक चलता रहा। इसमें ही उसका महत्व छिपा हुआ है।

'सतसई ' परंपरा का आरम्भ प्राकृत भाषा में रचित हाल (सातवाहन) की गाहा सतसई से माना जाता है।

१) हाल सतसई :-

हाल रचित ' सतसई ' के रचनाकाल के विषय में मतभेद है। कुछ विद्वान हाल को प्रथम ईसवी सन् से चौथी-पाँचवी शताब्दी का मानते है। 'अंगारवार' (मंगलवार), 'होरा' और राधिका जैसे शब्दोल्लेख के कारण कुछ विद्वान इसे प्रक्षिप्त मानते है। संदिग्ध एवं प्रक्षिप्त दोहों को निकालने के बाद भी लगभग साढे चार सौ दोहे ऐसे है , जिन्हे प्राचीन माना जा सकता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवदी के मतानुसार इनकी रचना लगभग ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी में हुई होगी।(२७)

जो भी हो इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में ' सतसई ' प्राचीनतम् गन्थ है। उसने चतुरसुजान एवं काव्यरसिक नागरजनों को अधिक-से-अधिक प्रभावित किया। उसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि इसका अनुकरण अधिकतम हुआ है। इस पर अधिक से अधिक टीकाएँ लिखी गई एवं आज भी इसे विभिन्न साहित्य तथा काव्यशास्त्रो में अधिकांश उद्धत किया जाता है। इसकी लोकप्रियता स्वयंसिद्ध है।

हाल एक ऐतिहादिक पुरूष माना जाता है। जिसमें असाधारण काव्य परख, सृजनात्मक शकित एवं जीवन्तता के दर्शन होते है। सुप्रसिद्ध संस्कृत कवि बाणभट्ट के ' हर्षरचित ' में भी उसका सम्मानपूर्ण उल्लेख मिलता है।

'' अविनाशिनमग्राम्यम करोत् सात वाहन :।
विशुद्ध जातिभि : कोष रत्नमैरिव सुभाषित :॥''(२८)

'गाहा सतसई ' में महाराष्ट्री प्राकृत में ७०० दोहों का संकलन है।

'' सत सताई कउवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्भि ।
हालण विरइइआई सालङकाराणां गाहाणाम्॥ ''(२९)

'हाल सतसई' की आकर्षण विशेषता यह है कि लोकजीवन पर आधारित होते हुए भी लोक-साहित्य नहीं है। उसकी भाव-धारा में स्वच्छता एवं स्फूर्ति है , क्योंकि वह जीवन की सहज सम्भाव्य घटनाओं तथा अनुभूतियों से स्पन्दित है। आ.हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार '' प्रेम और करूणा के भाव प्रेमिकों की रसमय क्रीडाएँ और घात-प्रतिघात इस ग्रंथ में प्रस्फुटित हुआ है। अहीर और अहीरिनों की प्रेम-गाथाएँ, ग्राम-बधूटियों की श्रृंगार-चेष्टाएँ, चककी पीसती हुई या पौधों कों सींचती हुई सुन्दरियों के मर्मस्पर्शी चित्र, विभिन्न ऋतुओं का भावोतेजन आदि बातें इतनी सरस और इतनी हृदय-स्पर्शी है कि पाठक बरबस इस सरस काव्य की ओर आकृष्ट होता है। भारतीय काव्य का आलोचक इस नई भावधारा को भुला नहीं सकता। यहाँ वह एक अभिनव जगत में पदार्पण करता है। जहाँ आध्यात्मिकता का झमेला नही है, कुश और वेदिका का नाम नहीं सुनाई देतो, स्वर्ग और अपवर्ग की परवा नहीं की जाती।''(३०) इस प्रकार आचार्यजीने काव्य रसिको को ' हाल-सतसई ' के रस-सरोवर में निमग्न करते हुए सतसई की प्रमुख विशेषताओं के उद्‌घाटन के साथ-साथ परवर्ती रचनाकारों को आदर्श-निर्वाह का निर्देश भी किया है।

' सतसई ' में प्रकृति के प्रति निर्मल अनुराग एवं उल्लास की झलक दिखाई देती है।

'' उअणिच्चणिप्पन्दा भिसिणी पत्तम्भि रहेइ बलाआ ।
णिम्मलभरगअ माअणपरिट्ढिआ संख सुत्तित्व ॥''(१:४) (३१)

विन्ध्याचल पर्वत श्रृंखला से लेकर कृष्णा-गोदावरी का शस्य श्यामल अंचल एवं सुदीर्घ-विस्तृत रेवा-तट अपनी समग्र विशेषताओं के साथ साकार हो उठा है। कटी उत्ताल लहरों का गीतात्मक नृत्य है तो कहीं तृप्त पक्षियों की सुमधुर ध्वनि -

'' आम बदला वणाली मुहला जल रडकुणों जलं सिसिरं ।
अण्णाईणं बि रचाइ तह वि अण्णे गुणा के वि ॥ '' (६:७८) (३२)

कवि ने तह विअण्णे गुण के वि शब्दावली के द्वारा रेवा (नर्मदा) नदी के सौंदर्य एवं गौरव में शब्दातीत निखार भर दिया है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध सतसईकार बिहारी भी वह चित्तवनि और कछुके द्वारा उसी भाव को अपनाने हुए दिखाई देते है। ' गाहा-सतसई ' में शब्द-वैविध्य के साथ-साथ चित्र-वैविध्य के कारण स्वच्छता, सुन्दरता एवं स्फूर्ति का नैसर्गिक संयोग दिखाई देता है -

'' उद्धच्छो पिअइ जलं जह जह विरलङ गुली चिरं पहिओ ।

पावालिआ वि तह धार तगुइं पि तणुएइ ॥ '' (२:३७) (३३)

सतसई का रचनाकार मानव-स्वभाव एवं पशु-पक्षियों की सहज चेष्टाओं को परखने में पारंगत है। इसके लिए से कही विशेष प्रयत्न की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। लगता है , कवि के हृदय में जमे हुए ये समग्र चित्र कवि की द्रष्टि एवं वाणी-पथ से निकालकर स्वयं उपयुक्त स्थान पर जम जाते है। इस द्रष्टि से कविवर हाल का प्राकृत भाषा का कालिदास कहा जा सकता है। डॉ. नगेन्द्र ' गाहा-सतसई ' के विषय में लिखते है कि, प्राकृत में रची हुई ये गाथाएँ प्राकृत जीवन के सरल सहज घात-प्रतिघातों को चित्रबद्ध करती है। इनका वातावरण सर्वथा गाईस्थिक है और यौग-सम्बन्धो के वर्णन में बेहद स्पष्टता पाइ जाती है। अभिव्यक्ति में सहज गुण और स्वभावोक्ति ही उनकी विशेषता है अतिशयोक्ति को कहीं भी महत्व नहीं दिया गया है। ''(३४) यभार्थत : ' गाहासतसई ' एक गाथाकोष है। काफी लम्बे समय तक इसका नाम ' गाहाकोष ' ही प्रचलित रहा।

'सतसई ' शब्द संख्यावाचक है ; जिसका अर्थ है सात सौ। किन्तु निश्चितत : सात सौ दोहों, गाथाओं,श्लोको या आर्याओं के समावेश का कोई दुराग्रह नहीं रहता। कालान्तर में इसने अवश्य रुढि का रुप धारण कर लिया। इस विषय में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का मन्तव्य है कि सतसई सप्तशती शब्द का तदभव रुप है। संख्यामूलक काव्य-संकलनों में सात सौ छंन्दों का संकलन एक अत्याधिक महत्वपूर्ण रुढि बन गई है।''(३५) फिर अधिकांश सतसईयों में यह संख्या सात सौ से उपर पहुँची है। संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम मार्कण्डेय पुराण के अन्तगत ' दुर्गा-सप्तशती ' का प्रमाण उपलब्ध होता है। विशुध्ध धार्मिक द्रष्टिकोण से रचित इस ग्रंथ में सात सौ श्लोक है।

२) आर्या सप्तशती :-

'गाहा सतसई ' के अनुकरण पर गोवर्धनाचार्य ने आर्या छन्द में ' आर्या सप्तशती ' की रचना की, जिसमें आकारादि वर्णानुक्रम से सात सौ आर्याओं को संग्रह है। हाल ने अपने छन्द को माहा (गाथा) कहा और गोवर्धनाचार्य ने अपने छन्द को ' आर्या' संज्ञा से अभिहित किया। जिससे इस ' आर्या सप्तशती ' कहा गया। यह सतसई-परंपरा के विकास की एक महत्वपूर्ण कडी है। आचार्यजीने इसे अपने दो शिष्यों जो

परस्पर सहोदर थे, को पढाया और उन दोनों में इसे आकाश रवि-चन्द की भाँति निर्मल कर प्रकाशित किया।----

'' उदयनबलभद्राम्याम् सप्तशती शिष्य सोदराम्याम् मे।

द्यौखि रविचन्द्राम्याम् प्रकाशित निर्मलीकृत्य ॥ ''(७०१) (३६)

स्वयं आचार्य अपने ग्रंथ की प्रशस्ति में कहते है ---

'' कवि समर सिंहनाद : सुधैक संवाद :।

विद्वर्विनोदकन्द : सन्दभोऽयं मया सृष्ट : '' ॥७००॥(३७)

कवि गोवर्धनाचार्य ने सद्य : स्नाता कामिनी का एक आकर्षण चित्र यों अंकित किया है---

'' अंसावलम्बित करधृत कचमभिषेकाद्रि ध्वलनखरेखम् ।

द्यौताद्यरनयन वपुरस्त्रमनऽ् गस्य तव निशितम् ''॥५५॥(३८)

'गाहा सतसई ' की भाँति ' आर्या सप्तशती ' भी चित्र-वैविध्य से समृद्ध अवश्य है ; किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ' गाहा सतसई ' की प्रकृति यहाँ नागरीवेश में विशेष प्रगल्भ हो उठी है , चित्रों चुनाव में भी कवि को प्रयत्न करना पडा है ।

<u>३) भर्तृहरि शतक :-</u>

सतसई एवं मुक्तक काव्य परम्परा में शतक एवं 'हजारा ' शब्द भी उल्लेखनीय है । ये शब्द भी संख्यावाचक है। शतक-परम्परा का उल्लेख करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है - सबसे पुराना स्त्रोत जो कवित्व की द्रृष्टि से विवेचनीय माना जा सकता है , बाण का ' चण्डीशतक ' है। फिर मयूर का ' सूर्य शतक ' है।''(३९) कविवर बाण ने अपने ' हर्षचरित ' में हाल सातवाहन का भी उल्लेख किया है। अत : यह अधिक सम्भव है कि बाण ने भी ' सतसई ' के आधार पर ही संख्यावाचक शीर्षक के अन्तर्गत मुकतक काव्य की रचना की होगी। किन्तु उस परंपरा की दृष्टि से 'भर्तृहरि शतक ' एवं 'अमरूक शतक' विशेष उल्लेखनीय है। भर्तृहरि के तीन शतक प्रसिद्ध है-- ' नीतिशतक ', श्रृंगारशतक एवं ' वैराग्यशतक '। विज्ञानशतक भी भर्तृहरि का बताया जाता है।इनका रचनाकाल ईसवीसन् छठी शताब्दी के आस-पास माना

जा सकता है। गहन आत्मानुभूति के निश्चल प्रकाशन ने ही भर्तृहरि को मुकतक काव्य परंपरा में चिरस्मरणीय बना दिया है।

भर्तृहरि के तीनों शतकों में एक-सी भाव गहराई व गरिमा है । वे कामिनी कटाक्ष के मारक प्रभाव का उल्लेख निम्नांकित श्लोक में करते है --

मुग्धे धानुष्मती के यम पूर्वात्वयि दृश्यते ।
यदा हरसि चेतांसि गुणैरेव न सायके ॥ (श्रृ. श. १३) (४०)

अनेक श्रृंगारी कवियों ने विपरीत रति का वर्णन किया है, किन्तु भर्तृहरि के विपरीत- रति के चित्र में शोभा तथा शालीनत कुछ ओर ही है---

उरसि निपतितानां स्त्रस्तधा मिल्लकानां ,
मुकुलित नयनानां किन्चदुन्मी लितानाम् ।
सुरजनित स्वदे स्विन्न गण्डस्थलीनां
मधरमधुवधूनां भाग्यवन्तः पिवन्ति ॥ (श्रृं . श .२६) (४१)

संक्षिप्तत : कवि ने विभिन्न संयोग-स्थितियों एवं श्रृंगार-चेष्टाओं का मनोहर अंकन किया है। परवर्ती कवियों पर उनका गहरा प्रभाव है।

४) अमरूकशतक :-

' अमरूकशतक ' के रचयिता राजा अमरूक माने जाते है। किन्तु इनके जन्म, जीवन एवं रचनाकाल के बारें में केवल अनुमान से ही संतोष करना पडता है। आचार्य आनन्दवर्धन एवं वामन ने अपने ग्रंथों में इनका उल्लेख किया है। अत : इन्हें स्वभाविक रूप से आठवी शताब्दी पूर्वे का माना जा, सकता है। आचार्य आनन्दवर्धन के मतानुसार ' अमरूकशतक ' का एक-एक श्लोक एक-एक प्रबन्ध से कहीं अधिक है।----

अमरूक-कवेरेक : श्लोक : प्रबधिशतायते ।(४२)

सम्भवत : इसी कारण संस्कृत काव्य में ' अमरूकशतक ' का विशिष्ट स्थान है। इस ग्रंथ का मूल इस श्रृंगार है। इसमें नायक-नायिकाओं की विभिन्न चेष्टाओं का सजीव एवं रसात्मक चित्रण किया है। एक उदा. द्रष्टव्य है---

'' शून्यंवासग्रहं विलोकय शतनादुत्याय किंचित्क्षणै ।
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वव्य पत्यर्मुखम् ॥
विश्रन्धं परिचुम्ब्य जात पुकामालोक्य गण्डस्थली ।
लज्जानम्रखी पियेण हस्ता बाल चिर चुम्बिता ॥ (४३)

५) चौर पंचाशिका व आर्याशप्तशती :-

परंपरा-विकास की, दृष्टि से विल्हणकृत ' चौरपंचाशिका या चौरीसुरत-पंचाशिका ' ग्रंथ का उल्लेख अपेक्षित है।जनश्रृति के अनुसार इस ग्रंथ का रचयिता-कवि राजकुमारी के प्रणयपाश में उलसा था। राजा को मालूम हुआ तो उसने कवि को मृत्युदण्ड दिया। कवि नी अपने प्रणय की स्मृति में इस ग्रंथ की रचनाकर उसे राजा को समर्पित किया। राजा ने ग्रंथ के पद-लालित्य पर मुग्ध होकर उसे क्षमा कर दिया और उसके साथ राजकुमारी का विवाह कर दिया। इधर नेपाल देश के पर्वतेश्वर पण्डित की ' आर्या शप्तशती ' का उल्लेख भी मिलता है। जिसमें ७६४ श्लोक बताए जाते है। इसका रचनाकाल १७ वी शताब्दी में बताया जाता है। इसे संस्कृत शप्तशती व हिन्दी सतसई श्रृंखला की संयोजक कडी कहा जा सकता है। इस ग्रंथ पर ' गाहा-सतसई ' एवं ' आर्या शप्तशती ' का गहरा प्रभाव है। पण्डिजी ने मंगलाचरण एवं विभिन्न देवस्तुति के पश्चात् गोवर्धनाचार्य की ' आर्या शप्तशती ' के अनुकरण पर ही अकारादिक्रम् से श्लोक रखे है। इसके साथ ही साथ कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की स्तुति भी की है।

प्रस्तुत ग्रंथ में संयोग-वियोग के चित्र बडे आकर्षक बन पडे है----

'' रमणीयनां कुच मुकलो परिनिदधाने करं दिपते ।
मुकुली भवतो नयने अपि तत्स्पर्शस्प्रहावशेनेव ॥ ''(४४)

प्रस्तुत ग्रंथ को देखते हुए कहा जा सकता है कि ' शतक ' व ' हजारा ' जैसे शब्दों के प्रचलन के बावजूद ' सतसई ' शब्द भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाता रहा। बाबू श्यामसुन्दरदास के मतानुसार, '' अमरूक ने शतक लिखा और रसनिधि ने हजारा लिखकर मुकतक को हजारी का मनसब सिया सही परन्तु विशेषत : लोगों ने यही प्रयत्न किया कि उनके संग्रहों मेंलगभग सात सौ पद्य रहें।(४५) इतना ही नहीं मन्त्र-तन्त्र और ज्योतिष-शास्त्र में भी सात की संख्या का विशिष्ट महत्व है। वैसे भी ' शप्तशती ' और ' सतसई ' शब्द श्रुति-मधुर तो है ही ।

उपर्युकत ग्रंथों के अतिरिकत जयदेव के ' गीत-गोविन्द ' एवं विद्यापति की ' पदावली ' के श्रृंगार-माधुर्य ने हिन्दी -सतसई-परंपरा की भाव-सम्पदा को समृद्ध बनाने में अमूल्य योग प्रदान किया है। वस्तुत :श्रृंगार और प्रणय के ग्रंथों ने ही हिन्दी-सतसई-परंपरा को अधिक प्रभावित किया है। यह बात अलग है कि कुछ ग्रंथों में श्रृंगार लौकिक प्रणय को पोषक रहा तो कुछ ग्रंथों में वह भक्ति का पोषक बना।नीति-कथन भी साधारणत :साथ-साथ चलता रहा। वह श्रृंगार और भकित दोनों का साधक बन जाता है। इसी आलोक में हिन्दी-सतसई-परंपरा का अवलोकन अपेक्षित है।

संदर्भ सूची :-

१. दैव्यापराधक्षमा स्त्रोत श्लोक- १० पृ. ६

२. दैव्यापराधक्षमा स्त्रोत श्लोक- ११ पृ. ६

३. दैव्यापराधक्षमा स्त्रोत श्लोक- १२ पृ. ६

४. डॉ.सूर्य प्रकाश विद्यालंकार , सप्तकत्रय : आधुनिकता और परंपरा पृ : ३६

५. डॉ.सुधाकर पाण्डेय , कृपाराम , ग्रंथावली , पृ : १३

६. डॉ.सुधाकर पाण्डेय, बिहारी सतसई (लाल चन्द्रिका) भूमिका से, (पृ.२-३)

७. डॉ.राजकिशोरसिंह , बिहारी की काव्यकला ; (पृ. ५०)

८. श्यामसुन्दरदास , सतसई-सप्तक , भूमिका , (पृ. ८)

९. हरेन्द्र प्रताप सिन्हा, बिहारी सतसई का मूल्यांकन (पृ. २१)

१०. पं. पदमसिंह शर्मा, बिहारी सतसई (संजीवनभाष्य) भूमिका से (पृ. २)

११. आ. हजारी प्रसाद त्रिवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका (पृ. ११२)

१२.श्यामसुन्दरदास ,सतसई-सप्तक, भूमिका ; (पृ .५)

१३.डॉ.शिवनन्दन कपूर , लेख- समयगणना के विभिन्नमान, संस्कृत अंक ६८ वर्ष १९८१ (प्र.९)

१४.ना.प्र. पत्रपत्रिका, वर्ष ५६ अंक -३-८, संवत २००८

१५. डॉ.आर.जी.भांडारकर , अर्ली हिस्त्री ओफ दि दकखन - (पृ.६-७)

१६.भट्ट मथुरानाथ शास्त्री , संस्कृत गाथासप्तशती , भूमिका , (पृ.६)

१७.गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, राजपूताने का इजतहास, खण्ड १ (पृ.४२५-३३)

१८.श्री श्रीधर वासुदेव सोहोनी , लेख, कालिदास, हालसातवाहन और चन्द्रगुप्त द्वितीय, (पृ.२२९-४४)

१९.डॉ.हरिराम आचार्य, महाकवि हाल और गाथप्तशती, (पृ.२५)

२०.ऋग्वेद - १/१२३/१० (कमनीय कुमारी के समान अलंकृत वेष में फलदायी - सूर्य के पास जाकर वह युवती मुसकाती हुई अपना वक्ष अनावृत कर देती है।)

२१.स्थविर तालटुर, थेरगाथा ; गा. क्र ११२१

२२.स्थविर तालटुर, थेरगाथा ; गा. क्र ११२२

२३.श्यामसुन्दरदास धोष, नवी कविता का स्वरूप - विकास (पृ.१६)

२४.प्रॉ.पी.बी.बडिगैर, हालविरइआ - गाथा सप्तशती (पृ.१०)

२५.संपा-जार्ज ग्रिर्यसन, लालचन्द्रिका भूमिका से द्रष्टव्य है ; सूचि परिशिष्ट - १

२६.डॉ.श्यामसुन्दरदास, सतसई - सप्तक, पृ.-४

२७.हिन्दी साहित्य का इतिहास -पृ.६१

२८.हाल सतसई भूमिका से - पृ. ५

२९.हाल सतसई - पृ. ५०

३०. हाल सतसई - पृ. ५२

३१.हाल सतसई - पृ. ५५

३२.हाल सतसई - पृ. ५८

३३.गाहा सतसई - पृ. ७०

३४.गाहा सतसई - पृ. ७१

३५.हिन्दी सतसई साहित्य - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा - पृ. १५

३६.गाहा सतसई - पृ. ५५

३७.गाहा सतसई - पृ. ५६

३८.गाहा सतसई - पृ. ५६

३९. हिन्दी साहित्य का इतिहास- हजारी प्रसाद द्विवेदी- पृ. ५

४०.भर्तृहरि शतक - पृ. १०

४१.भर्तृहरि शतक - पृ. ११

४२.अमरुक शतक -अमरुक - पृ. १५

४३.अमरुक शतक - भूमिका से पृ. ५

४४.अमरुक शतक -अमरुक - पृ. ५१

४५.अमरुक शतक - भूमिका से पृ. ५-

****

अध्याय - ३

हिन्दी सतसई साहित्य : ऐतिहासिक विरासत

प्रस्तावना :-

हिन्दी का सतसई साहित्य अनूठा और प्राणवान है। सात सौ दोहों में जीवन और जगत की समग्रता का परिचय मिल जाता है। कहीं भक्ति, कहीं वैराग्य, कहीं उपदेश, तो कहीं श्रृंगार, नीति, काव्यरीति, अलंकरण-प्रवृति, चमत्कृति, एक विशिष्ट काव्यदर्श आदि की झलक मिल जाती है। एकसाथ कई बातों पर रचनाकारों का ध्यान अवश्य हुआ पर लक्ष्यवेधि तीर की तरह सीधे एक का पकडना अर्थात् कथ्य का समाज सम्मुख सुस्पष्टरूप से प्रस्तुत करना ही उनका लक्ष्य रहा।

भाषा लोक भोग्य एवं सरलता से युकत 'कविता में कहना का योग, हृदयगम भावों को काव्यपंक्तियों के द्वारा सुचारूढंग से प्रस्तुत किया जाना। रीतिकाल अर्थात् श्रृंगारकाल के प्रारम्भिक चरणों से अंत तक अर्थात् एक सौ, देढ सौ साल तक यह प्रवृति विद्यमान रही रीतिमुकत' और रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध कवियों की एक पूरी पीढी सतसई पर हाथ अजमाने को तत्पर हुई।

भावों के स्थान पर शब्दों का आधिक्य कहीं-कहीं ज्यादा दिखलाई पडना। छंद, अलंकार , बिम्ब, प्रतीक आदि के बोझ से जैसे कविता कामिनी की कोमल काया बद-सी जाना। फिर यमराज को भी चश्मे चढाकर नायिका को देखना पडता हैं। खास तौर पर बिहारी के दोहे ऐसे प्रकार के स्तर में चुने जाते है।

जीवन के प्रभात में प्राची में उदित अपनी किरणों से चैतन्य का संचार करनेवाली उषा को देखकर वैदिक जन के हृदय में आह्लाद का सागर उमड पडा और उसके आधारों पर बरबस पंक्तियाँ थिरक उठी।--

'' अंग अंग से चैतन्य उगलसी-सी
प्रकाश नराती - सी
एक दम खडी हो गयी
कि हम मर्त्य इस स्वर्ग की पुतली को
क्षणभर देख सकें
और हमारे जीवन से अन्धकार सब दूर हो जाय । '' (१)

उसमें न कथा का तन्तु है न पूर्वापर की अपेक्षा। अपने आपमें आनन्दीभूत हदय की उन्मुकत तरंगे है। इनमें एक परिस्थिति को अंकित किया गया है ; एक कल्पना को आकार दिया गया हैं। ऋग्वेद ऐसे ही मुकतकों का सर्वप्रथम संग्रह है।

जीवन का क्रम ज्यों- ज्यों विकसित होता गया त्यों-त्यों परिस्थितियाँ जटिल होती गई । मानव की विचारधारा ऐहिक और आमुष्मिक तत्वों को ग्रहण करती हुई आगे बढने लगी। गूढ विचारों का दौर चला। लम्बी- लम्बी कथाएं अस्तित्व में आई। दर्शनो की तलाश होने लगी । महाकाव्यों का प्रणयन हुआ। परन्तु मानव -मन प्रकृति दर्शन में विस्तृत वनस्थली पसन्द करता है , घर को सजाने के लिए उसे एक गुलदस्ता काफी है।

प्रबन्ध-काव्य आख्यान , नाटक और कथाओं कें होते हुए भी कवि अपने आपको उच्छविसत मुक्तकों से विरक्त न कर सका । जब कभी उसको मौका मिला , अपने हृदय के निरीक्षण को उसने वाणी के वस्त्र पहनाए --

असारे खलु संसारे सारं ससुरगृहम ।
हरो हिमालये शेते हरिश्शेते क्षीराम्वधौ ॥
गम्मिहिसि तस्य पासं सुन्दरि , मा तुरअ बडढअ मिअको ।
युद्धे युद्ध मिअ चन्दि आइ को पेच्छड मुहं दे ॥ (२)

कथाभिनिवेशी साहित्य और पूर्वापर निरपेक्षी साहित्य दोनों ही सामान्य रुप से चलने लगे पंडितों ने इन दोनों को काव्य में समेट लिया है । एक प्रबन्ध काव्य का अपना विस्तार है, अपना परिसर है । महाकाव्य उसका सर्वोतम रुप है । मुक्तक मस्तमौला है। उसे न ऊधौ से लेना है न माधौ को देना है । वह अपने आप में केंन्द्रित है । काव्य शास्त्र मीमांसकोंने इसे भी व्याख्या में बाँधने का प्रयत्न किया है ।

(१) विना कृतं विरहितं व्यवच्छिन्न विशेषितम् ।
भिन्नं स्वादय निव्यूढं मुक्तकं चाति शौ भितम् ॥ (३)
(२) मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षम : सताम् (४)
(३) छन्दोबघ्घ पदं पघं तेनेकेन च मुक्तकम् (५)

मुक्तक स्वतंत्र है। पूर्वापरनिरपेक्षी होता है। वह सुन्दर , मार्मिक और चमत्कारजनक है । उसकी एक झलक ही मन्त्र मुग्ध करने में समर्थ है। इन विशेषताओं का समाहार करते हुए आचार्य अभिनव गुप्त ने मुक्तक को मुलतः रससिक्त रचना कहा है -''पूर्वापर निरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदैव मुक्तकम् ''

मुक्तक अपने आपमे स्वतंत्र होता है। अपने आपमे जो रसोद्रेक कराने में समर्थ होता है ; पाठकों के मन को मुग्ध कर देता है वह मुक्तक है । मुक्तक में एक चमत्कार विधान प्रस्तुत करनेकी अदभूत क्षमता होती है। विभाव ,अनुभाव और संचारी एक ही उक्ति में केन्द्रित होकर पाठक पर अपना ऐसा प्रभाव डालते है कि पाठक रसमन होजाता है । प्रबन्धकाव्यों की तरह इनमें भी रसास्वादन क्षमता होती है। आनन्दवर्धनाचार्य का स्पष्ट कथन है-----

''तत्र मुक्तकेषु बन्धाभिनिवेशिन : कवे स्तदाश्रयम।
रस बन्धा श्रयम् औचित्यम् मुक्तकेषु प्रबन्धेष्विच-
रसा भिनिवेशिन कवयो हरयन्ते। (६)

प्रबन्धकाव्यों में रसाभिनिवेश करनेवाले कवि होते हैं जिसका एक-एक मुक्तक प्रबन्धों की स्पर्धा में खडा रह सकता है । आ ़रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो में---''यदि प्रबन्धकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसी से यह सभा समाजों के लिए होता है । उसमें उत्तरोत्तर अनेक द्रश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन या उसमे किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नही होता है , बल्कि कोई एक रमणीय खंड द्रश्य इस प्रकार सहसा सामने सा दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मन्त्रमुग्ध सा हो जाता है। इनके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं और व्यापारोंका एक छोटा-सा स्तबल कल्पित करके उन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पडता है । अतः जिस काव्य में कल्पना की समाहार शकित जितनी ही अधिक होगी उतनी ही मुकतक की रचना में सफल होगा (७)

इस प्रकार एक सफ्ल मुक्तक के लिए पूर्वापरनिरपेक्षता,मार्मिकता, रसात्मकता चमत्कारक्षमता, अर्थगौरवता और सालसता से युकत होना आवश्यक है।

मुक्तक सघ्यफ ल होते है। गोष्ठियों मे, राज-दरबारों में इनका अपना महत्व होता है । इनकी लोकप्रियता का सबसे बडा प्रमाण यह है कि इनकी एक लम्बी परम्परा भारतीय साहित्य में प्राचीनकाल से सतत चली आ रही है।

यघपि मुक्तकों का आपसी पूर्वापर सम्बन्ध नहीं होता है , तथापि एक विषय को लेकर दो-चार मुक्तक लडियों को एक सुत्र में पिरोने की प्रथा रही है । इस कारण मुक्तकों के छोटे-छोटे संग्रह अस्तित्व में आये है । साहित्य दर्पणकार ने ऐसे संग्रहों को कोष की संज्ञा से अभिहित किया है ।----

''कोष श्लोक समूहस्तु स्वादन्दोन्यानपक्षकः ।
ब्रज्याक्रमेण रचितः स एवाति मनोरम : ॥
द्वाभ्यां तु यु ग्मकं सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते।
कलापकं चतुभिश्च पग्चभि : कुलकं मतम् ॥ (८)

मुक्तक- कोष काव्यों में सर्वाधिक महत्व ' सतसई ' को प्राप्त हुआ है । इसकी लोकप्रियता इतनी बढी कि प्रबन्ध कवियों नें भी उसे आदर के साथ अपनाया है । इसमें सन्देह नही है कि मुक्तक कवियों की प्रतिष्ठा का सर्वोतम शिखर 'सतसइ' रही है । वास्तव में यह प्रबन्ध कवियों का कीर्तिकलश रहा है। वास्तव में प्रबन्ध रचना में जो स्थान महाकाव्य का है, मुक्तक में वह स्थान 'सतसई' का है ।

❖ ***हिन्दी सतसई - परिचय :-***

हिन्दी का सतसई साहित्य प्राकृत और संस्कृत की परम्परा का उत्तराधिकारी बना और १७ वीं शदी से लेकर २०वी शताब्दी तक सतसई की एक अविछिन्न परम्परा हिन्दी साहित्य में चली आ रही है ।

हिन्दी की निम्नलिखित सतसईयाँ मुख्यरुप से प्रकाश में आई है--

१. राम- सतसई	वि स	१४६०-८०	-श्रृंगार-भकित -नीति
२. दयाराम सतसई	वि स	१४७२	- श्रृंगार-भकित -नीति
३. ब्रजविलास सतसई	वि स	१४८९	-श्रृंगार-भकित -नीति
४. आनन्द प्रकाश सत्तसई	वि स	१४९०	-श्रृंगार-भकित -नीति

५. बिहारी सतसई	वि स	१६१२	- श्रृंगार-भकित -नीति
६. तुलसी सतसई	वि स	१६४२	-ज्ञान उपदेश
७. रसनिधि सतसई	वि स	१६६०-७०	-श्रृंगार-भकित
८. रहीम सतसई	वि स	१७२०	- ज्ञान उपदेश नीति
९. मतिराम सतसई	वि स	१७३८	- श्रृंगार-भकित -नीति
१०.वृँद सतसई	वि स	१७६१	- नीति, ज्ञान उपदेश
११.यमक सतसई	वि स	१७६१	- नीति
१२.विक्रम सतसई	वि स	१८५५-६०	-श्रृंगार-भकित -नीति
१३.वीर सतसई	सन्	१९२७ ई.	वीर रस, देश-प्रेम आदि.
१४.वसन्त सतसई	सन्	१९३१ ई.	-अन्योक्ति परक
१५.व्रज सतसई	सन्	१९३७ ई.	श्रृंगार-भकित -नीति
१६.हरिऔध सतसई	सन्	१९४० ई.	देश- प्रेम - ईश्वर गुणगान
१७.किशान - सतसई	सन्	१९४८ ई.	किशान - महत्व.
१८.सतसैया रामायण	वि स	१९९०	-रामकथा
१९.वीर सतसई	वि स	१९९८	-वीर रस
२०.ज्ञान - सतसई			ज्ञान -वैराग्य

इन सतसइयों के अतिरिक्त नाथुराम की वीर सतसई, अमृतलाल की अमृतसतसइ, मोहनसिंह की मोहन सतसई बुघजन की बुघजन सतसई और दीनदयालकी बुघजन सतसैया का भी उल्लेख मिलता है--(९)

अब हम यहाँ उपर्युक्त हिन्दी- सतसईयों का संक्षिप्त परिचय देंगे । इसके पहले हिन्दी-सतसई भेद के बारे में बताऊँगी।

(१) सतसई - भेद :-

हिन्दी की प्रारम्भिक सतसइयों में नीति एवं सूकित्त की प्रवृति प्रबल होने का एक कारण युग-प्रभाव भी है। उन कवियों ने इस प्रवृत्ति के द्वारा भी जन मानस के मार्मिक विश्लेषण का प्रयास किया है। इससे

व्यापक समाज को गाढे समय में महत्वपूर्ण सम्बल प्राप्त हुआ है। फ़िर शनैः शनै : श्रृंगार-चित्रण की प्रवृति भी वेग पकडने लगती है। इस प्रकार हिन्दी - सतसई परम्परा में ये दो प्रवृतियाँ वेग पकडने लगती है। इस प्रकार हिन्दी - सतसई परम्परा में ये दो प्रवृतियाँ स्पष्ट दिखाई देती है। किन्तु वर्ण्य-विषय एवं वर्तमान कालीन विकास की द्रष्टि से उसे तीन भागो में विभक्त करना समुचित है --

(१)सूकित्त -सतसई

(२)श्रृँगार - सतसई

(३)वीर - सतसई

सूकित्त- सतसई के अवलोकन के विषय में थोडी-सी चर्चा अपेक्षित है। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के मतानुसार ''किसी विशेष परिस्थिति में जब लोग उस परिस्थिति से सम्बन्ध कवि - वचन का निरन्तर प्रयोग करने लगते है तो वह भी लोकोकित के रूप में ही चल निकलती है। सार्वभौम उकितयों को अलग करने के लिए इन्हें सूकित कहते है। नीति के सब दोहे और पद आदि इसी सूकित के अर्न्तगत ही आते है। सूक्तिर्या छन्दोबद्ध होती है, लोकोकितयों के लिए ऐसा कोई नियम नही है।''(१०) इस प्रकार आचार्य सीताराम लोकोकित में से सूकित का विकास बताते हुए उसकी सार्वभौमता पर बल देते है। डॉ.श्यामसुन्दर के मतानुसार - '' सुकित या सुभाषित का अर्थ अच्छे कथन से है। सूकित का प्रधान उदेश्य उपदेश है। नित्य प्रति के व्यवहार में जिन बातों को उठाया जा सकता है, उन्हीं बातों को सूकितकार एक मार्मिक और हृदयग्राही ढँग से कहता है जिससे वह जन-साधारण के मन में चुभ जाती है''।(११) निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जीवन व्यवहार का अंकन, मार्मिकता एवं सार्वभौमता एकसूकित के लिए आवश्यक गुण माने जा सकते हैं। इस दृष्टि से '' तुलसी-सतसई, रहीम-सतसई, एवं 'वृन्द- सतसई, ' प्रथम प्रकार की रचनाएँ मानी जा सकती है । यद्यपि श्रृंगार सतसई में नाम के अनुरुप श्रृंगार -चित्रण की प्रधानता रहती है तथापि उसमें गौण-रूपसे , प्रसंग के अनुकुल नीति-भक्ति एवं सुक्ति-कथन का समावेश किया जाता है। 'बिहारी सतसई',मतिराम सतसई, रसनिधि- सतसई, आदि इसी परम्परा की कृतियाँ मानी जा सकती है।

वीर-सतसई का संकीर्ण अर्थ न लेकर व्यापक रूप से उन सभी सतसइयों को इसके अन्तर्गत लेना चाहिए जिनमें स्वदेश-प्रेम ,जाति एवं समाज के प्रति प्रेम, सत्याग्रह-भाव एवं राष्ट्रचिन्तन की रागात्मक

अभिव्यक्ति हुई हो, उदाहरणार्थ 'वीर-सतसई' व 'स्वदेश-सतसई',श्रृंगार-सतसई, सूकित सतसई एवं वीर सतसई, उन तीनों की कुछ भिन्न विशेषताएँ होने पर भी इन तीनों के बीच में स्पष्ट रेखांकन अत्यन्त कठिन है क्योंकि सतसई के वर्ण्य-विषय का क्षेत्र नीलाकाश की भाँति अति विस्तृत है। मानव के हृदय-रत्नाकर में उठनेवाली हिलोरे, उन हिलोरें पर विरलती मत्स्य-कन्याए एवं सागर के अन्तराल में झिलमिलाती सूक्ति-रत्न व सीपिकाएँ सागर के अन्तः स्तल में उडने वाला तूफान और शीतल ज्वाला सभी कुछ सतसई के विमुक्त शुभांचल में समा उठता है। सम्भवतः इसी कारण हिन्दी-मुक्तक -साहित्य में सतसई की सुमेरु के समान प्रतिष्ठा है----Encycio pucedia of britanic में लिखा है - ' The satsai is perhaps the most celebrated work of poetic art, as distinguished from narrative and simpler styles each couplet is independent and is triumph of skill in composition of language, felicity of description and rhetoric artifice" (12)

उपर्युक्त कथन-अवलोकन से इतना निश्चिततः कहा जा सकता है कि सतसई - हिन्दी-साहित्य का गौरव है । हिन्दी में उसकी एक सुदीर्घ परम्परा है। कुछ सतसइयाँ इस प्रकार परिगणित की जा सकती है- रहीम-सतसई, तुलसी सतसई----- आधुनिक सतसई आदि । इनमें से प्रमुख सतसइयों का अवलोकन अभीष्ट हैं ।

(२) तुलसी - सतसई :- (वि.सं. १६४२) :-

कुछ विद्वान प्रस्तुत सतसई को गोस्वामीजी के फुटकर दोहो का संग्रह मात्र मानते हैं। जो लोग इस सतसई को गोस्वामीजी की रचना नहीं मानते वे दोहावली को उनकी रचना मानते हैं। दोहावली में भी फूट रचनाएँ मिल जाती हैं। अतः केवल फुट रचना के कारण ही 'तुलसी- सतसई ' या 'दोहावली ' को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । गोस्वामी तुलसीदास स्वयं अपनी इस कृति के रचना-काल का उल्लेख करते हैं------

''अहि -रसना २, घनधेनु ४, रस ६, गनपति-द्विज १, गुरुवार ।
माधव सित सिय - जन्म -तिथि सतसैया अवतार ॥ (१३) ॥

इसके अनुसार संवत १६४२ वैशाख शुकला नवमी सीता - जन्म -तिथि के अवसर इस ग्रन्थ की रचना की गई । तुलसी ने इसमें विभिन्न विषयों पर अपने विचार प्रकट किए हैं । यह ग्रन्थ सात सर्गो में विभक्त है। ----

(१) भक्ति

(२) उपासना

(३) सांस्कृतिक वक्रोक्ति द्वारा राम-भक्ति

(४) आत्म-बोध

(५) कर्म-सिध्धांत

(६) ज्ञान सिध्धांत

(७) राजनीति निरुपण ।

सर्ग विभाजन की यह पध्धति अवश्य ही तुलसी की प्रकृति के अनुसार दिखाई देती है। तुलसी ने प्रथम सर्ग में प्रेम भकित के आदर्श के रुप में चातक को लेकर अपनी अनन्य एवं अहैतुक भकित प्रदर्शित की है।

''गंगा यमुना सुरसती सात सिन्धु - भरी पुर ।
तुलसी चातक के मते बिना स्वाती सब घूर ॥९३॥
चातक सुतहि सिखाव नित , आन नीर जनि लेहु ।
यह हमरे कुल को धरम , एक स्वाति सों नेहु ॥१००॥ (१४)

कवि ने सातवे सर्ग में व्यावहारिक नीति का उपदेश दिया है----

उरग तुरग नारी नृपति नर नीचो हथियार ।
तुलसी परखत रहब नित इनाहिं न पलहत बार ॥६३५॥
तुलसी झगडा बडन के बीच परहु जनी धाय ।
लडैं लौह पाहन दोउ बीच रुई जरी जाय ॥७०८॥ (१५)

तुलसी सतसई में कुल मिलाकर ७४४ दोहों का संग्रह है। इसके द्वारा कवि ने भकित-सिध्धांत एवं जीवन-तथ्यों का प्रभावपूर्ण उद्‌घाटन किया है । इसे विशुध्ध सूक्तिप्रधान सतसई कहा जा सकता है ।

प्राय : हिन्दी - साहित्य में सतसई की परम्परा का आरंभ तुलसीदास और रहीम की सतसईयों से होता है । ये दोनों समकालीन सतसईर्या हैं। इन सतसईयों का अल्प मात्रा में बिहारी पर प्रभाव रहा है ।

तुलसी - सतसई और बिहारी सतसई दोनों में जो साम्यता दिखाई देती है इसके दो चार उदाहरण देखें --

''तुलसी राम कृपालु तें कहि सुनऊ गुम दोस
होय दूबरी दीनता परम पीन संतोष ॥ (१६)

बिहारी का निम्न दोहा अल्पसा भावसाम्य रखता है ।

''कीजे चित सोई , तरे जिहिं पतितनु के साथ ।
मेरे गुन - औगुन - गननु गनौन गोपीनाथ ॥२२५॥ (१७)

(हे गोपीनाथ, मेरे प्रति मन में वही वही बात सोचिए जिससे मैं भी पतितों के साथ तर जाऊँ। मेरे गुणों और अवगुणों की गिनती न कीजिए ।)

तुलसीदास ने राम- कृपा से परम संतोष की बात कही है और बिहारी ने तैर जाने की (मुक्ति की) बात सोची है ।

आराध्य राम का कमनीय रुप वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं----

''ललित चरन कटिकर ललित लसन ललित वनमाला
ललित चिबुक द्विज अधर सह लोचन ललित विसाल ॥३००॥ (१८)

बिहारी अपने कृष्ण को इस तरह इस रुप में मनमे बसाना चाहते है----

''सीस -मुकुट , कटि-काछनी, कर मुरली उर-माला ।
इहिं बानक मो मन सदा बसौं बिहारी लाल ॥३०॥ (१९)

(सिर पर मुकुट सजा है , कमर में धोती बँधी है , हाथ में बाँसुरी है और वक्षस्थल पर माला पडी हुई है । हे कृष्ण, तुम इसी रुप में सदा मेरे मन में निवास करते रहो ।)

धन मनुष्य पर क्या असर करता है ? अर्थात धन विपतियों का कारण है । तुलसीदास कहते है--

''होत हरख का पाय धन विपती तजे का धाम ।
दुखदा कुमति कुनारितर अति सुखदायक राम ॥२२५॥ (२०)

बिहारीने भी धन को पाते ही बौराने को बात कही है अर्थात धन से अनर्थ होता है । इसे अगर टाल दिया जाय तो सचमुच ही मनुष्य संतोष प्राप्त कर सकता है ।

संसार में जो लोग बडे होते है यदि उनसे कोई भूल होभी जाती है, तो भी उनको कोई कुछ नही कहता । इस कथन की पुष्टि में तुलसीदास का निम्न उदाहरण द्दष्टव्य है-----

''बडे पाप बाढे किये छोटे करत लजात ।
तुलसी ता पर सुख चहत विधि पर बहुत रिसात ॥८२४॥ (२१)

इसी भाव को बिहारी अन्योक्ति द्वारा समझाते है यथा

''को कहि सकै बडेनु सौ लखै बडीयौ भूल ।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल ॥४३१॥ (२२)

(बडे लोगों से यदि कोई बहुत बडी भूल हो जाए तो उसे देखकर कोई उनसे कुछ नही कह सकता नही तो विधाता ने गुलाब की कंटीली डालों में ऐसे सुन्दर फूल लगाए, यह भूल नहीं तो कया है ।) तुलसी-सतसई के अतिरिक्त कवितावली और विनय पत्रिका के अंशो का भी भावसाम्य बिहारी सतसई मे मिलता है।

तुलसीदास ने जनमानस की रागात्मक वृति को रामभकित के माध्यम से पल्लवित किया है अर्थात् उनकी भक्तिभावना रहस्यमयी न होकर सीधी सरल एवं सहज हैं ।

इस प्रकार तुलसी-सतसई एवं बिहारी- सतसई में अल्पमात्रा में समानता दिखाई देती है ।

(३) रहीम - सतसई :-

रहीम का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था । अकबर के नव रत्नों में से वे एक थे । रहीम एक सफल कवि ही नही , एक कुशल प्रशासक और सेनापति भी थे । कलम और तलवार दोनों पर उनका समान अधिकार था । भक्त कवियों सी उदात्तता और भारतीय होने का गहरा एहसास उनकी रचनाओं में विद्यमान है । संस्कृत, हिन्दी ,अरबी और फारसी के वे अच्छे ज्ञाता थे ।

मुक्तककार रहीम के नीतिपरक दोहों में जीवन के कटु-मृदु अनुभवों की अभिव्यक्ति हुइँ है। छंदो का उन्हें अच्छा ज्ञान था । 'रहीम रत्नावली' के नाम से उनके मुक्तकों का संग्रह प्राप्त है ।

'रहीम सतसई' से उद्धृत नीतिपरक मुक्तकों में आचरण की सरलता, सहजता, निश्छलता, विनम्रता और विवेकप्रियता आदिको जीवन की सफलता के लिए आवश्यक बतलाया गया है । नित्य जीवन के द्रष्टांतों के द्वारा उन्होंने अपने दोहों को प्रभावशाली बनाया है ।

दुर्भाग्य से यह सतसई खण्डित रुप में उपलब्ध है वरन् यह श्रृंगार एवं नीति-समन्वित एक आदर्श सतसई सिध्ध हो सकती थी । इसकी रचना सं १६२० में मानी जाती है । यदि सतसई के ही व्यक्तित्वअंकन का एक मात्र उपकरण मान लिया जाए तो यह कहा जा सकता है कि इससे रहीम के खण्डित व्यक्तित्व का पत्ता चलता है । इससे बहुमुखी प्रतिभासंपन्न रहीम का जीवन्त एवं सैलानी स्वभाव अछूता रह जाता है । प्राप्त दोहों में से श्रृंगार के दोहे अत्यल्प है । सम्भव है ; किसीने श्रृंगार के दोहे निकाल कर नीति-सूकित आदि के दोहों का एक संक्षिप्त संग्रह किया हो । किन्तु यह भी सच है कि प्राप्त नीति व शिक्षा के दोहे भी एक भव्य प्रासाद के खण्डहर की प्रतीति कराते हैं । इन दोहों में व्यावहारिक ज्ञान, मार्मिकता एवं सार्वभौमता का सुन्दर सामंजस्य दिखाई देता है । आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र रहीम के विषय में लिखते हैं ----- ''मुक्तककार की रचना करनेवालों की नीति- सम्बन्धी उक्तियाँ उनके सांसारिक जीवन से विशेष संबंध रखती है , जिनमें अनुभव की मात्रा विशेष होती है और लोक के भीतर बहुत दुर तक दृष्टि दौडा सकने का जिन्हें अवसर प्राप्त होता है , वे ही इस प्रकार की सूक्तियां लिख सकता है । रहीम की ऐसी रचना में जो रसात्मक अनुभूति पाई जाती है उसका कारण लोक-व्यवहार के मेल में होना ही है।'' (२३)

रहीम के नीति सम्बन्धी दोहों पर संस्कृत सुभाषितों का प्रभाव देखा जा सकता है । लेकिन उनकी यह विशेषता है कि वे दूसरे का भाव-ग्रहण कर , उसे आत्मसात् कर इस कौशल से प्रस्तुत करते हैं कि वह उनकी अपनी अनुभूति दिखाई देती है । उन्होंने अपने समकालीन व परवर्ती कवियों को काफी प्रभावित किया है । कुछ उदाहरण देखिए :-

''धनि रहीम जल पंक को , लघु जिय पियत अघाय ।
उदधि बडाई कौन है , जगत पियासो जाय ॥ (२४)

रहिम ने कहीं- कहीं श्रृंगार के दृष्टान्त को सूक्ति के उपकरण के रुप में स्वीकार किया है-

''कुटिलन संग रहीम कहि , साधू बचते नाहिं ।
ज्यों नैना सैना करे , उरज उमेठे जाहिं ॥ (२५)

उपर्युक्त दोहे में श्रृँगार के रसिक उदाहरण के द्वारा लोकोकित का समर्थन किया गया है तो निम्नलिखित दोहे मे लोकोकित के द्वारा नेत्र एवं अधरों का आसव छलकाया है --

'' नैन सलोने अधर मधु , कहि रहीम धटि कौन ।
मीठो भावे लौन पर , अरु मीठे पर लोन ॥ (२६)

तुलसीदास की भाँति रहिम ने उपदेशात्मक प्रवृति को प्रधानता देकर सूक्ति प्रेम का परिचय दिया है। रहीम ने अनुभव और सांसारिक आचार की बाते कही हैं । सतसई में यत्र तत्र ऐसे दोहे मिल जाते है जिनका प्रभाव बिहारी पर पडा है ।

प्रिय और प्रेयसी के मिलन का महत्व बताते हुए रहीम कहते हैं-----

''काहौ करौ बैकुण्ठ लै कल्पवृक्ष की छाँह ।
रहिमन ढाक सुहावनी जो गल प्रीतम बाँह ॥ (२७)

(यदि प्रिय पास न हो तो स्वर्ग में कल्पवृक्ष की छाया में बैठकर भी क्या करुंगा और यदि गले में प्रियतम की बाँह पडी तो ढाक का वृक्ष भी सुहाना लगता है ।) बिहारी के दोहे मे भी इसी प्रकार का भावसाम्य द्रष्टव्य है ----

जौ न जुगति पिय मिलन की , धूरि मुकति-मुँह दीन ।
जौ लहिये संग सहज , तौ धरक नरक हूँ की न ॥ (६५) (बि) (२८)

प्रिय और प्रेयसी का मिलन ही मुक्ति है , जब तक वह प्रियतम को मिलाने में सहायक हो तब तक ही मुक्ति की कामना की गई है । प्रियतम अगर साथ में हो तो नरक का भी डर नहीं रहता ।

रहीमने प्रेम का वर्णन अत्यन्त व्यापक आत्मानुभूति से करते हुए प्रेमपथिक को सचेत किया है---

'' रहिमन मैन तुरंग चढि , चलियों पावक माँहि ।
प्रेम पन्थ ऐसो कठिन ; सब कोउ निबाहत नाही ॥'' (२९)

मन तुरंग पर चढकर पावक में भी चलता है । पर प्रेम का मार्ग ऐसा कठिन होता है कि उसे सब कोई निबाह नही सकते ।

इस प्रकार रहीम के दोहे नीतिपरक या उपदेश प्रधान ही अधिक रहे हैं ।

(४) मतिराम - सतसई :-

रीतिकालीन कवि मतिराम का जन्म वि सं १६७४ में माना जाता है । 'अलंकार चन्द्रिका'; 'ललितललाम' एवं 'रसजात' इनके प्रसिध्ध ग्रंथ है। मतिराम- सतसई में पिछले दो ग्रन्थों - 'ललितललाम' व 'रसजात' के दोहों का समावेश बताया जाता है । इनके आश्रय दाता का नाम भोगनाथ बताया जाता है बिहारी -सतसई की भाँति ही इस ग्रन्थ की रचना हुई होगी । मतिराम ने यह ग्रन्थ अपने आश्रयदाता भोगनाथ के समर्पित किया है । सतसई के दोहे शुध्ध ब्रज भाषा मे हैं । उनमें एक सहज प्रवाह एवं गाम्भीर्य के दर्शन होते है । सुकुमार प्रेमाभिव्यंजना नखशिख- वर्णन एवं संयोग -वियोग के मार्मिक चित्र 'मतिराम-सतसई' की विशिष्ट निधि है ।

मतिराम बिहारी से विशेष प्रभावित लगते है । बिहारी -सतसई की भाँति ही प्रस्तुत ग्रन्थ भी श्रृंगार-रागानुरंजित है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के मतानुसार -''मतिराम प्रवीण और समर्थ कवि थे । इसलिए उन्होंने विदग्धतापूर्वक भावों को ग्रहण किया है । मतिराम के दोहे उत्कृष्ट है; उनमें बिहारी के दोहो के अधिकांश गुण मिलते हैं । भाषा की कसावट, भावों का उडान, पध्धति आदि सब बिहारी के ढंग की । इसी से कहते है कि मतिराम के दोहे यदि सतसैया में मिला दिया तो उन्हें पृथक करना कठिन हो ।'' (३०)

मतिराम के दोहे में हृदय को प्रभावित करने की शक्ति हैं । इसलिए बिहारी सतसई मे मतिराम के दोहोंका भावानुवाद अनेक उदाहरण में मिलता है ।

नायिका की अंग छवि का वर्णन मतिराम के दोहो में द्रष्टव्य है---

''तेरी ओर भाँति की दीप - सिखा सी देह ।
ज्यों ज्यों दीपति जगमगै-त्यौं- त्यौं बाढत नेह ॥'' (३१)

नायक नायिका की विपरीत रति का सखियों द्वारा किया गया अनुमान बडे कौशल के साथ करते हुए मतिराम कहते हैं कि ---

रति विपरीत प्रस्वेद-कन पिय कौ सींचति काम ।
मनौ प्रौढ पुन्नाग कै मुकुलनि पूजति काम ॥(३२)

इस प्रकार मतिराम सतसई में भक्ति, नीति एवं श्रृंगार निरुपण दोहें मिलते है ।

(५) वृन्द-सतसई :-

वृन्द-सतसई वि स १७६० में रची गई है , इसमें नीति , ज्ञान , और उपदेष प्रधान सूक्तियाँ मिलती है। कवि वृन्द औरंगजेब के दरबारी कवि थे । ये स्पष्ट वक्ता थे , इनके पूर्वज बीकानेर शाकद्वीपीय भोजक ब्राह्मण थे किन्तु किन्ही कारणों से इनके पिता श्री रुपजी मेहता आकर बस गए थे । किशनगढ के महाराज ने इन्हें सं १७६४ में आश्रय प्रदान किया । इन्होंने 'सत्य -स्वरुप,' 'भाव-पंचाशिका' 'एवं हितोपदेशाष्टक' आदि अनेक ग्रन्थों का सृजन किया । फिर भी सतसई के कारण ही ये अधिक लोकप्रिय हुए

इस सतसई के दोहे प्राकृत- संस्कृत -सुभाषितों से प्रभावित है । कवि अपनी रचना का मर्मोद्घाटन करते हुए कहते हैं------

''भाव सरस समुझता सबै, भले लगे यह भाव ।
जैसे अवसर की कही , बानी सुनत सुहाय ॥ (३३)

कवि वृन्द ने अपनी सतसई में यमकालंकार का विविध दृष्टि से प्रयोग किया है । अतः इसे 'यमक-सतसई ' भी कहा जाता है । वृन्द की सूक्तियाँ रत्न के समान है । श्री देवेन्द्र शर्मा के मतानुसार - ''सूक्तिकारों में चमत्कारपूर्ण दृष्टान्त की नियोजना करने में वृन्द निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ कवि है।'' (३४)

हिन्दी के अन्य प्रसिध्ध कवियों की भाँति सुकवि वृन्द के जीवन वृतान्त के सम्बन्ध में भी अभी सन्देह ही बना है। कुछ विद्वान इन्हें मथुरा जिले के किसी ग्राम का निवासी मानते हैं और कुछ जोधपुर राज्य के मेड़ता नामक स्थान का । परन्तु बहुमत मेड़ता ही पक्ष में हैं।

कहते है कि इनका जन्म आश्विन शुक्ल, १ गुरुवार संवत् १७०० में मेड़ता नामक स्थान में हुआ। इनके पिता का नाम कविरुपजी था और वह डिंगल भाषा के अच्छे कवि थे। जब वे दस वर्ष के हुए तब काशी चले आए और उनकी शिक्षा दीक्षा वहीं हुई।

काशी से लौटने के बाद वे कुछ समय तक महाराज जोधपुर के दरबार में रहे। संवत् १७३० में उनकी पहुँच औरंगझेब के दरबार में हुई। बादशाह के मस्जीदान वजीर नवाब मुहम्मद खाँ से इनकी मित्रता हो गई थी और उन्हीं की सहायता से यह शाही दरबार में पहुँच सके थे। औरंगझेब के दरबार में इनको दस रुपये प्रतिदिन के हिसाब से वेतन मिलने लगा और यह शाहजाद मुअज्जम तथा औरंगजेब के पौत्र अज्जीमुश्शान के अध्यापक नियत कर दिये गये।

इसके बाद संवत् १७४२ (१७४२) में कृष्णगढ़ के महाज मानसिंह ने इनको अपने दरबार में बुला लिया । वहाँ पर राजकुमार राजसिंह के शिक्षक नियत हुए। कुछ समय तक इन्होंने अजमेर के सूबेदार मिर्जा कादरी की पुत्री को भी पढ़ाया था; परन्तु दरबारी कवि होने के कारण यह दिल्ही बराबर जाया करते थे।

जब औरंगजेब के पुत्रों में साम्राज्य के उत्तराधिकार के लिए झगड़ा हुआ तब महाराज राजसिंह शाहमुअज्जम के और से लड़े और विजयी हुए। जब इस बादशाह को गदी मिली तब राजसिंहने इन्हें अपने दरबार के लिए मान लिया। तब से अंत तक यह कृष्णगढ़ ही में रहे और वही संवत् १७८० (१७८०) में अस्सी वर्ष की आयु में इनका शरीरान्त हुआ।

यद्यपि वे औरंगजेब के दरबार में रहते थे तथापि समय पड़ने पर खरी बात कहने में जरा भी नही हिचकते थे। कहते हैं कि जब जोधपुर के महाराज जसवंतसिंह का देहान्त हो गया तब औरंझेब इन्होंने सु समय जो कवित बनाया था वह इनकी स्वतंत्र प्रकृति का सच्चा परिचायक है। 'सतसई-सप्तक' से वह कवित नीचे उद्धृत किया जाता है।

एहोशाह औरंग कहावत हौ पातशाह,
आपही बिचारौ यह कैसी सुबहानगी।
जब महाराज लाल डेरा लगाइ लूटे।
तब क्यों न लहि के दिखाई तेग बानगी।
देस परदेस सूबा केतक इनाम दीन्हें,
कीन्ही दिल जोई, और प्यार परवानगी।
जब जसवंत सुरपुर को सिधारे तब,
तेग बाँधि आए यह कैसी मरदानगी।(३५)

कवि वृन्दने 'सत्य-स्वरुप', 'भाव पंचाशिका' एवं हितोपदेशाष्क' आदि अनेक ग्रन्थो का सृजन किया फिर भी सतसई के कारण ही ये अधिक लोकप्रिय हुए। इस सतसई के दोहे प्राकृत-संस्कृत-सुभाषितों से प्रभावित हैं। कवि अपनी रचना का मर्मोद्घाटन करते हुए कहते हैं-

''भाव सरस समुझता सचै, भले लगे यहभाव।
जैसे अवसर की कही, बानी सुनत सुहाय॥(३६)

वृन्द-सतसई में कवि ने यह बताकर कहा है कि श्री गुरुस्वामी के प्रभाव से ही सारी इच्छाएँ पूर्ण होती है -

श्री गुरुनाथ प्रभाव ते, होत मनोरथ सिद्ध।
धन तैं ज्यौं तरु बेलिदल, फूल फलन की वृद्धि॥(३७)

अर्थात् जिस प्रकार बादलों से पेड़, बेलि, पत्तों तथा फल फूलों की वृद्धि होती है उसी प्रकार श्री गुरुस्वामी के प्रभाव से सारी इच्छाएँ पूर्ण होती है।

कविने बताया है कि - असमय में कही अच्छी बात भी बुरी लगती है जैसे युद्ध के समय श्रृंगार रस का वर्णन अच्छा नहीं लगता। जैसे-

नीकी पै फकी लगें, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, इस सिंगार न सुहात॥(३८)

तो दूसरी और यह भी कहा कि-

फीकी पै नीकी लगै, सहिए समय बिचारि।
सबको मन हर्षित करै, ज्यौं विवाह में गारि॥(३९)

परिश्रम का महत्व बताते हुए वृन्द कहते है कि-

''अन-उद्यम ही एक कौ, यौं हरि करत निबाह।
ज्यों अजगर भख आनि कै, निकसज्ञ वाही राह॥''(४०)

कवि कहते हैं कि जब तक शरीर में चलने फिरने की शक्ति है तब तक बराबर उद्योग करना चाहिए। क्योंकि अजगर की तरह सिंह के मुख में अपने आप आकर मृग नहीं घुसते। जैसे-

''हलन चलन की सकति है, तौ लौं उद्यम ठानि।
अजगर ज्यौं मृगपति बदन, मृग न परतु है आनि॥''(४१)

''विद्या धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।

बिना डुलाए ना मिलै, ज्यौं पंखा की पौन॥''(४२)

जिस प्रकार बिना चलाए पंखा से हवा नहीं निकल सकती उसी प्रकार परिश्रम किए विद्या धन भला किसे मिल सकता है ?

वृन्द - सतसई में कवि ने सत्य बात को सहजता से बताई है। प्रायः शिक्षा की बात प्रत्येक को कड़वी लगती है (अंत में उससे लाभ ही होता है) जैसे कड़वी दवाई बिना पिए शरीर का रोग नहीं मिटता उ.दा.-

''बुरे लगत सिख के बचन, हिए विचारारू आप।

करुई भेखज बिनु पिये, मिटै न तन का ताप॥''(४३)

कवि वृन्दने अपनी सतसई में यमकालंकार का विविध द्रष्टि से प्रयोग किया है। अतः इसे 'यमक-सतसई' भी कहा जाता है। वृन्द की सूक्तिर्यां रत्न के समान है। **श्री देवेन्द्र शर्मा** के मतानुसार - ''सूक्तिकारों में चमत्कारपूर्ण द्रष्टांत की नियोजना करने में वृन्द नि-संदेह सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

(६) रसनिधि-सतसई :-

रसनिधि-सतसई के रचयिता हैं -'पृथ्वीराज' 'रसनिधि'। प्रस्तुत सतसई रसनिधि के रतनहजारा नामक बृहद ग्रंथ का लधु संस्करण है। इसका रचनाकाल वि सं १६६०-७० माना जाता है। इसकी मूल चेतना प्रणय और श्रृंगार है । इनकी कविता में प्रणय और श्रृंगार की प्रवृति व्यसन की सीमा का अतिक्रमण करती दिखाई देती है । अतः ऐसे प्रसंगों पर ये बहकते दिखाई देते हैं , इसका जादु कुछ है ही ऐसा । रसनिधि के शब्दों में ----

''अदभूत गति यह रसिक निधि , सरस प्रीति की बात ।

आवत ही मन साँवरौ , उर को तिमिर नसात ॥'' (४४)

रसनिधि के दोहों में उर्दू फारसी शब्दावली, यमक-श्लेषालंकार का प्रयोग एवं पुनरुकित प्रायः मिलती है। ये अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित दिखाई देते हैं । कहीं- कहीं तो उन्होंने कबीर-जायसी के अनुकरण

पर हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्रतिपादन किया है । इनके दोहों पर बिहारी का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रेम की अद्‌भुत गति का वर्णन करते हुए रसनिधि कहते है----

''प्रेम अहेरी की अरे, यह अद्‌भूत गति हेर ।
कीने दृग मृग मीत के, मन चीते पर सेर ॥(४५)

(प्रेम अहेरी की यह अदभुत गति देखिए तो, जिसने प्रिया के दृगरुपी मृगों एवं मनरुपी चीते पर शेर-सा आक्रमण किया)

निःसंदेह रसनिधि की 'शेर का चीते पर आक्रमण' आश्चर्यजनक बात तो नहीं। बिहारी के अहेरी मार तो नैन-मृग से ही शिकार कर रहे हैं ।

''खेलन सिखए अलि भलै चतुर अहेरी मार ।
कानन - चारी नैन- मृग नागर नरनु सिकार ॥(४६)

(हे सखी , कामदेव- रुपी चतुर अहेरी ने तेरे कानन-चारी नयनरुपी मृगों को भलीभाँति-नगर निवासी नरों का शिकार करना सिखलाया है । तत्कालीन श्रृंगारिक प्रवृति का परिचय बिहारी ने इस दोहे के द्वारा करवाया है।

रसनिधि का और एक दोहा है जिसमे प्रेम की गति का वर्णन मिलता है ----

''अदभुत गत यह प्रेम की लखौ सनेही आइ ।
जुरै कहूँ टुटै कहूँ , कहूँ गाँठ परि जाइ ॥(४७)

(प्रेम की यह अदभुत रीति देखिए , स्नेह से आँखे जुडती है , कुटुम्ब टुटते हैं और दुर्जनों के हृदय मे गाँठ पडती है)

अतः रसनिधि सतसई मे पृथ्वीराज ने मुख्यतः श्रृंगार एवं भक्ति का ही वर्णन किया है ।

(७) राम-सतसई :-

राम-सतसई के रचयिता कवि श्री रामसहायदास छन्द- निरुपण की दृष्टि से अपने युग के प्रौढ आचार्य माने जाते हैं । इस सतसई का रचना काल वि स १८६० से वि स १८८० माना जाता है । कवि रामसहाय दास ने स्वयं एक भक्तात्मा होने पर भी श्रृंगार चेष्टाओं का सरस व सजीव चित्रांकन किया है।

श्याम जमुना तट पर खडा है और पनिहारिन गोपी भी वहाँ आ पहुंची है । वह अपने प्राण-प्रियतम के सौन्दर्यामृत का पान करने के लिए बार-बार कलस में पानी भरती है और बार-बार ढुलका देती है और मुस्कुराती जाती है ----

''जमुना तट नट नागरैं , निरखि रही ललचाइ ।
बार-बार भरि गागरैं , बारी ढारि मुसकयाइ ॥(४८)

इन दोहों में माधुर्य गुण के साथ सर्वत्र प्रासादिकता भी व्याप्त है । प्रस्तुत ग्रन्थ पर भी बिहारी - सतसई का गहरा प्रभाव द्रष्टिगोचर होता है । कुछ दोहें तुलनार्थ द्रष्टव्य है---

'सगरब गरब खिंचै सदा , चतुर चितेरे आइ ।
पर बाकी बाकी अदा , नैकु न खींची जाइ ॥(४९)

''लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरुर ।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥(५०)

इस प्रकार राम सतसई और बिहारी सतसई के कई दोहे समान है । 'राम सतसई' के विषय में डॉ नागेन्द्र का मत है कि यह रीतिकालीन श्रृंगार परम्परा का उत्तम ग्रन्थ है ; जिसे बिहारी सतसई के समान उत्कृष्ठ कहा जा सकता है ।

(८) दयाराम - सतसई :

गुजरात के व्रज भाषा कवि दयाराम ने अपनी ४९ वर्ष की आयु में, संवत् १८७२ में, सतसैया की रचना की। जिसमें ७३१ दोहे जगमगा रहे हैं। कवि स्वयं अपनी रचना के विषय में ग्रन्थ के अन्त में उल्लेख करते हैं-

शक अष्टादश दुहुतरा शुभ्र पच्छ नभ मास।
मिति श्री राधा अष्टमी बार गुरु शुभ रास ॥ ७२६ ॥ (५१)

दयाराम के व्रज भाषा में लिखे गए लगभग ४६ ग्रन्थों में सतसैया शिरोमणि है। प्रस्तुत ग्रन्थ कवि के व्यापक अनुभव, गहन, ज्ञान, सूक्ष्म पर्यवेक्षण एवं अनन्य कृष्ण-भक्ति का सबल साक्षी है। कवि ने एकलव्य की भाँति एकाग्रता व दीर्घ साधना से सिद्धि के शिखरों को लघु बना दिया । दयाराम से पूर्व गुजराती - साहित्य में दोहा छन्द का उन्मेष अवश्य दिखाई देता है। किन्तु 'सतसैया' या 'सतसई' जैसी किसी कृति का उल्लेख नहीं मिलता। अभी इस दिशा में संशोधन के लिए पर्याप्त अवकाश है। सम्भव है, कुछ नई मुक्ताएँ हाथ लगें। राजपीपला के डॉ. कान्तिकुमार भट्ट 'ज्ञानी-सतसई' का सम्पादान कर रहे हैं। ज्ञानीजी संत कबीर के शिष्य बताए जाते हैं। इनका समय वि.सं. १५३० के आसपास माना जाता है। किन्तु इस विषय में 'ज्ञानी-सतसई' के उचित परीक्षण के पश्चात् ही निश्चितरुप से कुछ कहा जा सकता है। इधर हिन्दी - साहित्य में उस समय तक रहीम - सतसई, तुलसी-सतसई, वृन्द-सतसई, बिहारी सतसई, मतिराम-सतसई, रसनिधि-सतसई, राम-सतसई, आदि सतसैया-ग्रन्थों का केवल सृजन ही नहीं, बल्कि व्यापक प्रचार भी हो गया था।

कवि दयाराम ने तीन बार भारत - परिक्रमा एवं सात बार श्रीनाथजी यात्रा के सुदीर्घ काल में ही रहीम, तुलसी, केशव, बिहारी, सूरदास, नन्ददास एवं मीरां जैसे उच्चकोटि के भक्त कवियों की रचनाओं से निकट का परिचय प्राप्त किया। अतः यह सहज ही माना जा सकता है कि उन्हें बिहारी - सतसई से प्रेरणा प्राप्त हुई होगी।

'दयाराम - सतसई' में 'बिहारी - सतसई' की छाया विशेषरुपेण दृष्टिगत होती है। इसके अतिरिक्त दयाराम ने अपने ग्रन्थ में संस्कृत - प्राकृत के नीति - सुभाषित ग्रन्थों का आधार भी ग्रहण किया है।

सतसई के सूक्ष्म अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ में भक्ति व नीति विषयक दोहों की संख्या लगभग ६८% है। यद्यपि शेष दोहों में भी कवि की प्रेमा-भक्ति की ही अभिव्यक्ति हुई है, फिर भी उन्हें स्वरुप के आधार पर श्रृंगारादि विषयों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। अतः प्रस्तुत सतसई में उपलब्ध दोहों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है -

१) प्रणय व श्रृंगार के दोहे	२०८
२) भक्ति व नीति के दोहे	४९१
३) भक्ति व रीति के दोहे	००
४) काव्य - सम्बन्धी दोहे	१०
५) चित्र - काव्य	०३
६) ग्रन्थ - समाप्ति व आत्म - परिचय सम्बन्धी दोहे	१०
कुल	७३१

प्रस्तुत ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सूक्ति - सतसई एवं श्रृंगार-सतसई दोनों का शुभग समन्वय हुआ है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इसमें भक्ति-नीति तथा श्रृंगार, सत्य-शिव और सुन्दर का त्रिवेणी संगम हुआ है। 'सतसैया' के एक-एक दोहे में ज्ञान तथा भक्ति का रस छलक रहा है। कवि ने आराध्य श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति को ही मुख्य आधार मानकर नायिका-भेद की प्रसंगानुकूल योजना की है। बिना प्रणय-भावना से सारा संसार स्मशानवत् है, वह केवल सुन्दर अलंकृत शब के समान है-

रति बिन रस सो रसहि सों, रति बिन जांन सुजांन।
रति बिन मित्र सुमित्र सों, रति बिन सब शब जान॥ (५२)

दयाराम ने दोहे जैसे छन्द में जिस व्यापक्ता का समावेश किया है, उसके लिए वल्लभ-वल्लभ का अनुग्रह अनिवार्य है-

वरन थोर अति अर्थ सह, अमल सरस सब होय।
कृपा-भारती कृष्ण वह, काव्य न अैसी कोय॥ (५३)

जब एक सामान्य भोज्य पदार्थ भी तुलसीदल के संयोग से प्रसाद बन जाता है तो भला पुष्टि-प्रसाद की पवित्रता एवं स्वादिष्टता के विषय में कैसा विवाद! यह तो सब प्रपंच है और प्रपंच का भक्ति से क्या लेना-देना ! भक्ति तो कबीर की 'प्रेमगली' के समान है। 'मैं' और 'हरि', 'हरि' और प्रपंच का मेल कहाँ से बैठ सकता है ! यथा -

जो प्रपंच मन तों न हरि, हरि में तों न प्रपंच।
जेसें बायस दीठ बल, इक दृग अके न रंच॥ (५४)

ग्रन्थ का आरम्भ मंगलाचरण से होता है, जिसमें कवि ने गुरु एवं गोविन्द के चरणाविन्द की भावपूर्ण वन्दना की है-

श्री गुरु वल्लभ देव अरु, श्री विट्ठल श्री कृष्ण।
पद-पंकज वन्दन करों, दुखसर पूरन-तृष्ण॥ (५५)

तत्पश्चातप कवि दयाराम सूर, तुलसी तथा बिहारी की शैली में आत्मोद्धार के लिए अन्तर्यामी से निवेदन करते हैं-

अनन्त हें अपराध मम, केसें पेहों अन्त।
श्रमित होंउगें बीसरों, सुकुमार भगवन्त॥ (५६)
कहत बनें न कछू, सबें जानत अन्तर जांमि।
बाँहि गहों तो ऊबरों नाँतर बूर्यो स्वांमि॥ (५७)

कवि अपने नटवर नन्दलाल को प्रणय तथा श्रृंगार के तानों-बानों में ऐसा गूँथ लेते है कि बस दर्शन की पिपासा मिटने का नाम ही नहीं लेती, नेत्र-मीन निरन्तर तृषाकुल रहते हैं-

बानिक नटवरलाल कि न लिखत तोष दिन रेंन।
पान करें प्यासे मरें, बनचर त्यों मन मम नेंन॥ (५८)

कवि ने नायिका-भेद भी लक्षण-ग्रन्थों की परिपाटी के अनुसार किया है। कवि के अज्ञातयौवना के एक उदाहरण में 'चिन्ता' लक्षण का सहज समावेश हुआ है। आचार्य केशवदास ने 'चिन्ता' अवस्था की परिभाषा इस प्रकार की है-

कैसे के मिलिये, मिलें, हरि कैसे बस होई।

यह चिन्ता चित चेत कै बरनत है सब कोइ॥ (५९)

इसके अतिरिक्त दयाराम ने आचार्य केशव की 'रसिकप्रिया' के अनुकरण पर गुजराती भाषा में 'अलौकिक नायक - नायिका - भेद हावभाव स्वरुप - लक्षणभेद - वर्णन' ग्रन्थ की भी रचना की है।

नायिका - भेद वर्णन की दृष्टि से बिहारी और दयाराम एक - दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं। दयाराम के समक्ष बिहारी का आदर्श अवश्य था, फिर भी 'दयाराम-सतसई' को 'बिहारी-सतसई' का निपट अनुकरण नहीं कहा जा सकता। दयाराम की उन्मुक्त कल्पना से सजी-संवरी 'ज्योत्स्नाभिसारिका' का सौन्दर्य ही कुछ निराला है-

चमकी चर्हुं दिस चाँदनी, गोरी घरि सित बास।

मुक्त सुक्ति लों मलि चली, कुंज सदन पिय पास॥ (६०)

बिहारी की नायिका भी दूध में मिश्री की भाँति ज्योत्सना में घुल-मिल गई है। उसकी सुरभि ही अन्तरंग सखियों को उसका अनुसरण करने में सहायता करती है, यथा-

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाई।

सौंघें के डोरें लगी अली चली संग जाई ॥ (६१)

दोनों कवियों की नायिकाएँ शुक्लाभिसारिकाएँ है, दोनों गौरागनाएँ है और दोनों शुभ्रवसना है। परन्तु दोनों के सूक्ष्म अवलोकन से प्रतीत होता है कि दयाराम की शुक्लाभिसारिका अकेली है। सीपी में रखे मोती के समान अदृष्ट वह महाश्वेता दुग्ध थवल-ज्योत्स्ना में मिलकर संकेतस्थल की ओर गमन कर रही है, जबकि बिहारी की नायिका सखियों के समूह में नक्षत्र-मण्डल में शशि के समान सुशोभित हो रही है। वह चाँदनी में सर्वथा ओत-प्रोत हो गई है। लेकिन उसके अंग-केसर-सौरभ से ही सखियाँ उसका अनुमान लगा सकती है। दयाराम की नायिका में मोती-की-सी तरल कान्ति है तो बिहारी की नायिका में केसर-भीनी सुवास हौं दोनों नायिकाओं में उन्नीस-बीस का अन्तर करना कठिन हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि दयाराम ने बिहारी के ही भाव और शब्दों को ग्रहण कर उन्हें कुछ भिन्न दृष्टान्त के साथ प्रस्तुत कर दिया है। इसी प्रकार कृष्णाभिसारिका का उदाहरण भी द्रष्टव्य है-

कारी सारी कुहु छपा, छुपत जात द्रुभ ओट।

दुरि न रहे द्युति देह तहु, ज्यों ससि बदरा गोट॥ (६२)

- दयाराम

निसि अँधियारी नील पटु, पहिरि चली पिय गेह।

कहौ दुराई क्यौं दीपशिखा सी देह॥ (६३)

- बिहारी

कृष्णभिसारिका सम्बन्धी दयाराम का उपर्युक्त दोहा बिहारी के दोहे की अनुकृति प्रतीत होता है। दयारामने बिहारी के दोहों का प्रभाव अवश्य स्वीकार किया है। फिर भी उन्होंने उस प्रभावाभिव्यंजना में अपनी काव्य-प्रतिभा एवं कल्पना-शक्ति को कुण्ठित नहीं होने दिया है। स्वयं बिहारी ने भी तो 'गाथा सप्तशती' आदि पूर्ववर्ती ग्रन्थों के भाव-प्रभाव को अपने अनुरुप बनाकर प्रस्तुत किया है। बिहारी और दयाराम, दोनों के सूक्ष्म अध्ययन करने पर दोनों के बीच एक आधारभूत साम्य होते हुए भी दोनों की निजी विशेषताएँ प्रकट हुए बिना नहीं रहेंगी। दयारामने कृष्णाभिसारिका के श्यामांचल के लिए 'कारी-सारी' और बिहारी ने 'नील पटु' शब्द-प्रयोग किया है। दोनों शब्द अपने-अपने परिवेश की देन हैं। दयाराम ने 'कुहु छपा' शब्द प्रयोग के द्वारा अमावस्या की घोर रात्रि का आभास दिया है। इधर बिहारी के 'निसि अंधियारी' शब्द से भी अन्धकार-पूर्ण रात्रि की अभिव्यंजना हुई है। प्रणय-परीक्षा एवं श्याम-समागम के हेतु रात्रि भी तो सांवली ही होनी चाहिए न ! लेकिन बिहारी का 'नीलपटू' शब्द परम्परा समर्थित नारी अभिरुचि एवं वर्ण-ज्ञान की मनोहर अभिव्यंजना कर रहा है। नारी-समाज में, विशेषतः गौरागनाओं में, नील पट के प्रति विशेष लगाव रहता है। यह नील पटी ही श्याम रंग के अभेदत्व का साधक व परिचायक है। स्वयं दयारामने भी अपने पहले दोहे में 'नील-निचोल' शब्द का प्रयोग किया है-

पीताम्बर परिधान प्रभु राधा नील निचोल।

अंग रंग संग परस्पर, यों सब हारद तोल ॥ (६४)

श्याम प्रभु पीताम्बर धारण किए हुए हैं तो राधाजी नीलाम्बरा है। दोनों के तन-मन के निरन्तर ऐक्य की प्रतीति ही इसका गूढ़ रहस्य है। इस दृष्टि से देखने पर दयाराम के कृष्णाभिसारिका सम्बन्धी दोहे में वह भावसौन्दर्य व्यक्त न हो सका जो बिहारी में है। बिहारी के दोहे में 'निसी-अँधियारी' और 'नील-पटु' के बीच

सहज सम्बन्ध जुड़ गया, किन्तु दयाराम ऐसा नहीं कर पाए। अतः उन्होनें 'द्रुम ओट' की योजना की। फिर भी, यह कुंज-सदन के अनुरुप होते हुए भी, अमावस्या की घोर रात्रि व वृक्षों की छाया के बीच अन्विति बैठती नहीं। दयाराम ने नायिका के उज्जवल वर्ण के लिए 'ससि बदरा गोट' शब्द-योजना की है, जिससे उसके असाधारण गौर वर्ण एवं श्यामाभिसार की अभिव्यक्ति हुई है। इधर बिहारी ने अन्धेरी रात में नायिका को 'दीप शिखा-सी' बताकर उसके चन्दन-केसर-रंजित सुगौर दहलता के सौन्दर्य का उत्कर्ष प्रदर्शित किया है। दयाराम बिहारी की ऊँचाई को छूने में तत्पर अवश्य दिखाई देते हैं, लेकिन उस ऊँचाई पर पर्हुंच नहीं सके हैं। दोनों कवि नारी-भावों के जौहरी हैं। जहां दयाराम को बिहारी के अनुवर्ती होने का लाभ है, वहां कुछ हानि भी तो सम्भव है !

दयाराम के दोहों पर 'बिहारी-सतसई' की अमिट छाप अंकित है। तुलनार्थ कुछ दोहे और भी लिए जा सकते हैं-

दयाराम -

अपने अपने सील कों सब को करत निभाव।
तुम कृपाल हम जीउ तो, सहजहि दुष्ट सुभाव॥ (६५)

बिहारी -

मोहि तुम्हे बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।
अपने अपने बिरद की दुहं निबाहन लाज॥ (६६)

दयाराम -

बिसयों बरद किधों हरी, एक बिसार्यो मोहि।
दृहुमेंते कछु तौ भयो, नांतर मम गति दोहि ॥ (६७)

बिहारी

थौरें ही गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ, कान्ह, मनौ भए आजकाल्हि के दानि ॥ (६८)

दयाराम -

चाहु बसाये हृदय में, घरु त्रिभंगी ध्यान।

तातें राख्यों कुटिल उसर, दोहि असी सो म्यान ॥ (६९)

बिहारी -

करौ कुबत जगु कुटिलता, तजौं न दीन दयाल।

दुखी दोहगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल॥ (७०)

जहाँ तक अपने उद्धार के लिए आराध्य को उपालम्भ से विभूषित करने का प्रश्न है, वहाँ बिहारी के दोहों में व्यंग्य की तीव्रता तथा साधिकार चेष्टा अधिक दिखाई देती है। सम्भव है, इसका कारण राज्याश्रय हो ! अपने वर्यासन के निमित्त अनेक राजाओं का आतिथ्य स्वीकार करना पड़ता है ! बिहारी के व्यंग्य में उस कसक की व्यंजन अधिक है। इसीलिए तो वे अपने आराध्य को 'आज काल्हि के दानी' कहकर उलाहना देने से नहीं चूकते । दयाराम का जीवन श्री गोपीवल्लभ के श्रीचरणों में समर्पित कमल-पुष्प है। अतः उनमें सन्तोष एवं आत्म-विश्वास की झलक दिखाई देती है।

दयाराम ने भी बिहारी के समान ही युगलकिशोर राधाकृष्ण की सुन्दर अभिवन्दना की है-

ललित त्रिभंगी छ्ल छवि, नटवर नन्द किशोर।

श्री राधा सह मो हृदें, बसौं चित कों चौर॥ (७१)

बिहारी

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा-नागरि सोइ।

जा तन की झायों परैं स्यामु हरित-दुति-होइ॥ (७२)

बिहारी का प्रेम अेकान्तिक है, अतः उसमें वेदना की अभिव्यक्ति अधिक है। दयाराम का प्रेम एकनिष्ठ है, लेकिन वह प्रेमास्पद को अपने रंग में रंगने के आत्म विश्वास से पूर्ण है। अतः दयाराम उस स्थिति में पहुँच जाते हैं, जहाँ सर्वत्र प्रियतम की छबि दृश्यमान होती है-

मुकर मुकर सब वस्तु भई नयन अयन किय लाल।

द्रग पसारु जित-जित अली, तित-तित लखूं गुपाल॥ (७३)

दयाराम के इस दोहे पर भी बिहारी के कुछ दोहों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, यथा-

अँग-अँग नग जगमगत दीप शिखा सी देह।

दिया बढ़ाएँ हूँ रहै बड़ौ उज्यारो गेह॥ (७४)

अँग-अँग प्रतिबिंब परि दरपन सै सब गात।

दुहरे, तिहरे, चौहरे भूषन जाने जात ॥ (७५)

उपर्युक्त सभी उदाहरणों एवं उद्धरणों से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि दयाराम 'बिहारी-सतसई' से अवश्य परिचित रहे होंगे, उन्हें अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए 'बिहारी-सतसई' की शैली एवं भाषा विशेष उपर्युक्त दिखाई, दी होगी । फिर भी दयाराम का व्यक्तित्व स्वतन्त्र है। उनकी सतसई भक्ति एवं नीति का एव विशाल कोष है। भक्ति-नीति और श्रृंगार का ऐसा उत्कृष्ट समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है ।

'दयाराम-सतसई' पर रहीम एवं तुलसी का प्रभाव भा स्पष्ट दिखाई देता है, उदाहरण के लिए दयाराम के निम्नलिखित दोहो पर रहीम की इन पंक्तियों का प्रभाव है - ''छमा बड़न को चाहिए, छोटन को उतपात।'' इसी भाव को लेकर दयाराम लिखते हैं-

चूक जीउ कों धरम हें छमा धरम प्रभु आप।

आयों शरन निवाजि निज, करि हरियें संताप ॥ (७६)

रहीम

रहीमन जिव्हा बावरी कहिगे सरग पताल।

आपनु कहि भीतर चलि, जूती खात कपाल॥ (७७)

दयाराम

रसना रस नाहे कहूँ, जेंसो अेंसो अेह।

रस बल बधत सनेह वे वे बल वधत सनेह॥ (७८)

तुलसी

सात स्वर्ग अपवर्ग धरिय तुला इक अंग।

तुलै न ताहि जो मिलै जो सुख लव सतसंग॥ (७९)

दयाराम

महिमा बड़ो सुसंग कों, मुरख लहें न कोय।

होत मिलाप दकार कों, काग सु कागद होय ॥ (८०)

तुलसी की चौपाइयों का भी कहीं-कहीं प्रभाव दिखाई देता है, उदाहरणार्थ तुलसीने 'मानस' के अन्तर्गत खल के विषय में 'छुद्र नदी' के दृष्टान्त से बताया है -

छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुं धन खल इतराई॥ (८१)

इसी भाव को लेकर दयाराम लिखते हैं-

संपति विपति पाय कें, अस गति हइि बड़ क्षुद्र।

जेसैं बरखा ग्रीष्म लहि, छोट सरीरु समुद्र॥ (८२)

तुलसी

दया धरम को मूल है, पाप मूल अभिमान।

तुलसी दया न छाँडियै, जब लग घट में प्रान॥ (८३)

दयाराम

दया न दिल ले छांडिये, जधपि पैयें वीर।

लखि ले जिन लगि भर्त ने, धारे जुग्म शरीर॥ (८४)

दयाराम के सत्संग, श्रवण एवं अध्ययन का क्षेत्र विशाल है। उन्होंने बिना किसी भेद-भाव के अपने उत्कृष्ट पूर्ववर्ती भक्त कवियों के ग्रन्थों को पचाया है और अनुकूल भावों को दृष्टान्तों तथा शब्दों के वैविध्य से

सुन्दर रुप में प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से कहना अनुचित न होगा कि 'दयाराम-सतसई' रहीम, तुलसी एवं बिहारी के दोहों के समुचित समन्वय का अनुपम स्वरुप है। दूसरी ओर दयाराम अपने चित्रकाव्य के लिए आचार्य केशवदास की 'कविप्रिया' का आधार ग्रहण करते हैं।

(९) *वीर सतसई :-*

हमारे पूर्वजों ने प्रत्येक मनुष्य के लिए तीन प्रकार के अवश्य - परिशोध्य ऋण माने हैं'।- देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण । देवता अर्थात अद्रश्य शक्ति के द्रारा निर्वाह होता है ; उसके संबंध में चित-शुध्धि , जीव सेवा , पूजा-पाठ आदि के सहारे हमारी कृतज्ञता को प्रकट करना देवऋण का परिशोध है । विवाह तथा गार्हस्थ्यधर्म के पालन के द्रारा पितृऋण का शोध होता है और वेदाध्ययन विध्या-उपार्जन; विद्या-दान आदि ऋषिऋण परिशोध के साधन है । इस विचार के अनुसार जो कोई लोकोतर कवि अपनी कृति के कारण जनता के लिए पथ प्रदर्शक बने है और अपनी सदभावपूर्ण सूक्तियों के कारण उसके हृदयासीन हुए है ; वे सचमुच ऋषिपद-वाच्य हैं । ऐसे कवि के काव्य आदि का विचार करना उनकी कारयित्री प्रतिभा का विश्लेषण करना और उनके विषय में प्रसंग चलाना ऋषिऋण- परिशोध के बराबर ही होता हैं ।

प्रस्तुत ग्रंथ ''वीर सतसई'' इस प्रकार के ऋषि ऋण -परिशोध की आकांक्षा - स्वरुप ही जनता के सामने है और इसमें इस काम के लिए उपयोगी एवं सार्थक प्रयास भी किया गया है। महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण उस विगत प्राय, विलीयमान युग के युगंधर कवि थे जो मध्यकालीन और आधुनिक भारत का संयोगस्थल था और जिसमें प्राचीन भावधारा की- अन्तिम रुपरेखा नजर आती थी । उस समय राजपूती शौर्य और वीरता का चिरस्थायी प्रकाश होता था । चरण की कविता में लातीन भाषा में एक कहावत है , जिसका अर्थ है कि प्राचीन यवनदेश या ग्रीस के वीर राजा आगामेम्नोन के पूर्व बडे-बडे शूरवीर जरुर हुए थे, पर आगामेम्नोन के लिए जैसे महाकवि होमर थे वैसे उनके वीर कार्यो का प्रकाश देने वाले कवि उन्हें नही मिले, फ्लतः उनके नामोनिशान मिट गये। चारण लोग ही क्षत्रिय राजाओं और वीरों को अमरत्व देते थे । सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे महाकवि का जब उदय हुआ, तब राजपूती प्रायः अतीत की वस्तु बन चुकी थी ; केवल उसकी स्मृति ही राजस्थान की उस गिरी हुई हालत के कंटक-वन में एकमात्र कुसुम-स्वरुप विद्यमान थी ।

आधुनिक युग में वियोगी हरि एक भावुक कवि के रुप में विशेष उल्लेखनीय है। उनकी 'वीर सतसई' सतसई परंपरा मे एक विशिष्ट यथालोक कर रही है। इसमें बिहारी-सतसई के श्रृंगारपूर्ण दोहों से भिन्न वीर रस का सजीव अंकन है। वीररस का स्थायी भाव उत्साह माना जाता है । इसे दृष्टि समक्ष रखकर वियोगीजी ने वीरों की अनेक श्रेणियाँ प्रस्तुत की है - दयावीर कर्मवीर , दानवीर आदि । कवि ने विरहिणी ब्रजांगनाओं को विरह वीर के रुप में चित्रित किया है। इस ग्रन्थ को सौ-सौ दोहों के अनुपात से सात विभिन्न शतकों में विभक्त किया गया है । इस ग्रंथ की सबसे बडी विशेषता यह है कि कवि ने मंगलाचरण में भगवान को भी वीर- स्वरुप में अंकित करके उनकी वंदना की है । अन्ततः वीर रस की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। जब वह अपने उत्कृष्ट स्वरुप में प्रकट होता हे तो काम के बाण भी चूर्ण-चूर्ण होजाते हैं, यथा ---

''जहँ नृतति चंडिका ताण्डव नृत्य प्रचण्ड ।
कुसुम तीर तहं काम के होत आप सत खण्ड ॥''(८५)

'वीर सतसई ' में वर्ण्यविषय के रुप में उत्साह हस्त लाधव और त्वरा, युध्ध कौशल, चापल्य, दुर्दमनीयता, आतंक रोब, चित्रण की समग्रता, असाधारण की कार्यव्यापार , लापरवाही , धैर्य आदि का चित्रण मिलता है। जैसे ----

उत्साह :-

''बंब सुणायो बींद नूं पैसंतां घर आय ।
चंचल साम्है चालियो, अंचल बंध छुडाय । (८६)

युध्ध कौशल :-

''पीव परुसै पांत में, भूलै केम दुभांत । (८७)

दुर्दमनीयता :-

'नागण जाया चीटला, सीहण जाया साव ।
राणी जाया नहँ रुके, सो कुलवाट सुभाव ॥' (८८)

धैर्य :-

'तौ भी तीरण बींद तिम, धीरौ धीरौ नाह ।' (८९)

उपर दिये गये दोहों में से उत्साह, युध्ध कौशल और धैर्य से संबंध रखने वाले दोहों के बडे सुंदर चित्र बनाये जा सकते हैं।

इस वर्णन से ज्ञात होता है कि वीर के आंतरिक स्वभाव और उसकी बाह्य कार्य-पटुता दोंनो का चित्रण कवि ने बडी कुशलता पूर्वक किया है । ऐसा कवि जो सब व्यापारों का एक साथ वर्णन करने की शक्ति रखता हो, वही वीर रस और युध्ध का एक साथ सुंदर वर्णन कर सकता है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सूर्यमल्लजी में इस प्रकार का वर्णन करने की उत्कृष्ट योग्यता थी ।केवल नामावली से युध्ध -वर्णन संभव नहीं, युध्ध का वातावरण उपस्थित किया जाना चाहिए । जिन कवियों ने युध्ध का वर्णन करते समय केवल नामों की भरमार की है ; उनके वर्णनों में बडी नीरसता आ गई है । वास्तव में युध्ध के द्रश्यों का चुनाव निरीक्षण की पूर्ण क्षमता, समाहार की पूरी शक्ति, प्रभावोत्पादकता तथा कवि द्रष्टि के प्रसार की व्यापकता के बिना युध्ध का सुंदर वर्णन असंभव है। सुर्यमल्ल ने विस्तृत युध्ध क्षेत्र के अंकन के साथ अपनी वीर सतसई में इन सब गुणों का निर्वाह किया है ।

अतः राजस्थान के वीर साहित्य में महाकवि सूर्यमल्लजी का वीर सतसई का महत्वपूर्ण स्थान है।

(१०) विक्रम-सतसई :-

विक्रम सतसई को रचयिता बुंदेलखंण्ड की चरखारी रियासत के राजा विक्रमसिंह हैं। इनका पूरा नाम विक्रमादित्य था। मतिराम के एक वंशज बिहारीलाल थे। वे इन्ही के आश्रय में रहते थे । 'विक्रम सतसई' का रचनाकाल संवत् १८३९ से १८८६ तक रहा । यही विक्रमसिंह का राजत्व काल भी है । इसी अवधि में 'विक्रम सतसई' का निर्माण हुआ होगा इसमें तो कोई सन्देह नहीं है। हाँ इन दोहों को पढकर 'बिहारी सतसई' की स्मृति अवश्य हो जाती है ।

' विक्रम- सतसई ' श्रृंगार -मुलक हैं । डॉ नगेन्द्र के मतानुसार ---''उन्होंने बिहारी के भावों को अपने शब्दों में रखने का प्रयत्न किया हैं। (९०) इनका श्रृंगार-चित्रण एवं अनुभवों के सौंदर्य की झाँकी

मिलती हैं। महाराजा विक्रमसिंह के दोहों की सरल एवं सहज सुंदर भाषा में प्रकृति की मुस्कान बिखर पडी हैं ---

''कुंज कुंज बिहरति बिपिन गुंजन मधुप मदंध ।
ललित लता लपटि तरुनि प्रफुलित बलिहि सुगन्ध ॥
दिसि बिदिसनि सरितनि सरित अवति अकास अपार ।
बन-उपवन बेलिनि बलिन ललित बसन्त बहार ॥(९१)

उपर्युक्त दोहें में अनुप्रास की छटा गुलाब की पंखुडियों के समान बिखरी पडी हैं। विक्रम सतसई के कुछ दोहों की बिहारी-सतसई के दोहों के साथ तुलना की गई हैं जैसे -----

विक्रम - सतसई :-

''विधु सम सोभा सरि लै, रच्यौ बाल मुख इन्दु ।
दियौ इन्दु में अंक मिस राहू हेतु मसि बिन्दु ॥''(९२)

बिहारी - सतसई :-

''भाल लाल बेंदी मिलन ललन आखत बिराजि ।
इन्दुकला कुंज में बसीं मनौ राहु-भव भाजि ॥(९३)

इस प्रकार विक्रम-सतसई को भी बिहारी-सतसई के समान उच्चकोटि में रख सकते हैं।

(११) बिहारी - सतसई :-

(जन्म सन् १५९५ ई : निधन सन् १६६४ ई)

रीतिकालीन मुक्तधारा के कवि बिहारी का जन्म ग्वालियर के निकट बसुआ - गोविंदपुर नामक गाँव में हुआ था। ये महाराजा जयसिंह के राज्याश्रित कवि थे। इनकी रचनाओं से प्रसन्न होकर राजा जयसिंह ने इन्हें प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी देना स्वीकार किया था। इनकी एकमात्र रचना है '' बिहारी सतसई '' जिसमें ७१९ दोहे संकलित हैं । बिहारी मुख्यतः शृँगारी कवि हैं किन्तु उन्होंने अपने दोहों में भक्ति ; नीति, दर्शन , गणित आदि अनेक विषयों का निरुपण कर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है। अपने दोहों में जीवन

के अनेकविध-अर्थ और भाव भरकर ''गागर में सागर'' भर दिया है । इनके दोहो के बारे में कहा भी गया है कि--''

''सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर,
देखन में छोटे लग, धाव करें गंभीर ।'' (९४)

कवि की अपनी कल्पनाशक्ति और भाषा की समासोक्ति के मिश्रण से इनका एक-एक दोहा रत्न बन पडा है । इस एक ही ग्रन्थ ने बिहारी को हिन्दी भाषा में वह स्थान प्रदान कर दिया है जो अनेक महाकवियों का कई ग्रन्थ बनाने पर प्राप्त हुआ है ।

संसारभर के सभी प्रमुख विषयों पर बिहारी ने अपना काव्य चमत्कार दिखाया है। विरह वर्णन, मनुष्य-प्रकृति, नीति, भक्ति, ज्योतिष, प्रकृति वर्णन आदि विषयों पर ऐसी सुन्दर उक्तियाँ लिखी हैं कि इनकी बहुमुखी प्रतिभा पर आश्चर्य होता है ।

❖ ***विरह वर्णन :-***

हिन्दी ही नहीं प्रत्युत संसार की कोई साहित्यिक भाषा ऐसी नहीं है जिसमें विरह का वर्णन न पाया जाता हो । अनेक कवियों ने 'विरह' का ऐसा मार्मिक वर्णन किया है कि पढते ही बनता है । भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पडकर विरही की क्या दशा होती है , सुख देनेवाली वस्तुओं का वियोगावस्था में उस पर कैसी उल्टा प्रभाव पडता है; अपने समान अन्य विरहियों के साथ वह किस प्रकार सहानुभूति दिखलाने लगता है, आदि अनेक मानसिक स्थितियों का सूक्षम विश्लेषण हिन्दी कविता में पाया जाता है । विरह वर्णन में जहाँ मानसिक स्थिति के सूक्ष्म और स्वाभाविक विश्लेषण देखने को मिलते हैं वहाँ अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों का भी अभाव नहीं है । विरह के इन अत्युक्तिपूर्ण वर्णनो को पढकर हिंदी के अनेक विद्रान कभी कभी नाक-भौं सिकोडने लगते हैं । उन्हें ऐसे वर्णन में कोई आनंद ही नही आता ऐसे लोग सम्भवतः यह बात भूल जाया करते हैं कि 'कवियों की दुनिया ' ही अलग होती है। जिनके पास कवि हृदय है वे ही इस तरह के वर्णन का आनंद उठा सकेंगे । शुष्क ह्दय वालों के लिए तो न इनमें कोई आनंद ही है और न शिक्षा । जिन बातों का वर्णन कवि अपनी कविताओं में किया करता है यदि उनको हम यथार्थता की कसौटी पर कसनें लगे तो

कविता का सारा आनंद ही उड जायेगा। इस तरह के वर्णनों में भी एक विशेषता होती है जो केवल अनुभव से समझने की वस्तु है वादविवा द से नहीं ।

कविवर बिहारी के दोहों में जहाँ अत्युक्तिपूर्ण 'विरह वर्णन' देखने को मिलता है, वहाँ ऐसे स्वाभाविक वर्णन की भी कमी नहीं है जिसमें विरहियों की मानसिक स्थितियों का सच्चा विश्लेषण किया गया है । नीचे बिहारी के दोनों तरह के वर्णनों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं

''इत आवति चलि जात उत, चली छ, सातक हाथ ।
चढी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ ॥ (९५)

विरह की मारे नायिका इतनी हल्की हो गइ हैं कि जब वह साँस लेती है तब छः सात हाथ पीछे, की ओर हट जाती है और जब साँस छोडती है तब वह छ : सात हाथ आगे की और बढ जाती है । अतः बेचारी साँस के उतार चढाव के कारण मानों हिंडाले पर झुला करती हैं।

''आडे दै आले बसन, जाडेहू की रात ।
साहस कै कै नेह बस, सखी सबै ढिंग जात ॥ (९६)

विरह से व्याकुल देखकर सखियाँ प्रेमवश उसके पास जाना चाहती है परन्तु वह विरह ज्वाला में इतनी अधिक जल रही है कि सखिर्यां जाडे की रातों में भी गीले वस्त्रों की ओंट करके हिम्मत बाँधकर उसके पास जाया करती हैं।

''औधाई सीसी सुलखि, बिरह बिथा बिललात ।
बीचहिं सुखि गुलाब गो, छीटौ छुयो न गात ॥'' (९७)

विरह से व्याकुल देखकर सखियों ने उस पर गुलाब जल की सीसी उलट दी परंतु वह विरह के मारे इतनी अधिक जल रही थी कि विरहाग्नि की लपटों से गुलाब जल बीच ही में सूख गया और उसके शरीर पर एक छींटा भी न पडा।

''जिही निदादघ दुपहर रहै, भई भाह की राति ।

तिहिं उसीर की रीवही, खरी आवटी जात ॥ (९८)

जिसे मिलने के समय गर्मी का दोपहर भी माध की रात के समान ठंडा जान पडता था वही अब विरहावस्था में खस की टट्टियों में भी खौली जा रही है ।

अब उनके स्वाभाविक मानसिक विश्लेषणों की बानगी देखिए :---

''ध्यान आनिढिंग, आनपति, मुदित रहति दिन राती ।

पल कंपति पुलकति पलक, पलक पसीजत जात ॥(९९)

विरहारस्था में प्रियतम को ध्यान द्वारा अपने पास लाकर दिनरात प्रसन्न करती है । क्षणभर ही में कांपने लगती हैं, क्षण में पुलकित होने लगती है । और फिर क्षणभर में ही पसीने से भीगी जाती है ।

''जाती भरी बिछुटत धरी, जल सफरी की रीति ।

छिन छिन होति खरी खरी, अरी जरी यह प्रीति ॥(१००)

हे सखी ! अपने प्रियतम से बिछुड जाने के कारण मैं जल की मछली की तरह तडप तडप कर भरी जाती हूँ पर तो भी यह निगोडी प्रीति क्षण-क्षण बढती ही जाती है ।

❖ ***प्रकृति वर्णन :-***

उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत 'प्रकृति वर्णन' को आचायों ने प्रमुख स्थान दिया है । अतः हिन्दी के प्रायः सभी महाकवियों की कविताओं में प्रकृति का वर्णन देखने मिलता है महाकाव्यों में तो प्रकृति वर्णन आवश्यक माना गया है । इस प्रचलित परम्परा के अनुसार कविवर बिहारी ने यत्र तत्र प्रकृति का वर्णन किया है । नीचे इनके प्रकृति वर्णन सम्बन्धी कुछ दोहे दिये गये हैं जिनसे ज्ञात होगा कि वे प्रकृति के पर्यवेक्षण में कितने पटु थे ।

'' कहलाने एकत बसत, अहि-मयुर मृग बाध।

जगत तपोवन सो कियो, दीरध दाध निदाध ॥(१०१)

गरमी की इतनी प्रचण्डता है कि इसने संसार को तपोवन सा बना दिया है। सर्प और मोर, हिरन और बाध पास बैठे हुए हैं परन्तु गरमी के मारे इतने व्याकुल हैं कि उन्हें एक दूसरे की और देखने की सुध ही नहीं है ।

''बैठी रही अति सधन धन, पैठि सदन तन मॉह ।
निरखि दोपहरी जेठ की, छाहौं चाहति छॉह ॥(१०२)

जेठ की दोपहर के समय छाया किसी बडे जंगल में जा छिपी है। गर्मी के मारे व्याकुल होकर बेचारी छाया भी छाया चाहती है ।

''कुढँग कोप तजि रँगरली, करति जग जोय ।
पावस बात न गूढ यह , बूढन हू रँग होय ।(१०३)

संसार की स्त्रियॉ अपने कोप को छोडकर अपनें नायकों के साथ रंगरेलियॉ कर रही है। यह बात कुछ छिपी हुई नहीं है कि वर्षाऋतु में बुड्ढी स्त्रियों (या बीर बहुटियों) पर रंग चढ जाता हैं ।

''ज्यों ज्यों बढति विभावरी, त्यों त्यों बढत अनन्त ।
ओक ओक सब लोग सुख, कोक सोक हेमन्त ॥''(१०४)

हेमन्त ऋतु में जैसे जैसे रात बढती जाती है वैसे वैसे धर धर में सब लोगों का सुख और चकवा का दुख बढता जाता है ।

''अरुन सरोरुह कर चरन, दृग-खंजन, मुखचंद ।
समै आइ सुन्दरि सरद, काहि न करत आनंद ॥''(१०५)

यहॉ कवि ने शरदऋतु का वर्णन एक नायिका के रुप में किया है । यह शरदऋतु-रुपी सुन्दरी समय पर आकर अपने लाल लाल कमल पुष्प रुपी हाथों और चरणों खंजनरुपी चंचल नेत्रों तथा चन्द्रमारुपी मुख द्वारा किसको आनंदित नहीं करती ?

''आवत जात न जानिए, तेजहिं तजि सियरान ।

धरहिं जमाई लौ घट्यों खरो पूस दिन मान ॥(१०६)

पूस मास में दिन का मान उसी तरह घट गया है जिस तरह ससुराल में रहने से दामाद का मान घट जाता है । सूर्य आते जाते जान ही नही पडते और तेज रहित होकर ठंडे पड गये है ।

इस प्रकार बिहारी-सतसई मे यत्र-तत्र प्रकृति का वर्णन मिलता है ।

❖ ***भक्ति :-***

बिहारी ने भक्ति विषयक दोहे भी लिखे हैं परन्तु बहुत कम। अतः विद्वानों का जो यह अनुमान है ठीक ही जान पडता है । फिर भी इस विषय के जितने दोहे इन्होंने लिखे है वे सभी टकसाली हैं। देखिए- निम्नलिखित दोहे में वे भगवान को कैसी चुनौती दे रहे हैं ।

''कौन भाँति रहि है बिरद, अब देखि बी मुरारि ।

बीधे मोसों आनकै, गीधे गीधहिं तारि ॥''(१०७)

देखना है कि अब कैसे तुम्हारी कीर्ति स्थिर रहती है। गिद्द (जटायु) को तारकर तुमने तारना सरल समझ लिया है । अब मुझ जैसे (पापी) असे पाला पडा है । इतना ही नहीं ----

''बंधु भये का दीन के, को तार दो रधुराय ।

तुटे तुटे फिरत हौ, झुठे बिरद बुलाय ॥''(१०८)

तुम कब किस दीन के सहायक हुए हो । तुमने किसे तारा है। झुठी प्रशंसा में ही भुले हुए फिरते हो (मुझे तारों तब जानूं कि तुम सच्चे दीनबन्धु हो)

मोहि तुम्हें बाढी बहस, को जीत जदुराज ।

अपने अपने विरद की, दुहुन निबाहत लाज ॥(१०९)

आज मुजसें और आप में होड लग गई है । मुझे अपने पापी होने की लाज रखनी और आपको तारने की । देखूँ कौन जीतता है ।

''ज्यों हैं हों त्यों हो हुंगो, हौं हरि अपनी चाल ।

हठ न करौ अब कठिन है, मो तारिबो गोपाल ॥''(११०)

हठ न कीजिए मुझे तार देना बहुत कठिन है। मैं अपनी चालों से जैसा हूँ वैसा ही रहूँगा। परन्तु फिर चुनौती देना उचित न समझा और खुशामद से काम निकालने पर विचार किया ---

''कीजै चित सोई तरौ, जिहि पतितन के साथ ।

मेरे गुन औगुन गनन, गनौ न गोपीनाथ ॥''(१११)

हे भगवान ! मेरे गुणों एवं अवगुणों को न गिनो। ऐसी दया करो जिसमें मैं भी अनेक पापियों की तरह तर जाऊँ ।

''मोहि दीजै भोष, ज्यों अनेक पतितन दियो ।

जो बाँध ही तोप, तौ बाँधौ अपने गुनन ॥''(११२)

जैसे अनेक पापियों की मोक्ष दी है वैसे ही मुझे भी दीजिये और जो आपको बाँधकर रखने में ही संतोष होता हो तो मुझे अपने गुण (रस्सी) से बाँध रखिए ।

''सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माला ।

यही बालक मो मन बसौ, सदा बिहारी लाल ॥(११३)

कविवर बिहारी कहते हैं कि मेरे मन में कृष्ण का यह रुप बसा हुआ है जिसमें उनके सिर पर किरीट, कटि प्रदेश में पीताम्बर ; हाथ में मुरली तथा कंठ में माला सुशोभित है।

❖ ***नीति :-***

बिहारी सतसई में नीति विषयक दोहें भी कम मिलते हैं । परन्तु वे सबके सब कवि की पैनी प्रतिभा को सुचित करनेवाले है । इन दोहों को पढने पर इनका नीति विषयक ज्ञान प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता । देखिए इन्होंने नीचे लिखे दोहें में मनुष्यों की प्रकृति का कैसा अच्छा वर्णन किया है ----

''कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीच ।

नल बल जल ऊँचो चढै, तऊदीच को नीच ॥(११४)

करोडो उपाय करने पर भी मनुष्य का स्वभाव नहीं बदलता । नल के जोर से पानी ऊपर चढता है पर फिर नीचे की ओर ही बहने लगता है।

''बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान ।

भलो भलो कहि छोडिए, खोटे ग्रह जपदान ॥''(११५)

संसार का अजीब हाल है। वह जिसमें बुराई देखता है इसी का सम्मान करता है। लोग भले ग्रह को तो भला कहकर छोड देते है और बुरे ग्रह के लिए जप, दान आदि किया करते है ।

जो लोग धन का सदुपयोग करना नहीं जानते उनको इन्होंने कैसी अच्छी सीख दी है।

''भीत न नीत गलीत है जो धरिये धन जोरि ।

खादे खरचे जो बचै, तौ जोरिये करोरि ॥(११६)

हे मित्र मर पचकर धन इकट्ठा करना उचित नहीं यदि खाने और खर्चने के बाद बचे तो करोडो रुपये इकठे करो ।

नीचे लिखे दोहें में कैसा अच्छा उपदेश है।--

''जो चाहौ चटक न घटै, मैलौ होय न मित।

रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित ॥''(११७)

यदि चाहते हो कि चित की चमक मन्द न पडे और मैला न हो तो इस स्नेह (तेल, प्रेम) से चिकनाए हुए चित में रजोगुण (काम, क्रोधादि) की धूल न लगने दो ।

❖ ग्रामीण :-

बिहारी स्वयं ग्राम के रहने वाले थे। अतः उन्हें ग्रामीणों कें स्वभाव, शिक्षा, दीक्षा आदि का अच्छा अनुभव था। यद्यपि ग्रामीणों के सम्बन्ध में इन्होंने जो दोहे लिखे है प्रायः अत्युक्तिपूर्ण है। तथापि उनमें कुछ न कुछ सत्य का अंश अवश्य है।

गाँववाले चाहे फुलेल का आचमन न करते रहे हो परन्तु इत्र फुलेल आदि नागरिक वस्तुओं के सम्बन्ध में उनकी जानकारी बहुत कम हुआ करती है । इसमें कोई संदेह नहीं । इसमें बेचारे गाँववालों का दोष भी नहीं । वे ऐसी परिस्तियों में रहा करते है कि उन्हें संसार की बहुत सी वस्तुओं से अनभिज्ञ ही रहना पडता है । ग्रामीणों से यहाँ उन्हीं पुरुषों से तात्पर्य है जो अपने जीवन भर एक ही ग्राम में रहते हैं और कूप मण्डुल की भाँति संसार में कुछ और भी है इसका ज्ञान जिन्हें नहीं होता। जिन्होंने ग्रामीण होते हुए भी संसार का पर्यटन किया है - दुनिया देखी है - और शिक्षा प्राप्त करके अनुभव लाभ किया है, उनके लिए बिहारी के ये दोहे नहीं है। देखिए गाँववालों के सम्बन्ध में वह क्या कहते है --

''वे न यहाँ नागर बढी, जिन आदर नो आव ।
फूल्यौ अनफूल्यौ, गँवई गाँव गुलाब ॥''(११८)

हे गुलाब ! यहाँ पर वे नगर के रहनेवाले नही है जिनके आदर करने से तेरा सम्मान बढा है। देहात में तो गुलाब का फुलना न फूलने के ही समान है।

''कर लै सूंधि सराहि कै, रहै सबै गहि मौन ।
गंधी गनध गुलाब को, गँवई गाहक कौन ॥''(११९)

हे इत्र वेचनेवाले गन्धी यहाँ गाँव में तुम्हारा कौन गाहक है। ये लोग तो इत्र को हाथ में लेकर सूँधते है । और फिर प्रशंसा करके चूप रह जाते है ।

''करि फूलल कौ आचमन, मीठौ कहत सराहि ।
रे गंधी मति अंध नू, अतर दिखावत काहि ॥''(१२०)

अरे अंक के अंधे इत्र फरोंश ! किसे इत्र दिखला रहा है। ये लोग तो इत्र का आचमन कर उसे मीठा बतलाते और उसकी प्रशंसा करते है ।

❖ ***सौंदर्य, प्रेम एवं अन्योक्ति :-***

बिहारीजी ने सौंदर्य, प्रेम और अन्योक्ति का भी बडी ही सुलभता से वर्णन किया हैं ---

''चमचमात चंचल नयन, बिच घूँधट-पट झीन।
मान हुँ सुर सवित विमल, जल उछरत जुगमीन ॥''(१२१)

इस दोहे में सौंदर्य का वर्णन है। नायक अपने अन्तरंग सखा से नायिका के नेत्रों का वर्णन करते हुए कहता है कि घूँघट के झीने पट में से उसके चंचल नेत्र जब चमकते हैं ; तो लगता है मानों गंगाजी के शुभ, स्वच्छ, जल में दो मछलियाँ किकोल कर रही हो।

अब अन्योक्ति का उदा देखे

''नहिं परागु, नहि मधुर, मधु, नहिं विलासु इहिं काल ।
अली, कली ही सौं बँध्यौं, आगे कौन हवाल ॥''(१२२)

कवि किसी मुग्ध नायिका में आसक्त नायक से कहता है कि न तो अभी इसमें पराग आया है और न मधुरता; न अभी इसके प्रस्फुटित होने का ही क्षण आया है। अरे भ्रमर ! (मित्र) अभी तो यह एक कलिका है और तुम अभी से इसके मोह में अन्धे हो रहे हों जब यह एक फूल के रुप में खिलेगी, तब तुम्हारी कैसी दशा होगी ?

कहा जाता है कि यह दोहा बिहारी ने जयपुर के राजा जयराजसिंह के एक नई-नवेली रानी के प्रति अत्यधिक मोहग्रस्त होने पर, चेतावनी के रुप में लिखा था।

प्रेम का भाव व्यक्त करते हुए दोहे देखिए तो -----

''चाह भरी, अति रस भरी, विरह भरी सब बात।
कोरि सँदेसे दुहुनु के, चले पौरि लौ जात ॥''(१२३)

यहाँ एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि नायक परदेस जानेवाला है; अतः अभिलाषा, प्रेम तथा विरह से ही नायक तथा नायिका की बातें भरी हुई है ! इस प्रकार दोनों के परस्पर करोडो संदेशों का धर मे से पौली (ड्योढी) पहुँचने तक आदान प्रदान हो गया ।

❖ ज्योतिष तथा गणित सम्बन्धी उक्तियाँ :-

बिहारी ने कुछ दोहे गणित और ज्योतिष सम्बन्धी भी लिखे हैं। इस प्रकार के कुछ दोहे उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर रही हुँ-

''कहत सबै, बेंदी दिए , आँक दसगुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिए , अगणित बढत उदोत ॥''(१२४)

कहते हैं कि बिन्दी रख देने से अंक का मूल्य दसगुना हो जाता है । परन्तु स्त्री के मस्तक पर बिन्दी लगाने से उसकी शोभा बहुत अधिक बढ जाती है ।

''कुटिल अकल छुटि परत मुख, बढिगो इतो उदोत ।
बंक बिकारी देत ज्यौं, दाम रुपैया होता ॥''(१२५)

कुटील अलक के गिर जाने से उसके मुख की शोभा इतनी बढ गई है जितनी टेढी पाई के लगा देने से दमडी सूचित करने वाले अंक रुपयों में परिवर्तन हो जाते है ।

''भाल लाल बेंदी ललन, आखत रहे बिराजि
इंदुकला कुज में बसी, मनो राहु-भय भाजि ॥''(१२६)

हे लाल ! उसके माथे पर लगी हुई लाल बिंदी में सफेद चावल इस प्रकार शोभा दे रहे है मानों राह के भय से भाग कर चन्द्रकला मंगल नक्षत्र में जा छिपी हो ।

''मंगल बिंदु सुरंग, मुख ससि केसर आड गुरु ।
इक नारी लहि संग, रसमय किया लोचन जगत ॥''(१२७)

नायिका का मुख चन्द्रमाँ के समान है- माथे पर शेरी का टीका मंगल है और केसर की आड बृहस्पति है इन तीनों ने एक नारी (राशि) से मिलकर संसार के नेत्रों को आनन्दमय कर दिया है ।

''सनि कज्जल चल, भख लगन, उपज्यो सुदिन सनेह ।
क्यौं ने नृपति है भोगवै, लहि सुदेश सब देह ॥''(१२८)

नायिका का काजल शनिश्चर और आँखे मीन लग्न के समान है। शुभ मुहूर्त में इन दोनों (शनि और मंगल) में स्नेह उत्पन्न हुआ है । तब वह स्नेह शरीर रुपी राज्य को पाकर राजा की तरह उसे क्यों न भोगे ? (ज्योतिष के अनुसार शनि यदि मीन लग्न में आ जाय तो राजयोग होता है ।)

❖ रस और अलंकार :-

बिहारी सतसई श्रृंगार रस प्रधान है परन्तु फिर भी इसमें अन्य रसों का अभाव हो यह बात नही है। नीचे दिये हुआ दोहा हास्य रस का उदा . हैं----

''चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर ।
को धरी ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥''(१२९)

भगवान करें राधा कृष्ण की जोडी सदा बनी रहे। दोनों में प्रेम क्यों न हो। दोनो मे कोई भी एक दूसरे से कम नही है। राधा वृषभानु की पुत्री (बैल की बहन) है तो श्री कृष्णजी हलधर (बैल) के भाई हैं।

अतः बिहारी सतसई का यह संक्षिप्त दिग्दर्शन मात्र है । बिहारी पर हिन्दी साहित्य के अनेक प्रतिभाशाली विद्वानोंने विस्तार पूर्वक बहुत कुछ लिखा है, जिन्हे बिहारी की काव्य शक्ति का चमत्कार देखना ही वे उन्हें पढे और देखें कि हिन्दी साहित्य में बिहारी का स्थान कितना ऊँचा हैं ।

(१२) हरिऔध-सतसई :-

हरिऔधजीने अपनी सतसई में भारतभूमि का यशोगान किया है ; यद्यपि कुछ दोहों में ईश्वर का गुणगान और विनय आदि के प्रसंग हैं। इसकी भाषा खडी बोली है। यह खडी बोली हिंदी में रचित प्रथम सतसई है। इसमें कुल मिलाकर ७०० दोहे हैं ; जिन्हें १७ प्रसंगो में विभक्त किया गया है । आधुनिक सतसईयों मे जिन प्रमुख कृतियों का नामोल्लेख किया जा सकता है ; उनमें वियोगी हरिकी 'वीर सतसई'

सेंगर रचित 'किशान सतसई ' राजेन्द्र शर्मा रचित 'ज्ञान सतसई ' उपाध्याय रचित 'व्रज सतसई ' आदि प्रमुख हैं। इस प्रकार हरि औध रचित 'हरि औध सतसई ' हिन्दी सतसई परंपरा में अपना अनुठा स्थान रखती है।

❖ उपसंहार :-

हिन्दी का सतसई साहित्य -श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ठ साहित्य माना जाता है। हिन्दी सतसई साहित्य एक ऐतिहासिक विरासत है। इस ऐतिहासिक विरासत को बनाये रखने हेतु, समृध्ध करने हेतु कई कवियों ने अपनी सतसईयाँ प्रस्तुत की जि वजह परंपरा में एक निर्वाह आया।

उपर्युक्त सतसईयों का अध्ययन करने से पत्ता चलता है कि वाकई इन कवियों दे यशस्वी प्रयास किया है। इन सभी सतसई के विषयवस्तु कथ्य निरुपण एवं अन्य बातों की विशेषताएँ निम्न लिखित हैं।

हिन्दी सतसईयों का नामकरण कर्ता अथवा विषयवस्तु के आधार पर हुआ है - यथा तुलसी सतसई, किशोर सतसई, रहीम सतसई -------आदि ।

(प्राकृत और संस्कृत परम्परा छन्द और व्रज्या के आधार पर नामकरण करती है)

- हिन्दी सतसई एक ही कवि की रचना है । (प्राकृत में अनेक कवियों के छन्द संग्रहित हैं)
- हिन्दी सतसई का मुख्य छन्द दोहा रहा है। सोरठा और अन्य छन्दों का प्रयोग यदा कदा ही हुआ है ।
- ग्रन्थारम्भ और ग्रन्थ समाप्ति की व्यवस्थित परम्परा का पालन हुआ है। परन्तु मंगलाचरण और ग्रन्थ समाप्ति विषयक दोहों के कारण सतसईयों के छन्द संख्या ७०० से ७५० सीमित रही है । संख्या का विभाजन शतकों में नहीं हुआ है ।
- हिन्दी की सतसईयों में काव्य-शिल्प की विशेष समृध्धि मिलती है ।
- हिन्दी की सतसईर्यां व्रजी, राजस्थानी और खडीबोली तीनो में लिखी गई हैं ।
- श्रृगार चित्रण में प्रायः राधा और कृष्ण को नायिका और नायक के रुप में लिया गया है ।

संक्षेप में कहना चाहें तो सतसई की एक दीर्घ परंपरा बहुत पहले शुरु हुई और आज पर्यन्त वह जारी रही है। समय -समय पर परिस्थिति के अनुकूल बदलते हुए समाज की विविध तस्वीरें इन सतसईर्यां में नजर आती है। शृंगार काल में केवल 'नखशिख' का प्राधान्य रहा और रचनाकार ''नारी देह '' से मुक्ति नही पा

सका जो कि शत-प्रतिशत नहीं है। कुछ ऐसे भी रचनाकार उन दिनों भी मौजूद थे जो शृंगार के अतिरिक्त भक्ति, नीति आदि का निरुपण करके 'स्वस्थ द्रष्टि' का परिचय देते थे। आज अर्थात जिस युग में हम जी रहे है उस युग की विकृति-संस्कृति आदि को अपनी रचनाओं में स्थान देकर रचनाकार अपना लेखकीय दायित्व निभा रहे हैं।

****

संदर्भ सूची :-

१. ऋग्वेद पू. ८० , पृ. ६

२. जा रही हो उसके पास सुन्दरि ।जल्दी क्यों ? चाँद बढ रहा है। दूध में जैसे दूध,वैसे चाँदनी में तेरा मुखडा कौन देख सकेगा ।।गाहा सत्तसई

३. शब्द कल्प द्रुम --(१५)

४. अग्नि पुराण --(१८)

५. साहित्य दर्पण छन्द (३०१)

६. ध्वन्यालोक पृ. १५

७. हिन्दी साहित्य का इतिहास २०३५ पृ. १७१

८. साहित्य दर्पण : विश्वनाथ ६। ३०८, ३०९।

९. रीतिकालिन श्रृंगार सतसईयों का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ. पुष्पलता के आधार पर -पृ. १५

१०.रीतिकालिन श्रृंगार सतसईयों का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ. पुष्पलता के आधार पर -पृ. १२

११.रीतिकालिन श्रृंगार सतसईयों का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ. पुष्पलता के आधार पर -पृ. ११

१२.रीतिकालिन श्रृंगार सतसईयों का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ. पुष्पलता के आधार पर - पृ. १३

१३.तुलसी सतसई - तुलसीदास - पृ. १५

१४.तुलसी सतसई - तुलसीदास - सर्ग - ५ पृ. १७

१५.तुलसी सतसई - तुलसीदास - सर्ग - ७ पृ. २२

१६. तुलसी सतसई - तुलसीदास - पृ. ४४

१७.बिहारी सतसई - बिहारी- पृ. २

१८.तुलसी सतसई - तुलसीदास - दोहा-३००- पृ. १००

१९.बिहारी सतसई - बिहारी- दोहे - ३० पृ. १२

२०. तुलसी सतसई - तुलसीदास - दो-२२५- पृ. २०

२१. तुलसी सतसई - तुलसीदास - दोह -८२४- पृ. ५५

२२.बिहारी सतसई - बिहारी- दोहा - ४३१ पृ. २

२३.आचार्य विश्वनाथप्रसाद - पृ. ४४

२४.रहीम सतसई - रहीम - पृ. १०

२५.रहीम सतसई - रहीम - पृ. १२

२६.रहीम सतसई - रहीम - पृ. १५

२७.संपादक - डॉ. सुदर्शन चोपडा रहीम पृ. ३७

२८.बिहारी सतसई - बिहारी- दोहा - ६५ पृ. २०

२९.रहिम सतसई - दोहा - २२ पृ. १५

३०.डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा -रीवियुगीप काव्य पृ. ३०८-९

३१.मतिराम सतसई मतिराम -१६ पृ. ५

३२.मतिराम सतसई मतिराम -५०० पृ. २१८

३३.सतसई सप्तक- वृन्द - पृ. १०

३४.श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा - पृ. ९

३५.श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा - पृ. १०

३६.वृन्द सतसई - पृ. ९

३७.वृन्द सतसई - पृ. १२

३८.वृन्द सतसई - पृ. १५

३९.वृन्द सतसई - पृ. १५

४०.वृन्द सतसई - पृ. १२

४१.वृन्द सतसई - पृ. १३

४२.वृन्द सतसई - पृ. १३

४३.वृन्द सतसई - पृ. १४

४४.रसनिधि सतसई - पृ. ५ - वि. स. १६४२

४५.रसनिधि सतसई - पृ. १६

४६. बिहारी सतसई - बिहारी- दोहा - ६५ - पृ. १५

४७.रसनिधि सतसई 'पृथ्वीराज ' - ४२७ बिहारी सतसई - बिहारी- दोहा - ६५ पृ. १५

४८.राम सतसई -२०- पृ. ५

४९. राम सतसई -२५- पृ. ८

५०. बिहारी सतसई- ३४७

५१.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १२८

५२.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १२९

५३.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १२९

५४.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १२९

५५.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १२९

५६.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३०

५७.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३०

५८.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३०

५९.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३०

६०.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३०

६१.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३०

६२.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३१

६३.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३२

६४.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३३

६५.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३२

६६.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३२

६७.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३२

६८.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३२

६९.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३२

७०.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३३

७१.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३३

७२.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३३

७३.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३३

७४.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३३

७५.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३३

७६.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३४

७७.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३४

७८.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३४

७९.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३४

८०.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३४

८१.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३४

८२.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३४

८३.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३५

८४.बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, प्रकाशन - चित्ता प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - १९८६, पृ. १३६

८५.सतसई सप्तक - पृ. ५

८६.सूर्यमल्ल मिश्रणकृत वीर सतसई - पृ. १०

८७.सूर्यमल्ल मिश्रणकृत वीर सतसई - पृ. १५

८८.सूर्यमल्ल मिश्रणकृत वीर सतसई - पृ. १२

८९.सूर्यमल्ल मिश्रणकृत वीर सतसई - पृ. २०

९०.डॉ. नागेन्द्र (सं.), हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.- ३५५

९१.विक्रम सतसई - पृ. १३५

९२.विक्रम सतसई - पृ. १४०

९३.बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६९०

९४.बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ५

९५.बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ५५

९६.बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ५३

९७.बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ५६

९८.बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ५७

९९.बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ५७

१००. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ५७

१०१. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ४०

१०२. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ४१

१०३. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ४१

१०४. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ४४

१०५. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ४४

१०६. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ४४

१०७. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६०

१०८. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६०

१०९. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६१

११०. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६१

१११. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६२

११२. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६३

११३. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६५

११४. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६५

११५. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६५

११६. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६५

११७. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६५

११८. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६७

११९. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६७

१२०. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६५

१२१. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६८

१२२. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६९

१२३. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६७

१२४. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. ६७

१२५. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. १००

१२६. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. १०१

१२७. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. १०१

१२८. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. १०२

१२९. बिहारी सतसई - बिहारी - पृ. २०

****

अध्याय - ४

किशोर सतसई : कथ्य एवं शिल्प

प्रस्तावना :-

साहित्य एक प्रकार की साधना है । इसी साधना रुपी हवन में कवि अथवा साहित्यकार अनेकों प्रकार की आहुतियाँ देता है। वह यदि महाकाव्य, खंडकाव्य इत्यादि रच सकता है तो मुक्तक काव्य भी लिख सकता है , सतसई मुक्तक काव्य परंपरा का ही एक अविछिन्न अंग है ; (१) सतसई परंपरा का आरंभ वस्तुतः गाथा सप्तशती से होता है । यह स्वन्त प्राकृत के अनेक कवियों की उक्तियों का संग्रह है ।(२) ' सतसई सातसो अथवा अधिक दोहों से युक्त रचना को कहते है । यद्यपि विश्व का आदि काव्य मुक्तक शैली में ही रचा गया किन्तु ७ वीं ८ वीं सदी में तो सतसईयों की बाढ सी आ गई। हिन्दी सतसई परम्परा के प्रेरणा स्त्रोत संस्कृत में लिखे गए मुक्तक ग्रंथ हैं । संस्कृत में शतक, सप्तशती, हजारा आदि लिखने की विशेष परंपरा रही है। जैसे भर्तृहरि का नीतिशतक श्रृंगार शतक आदि। सप्तशती परम्परा में 'दुर्गा सप्तशती' 'गाथा सप्तशती''आर्या आदि विशेषाल्लेखनीय हैं । सप्तशती का शाब्दिक अर्थ है - सात सौ वाली । हिन्दी की प्रारम्भिक सतसईयों में 'तुलसी सतसई' 'रहीम सतसई ' 'वृद सतसई ' आदि मिलती है। रीतिकाल में अनेक सतसईर्यां लिखी गई जिनमें 'बिहारी सतसई', 'मतिराम सतसई', रसनिधि सतसई','राम सतसई', 'चन्दन सतसई',' श्रृंगार सतसई ' आदि प्रमुख हैं । आधुनिक काल में भी अनेक सतसईर्यां लिखी गई हैं । इनमें 'करुण सतसई', 'श्याम सतसई', 'अध्यात्म सतसई' आदि विशेषोल्लेखनीय हैं । इसी श्रृखला में कविवर काबरा की 'किशोर सतसई' एक अल्प चर्चित रचना है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त लिखते है। ''१८ वीं शदी से लेकर आज तक अनेक सतसईर्यां लिखी गई हैं । जिनमें मतिराम, कृपाराम , रसनिधि, विक्रम शाह, रामसिंह, सुर्यमल, हरिऔध, दुलारे लाल, वियोगी हरि की सतसईर्यां और दोहावलिर्यां उल्लेखनीय हैं ।(३)

सतसई मुक्तक शौली में रची गई वह रचना है ; जिसमे एक ही भाव अथवा विषय की प्रवृति प्रमुख होती है । यदि सतसई को 'भावों का मधुकोष' कहें , तो कोई अतिशयोक्ति न होगी सतसई के सभी छंद प्रायः एक ही कवि द्वारा रचे जाते हैं । सतसई का प्रत्येक छंद स्वछन्द पूर्ण और पूर्वापर निरपेक्ष होता है। डॉ.

भोगीलाल सांडेसरा इस संदर्भ में लिखते हैं - ''स्वरचित अथवा संकलित सातसो पद्य संग्रह की परंपरा अति प्राचीन है और श्रृगारी मुक्तक संग्रह गाथा सप्तशती (गाहा सतसई) उसका प्राचीन उदाहरण हैं ।''(४)

आधुनिक काल में भी सतसइयों का प्रणयन निरंतर जारी है। इन सतसईकारों में अग्रणीय नाम है - **किशोर काबरा** इन्होंने 'बिहारी सतसई' के अनुकरण पर ही 'किशोर सतसई' की रचना की। इनकी यह सतसई सात भागो में विभक्त है। कवि ने इन्हे 'सोपान' कहा है। ये सात सोपान 'प्रकृति' , 'पुरूष' 'पर्यालोचन' , 'परिणति' ,'पर्यवेक्षण' और 'परिलेखन' हैं। इन सोपानों को स्वयं कवि नें ईश्वर तक जाने की सात सीढियाँ भी माना है। डॉ. ओमानंद सरस्वती का इस सतसई के संदर्भ में लिखते हैं --'' किशोर सतसई का अवलोकन करता हुँ तो आश्चर्यचकित रह जाता हुँ। प्रबन्ध काव्यों के प्रणेता किशोर काबरा मुक्तक, कविता में भी उतना ही प्रभावपूर्ण, बल्कि अधिक प्रभावपूर्ण लगता है ।''(५) किशोर काबरा रचित ७०७ दोहों की इस रचना में सतरंगी गुलदस्ते की तरह विविध रंग मिलते हैं । इस सतसई में कवि नें कबीर की तरह ही जीवन और जगत के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत किया है । किशोर सतसई में निरुपित संवेदना के विविध आयामों की प्रस्तुति इस प्रकार है ।

'किशोर- सतसई' में निरुपित कथ्य के विविध आयाम :-

'किशोर-सतसई' के माध्यम से कवि ने कथ्य के विविध आयामों का प्रस्तुतीकरण किया है। कथ्य का लगभग हर पक्ष किशोर काबराजी ने इस सतसई में चित्रित किया है। उन्होंने व्यक्ति, समाज, संस्कृति, राजनीति और आधुनिकता सम्बन्धी संवेदनाओं का यथार्थ के विस्तृत धरातल पर अंकन किया है । किशोर सतसई में निरुपित संवेदना के विविध आयामों की प्रस्तुति इस प्रकार है --

(१.१) व्यक्ति विषयक संवेदना :-

कवि किशोर काबरा ने किशोर सतसई के दुसरे सोपान 'पुरुष' शीर्षक के अन्तर्गत व्यक्ति विषयक संवेदना का विस्तार से अंकन किया है। इस सोपान के माध्यम से कविने पुरुष के बाह्य एवं आन्तरिक स्वरुप को सुक्ष्मता से उद्‌धाटित किया है। कवि ने पुरुषत्व की परिभाषा देने के साथ-साथ सच्चे पुरुष की पहचान भी बतलाई है। कवि कहता है की खाना; सोना; डरना और मैथुन करना तो पशु भी जानते है किन्तु मनुष्य

कहलाने की अधिकारी वही है जो इन पाश्विक वृतियों से ऊपर है अर्थात् जो इन सारी पाश्विक वृतियों से ऊ पर है अर्थात् जो इन स्वाभाविक क्रियाओं से इतर हैं, उसी में पुरुषत्व की भावना है --

भोजन, निद्रा,काम; भय पशुता के है वंश ।
इनसे ऊपर जो उठा, वही पुरुष का अंश ॥ (६)

कवि की विशेषता यह है कि उसने जीवन से सम्बन्ध सूक्ष्म प्रश्नों को उठाने के साथ-साथ उनका उतर भी स्वयं दिया है। यहाँ कवि का दार्शनिक रुप उजागर होता है। ऐसा लगता है मानो कवि को जीवन-दर्शन का सारा ज्ञान है। वह कवि होने के साथ-साथ अध्यात्म का ज्ञाता भी है। जीवन क्या है ? इस प्रश्न का कवि ने बडा सटीक और सार्थक उतर दिया है । कवि कहता है कि जीवन तो जन्म और मृत्यु को सेतु रुप में बाँध रखती है। यह सारी सृष्टि किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा चलायमान है। मनुष्य तो एक अभिनेता की तरह है। अपनी-अपनी भुमिका अदा कर सभी लौटे जाते है। जीवन रुपी इस रंग मंच पर कोई जीवन्त नही रहता । भुमिका खत्म कर सभी अज्ञातवास की और प्रस्थान कर जाते हैं। 'मनुष्य' को अभिनेता और 'जीवन' को रंगमंच मानना इस बात में शेक्सपियर का प्रभाव कवि पर दिखाई देता है। कवि का कथन है कि मानव तो अभिनेता मात्र है जो जिंदगी के रंगमंच पर भूमिका अदा कर रहा है--

''रंगमंच है जिंदगी, हम अभिनेता मात्र,
करने सबको है यहाँ, अपने अपने पात्र''(७)

कवि ने व्यक्ति विषयक संवेदना के अन्तर्गत जीवन की परिभाषा को बार-बार प्रस्तुत किया है । कवि कहता है कि जीवन और मृत्यु तो शाश्वत सत्य है। जीवन तो जन्म और मृत्यु के बीच अल्पविराम की तरह है। जिस दिन अल्पविराम हट गया, मृत्यु ने जीवन पर विजय प्राप्त कर ली। पुरा जीवन जो कभी बगीचे की तरह था, पलभर में रेगिस्तान हो जाता है--

किससे पूछोगे यहाँ-जीवन किसका नाम ?
जन्म-मृत्यु के बीच में केवल अल्पविराम ।
जलधारा जब तक रही जीवन था उद्यान,
वह सूखी तो हो गया पूरा रेगिस्तान । (८)

किशोरजी कहते हैं कि आदमी दिन-रात मेहनत करता है किन्तु वह अपेक्षित फल प्राप्त नही कर पाता। इसमें सारा दोष उसकी उच्चाकांक्षाओ का है। वह जीवन भर संघर्षशील रहता है किन्तु उसे आराम तभी मिलता है जब वह मौत की गोद में लेटता है। इसी मानवीय संवेदना का अंकन कवि ने यूँ किया है--

'खूब किया श्रम रात-दिन, मिला न कुछ फल हाय !
मेरी किस्मत भैंस-सी ,खडी-खडी पगुराय ।
चलते चलते थक गया, मिला नहीं विश्राम ।
थकते थकते चल पडा, तब आया आराम ॥ (९)

जीवन के सम्बन्ध में कवि का विचार है कि 'जीवन' तो सीधी सडक के समान है। इस पर चाहो तो तुम घोडे दौडा सकते हो किन्तु वह वास्तविक सुख नहीं है। वास्तविक सुख तो वही होता है जिसमें कुछ दुःखों का मिश्रण हो। कवि का तात्पर्य यही है कि दुःख से ही सुख की पहचान हुआ करती है--

''जीवन सीधी सडक है, तो करलो घुड दौड ।
चलने का सुख तो वहीं जहाँ मोड-ही-मोड ।(१०)

व्यक्ति का बचपन तो भूख तंत्र के समान होता है। जिसमें हमेशा कुछ-न-कुछ जानने, पाने की इच्छा रहती है। यौवन सूखे यंत्र के समान है जो कभी बगीचे की तरह खिलता है तो कभी एकदम सबकुछ लुटा बैठता है। बुढापा तो विवषता का दूसरा नाम है इसीलिए आज बुढापा वशीकरण का मंत्र मात्र बनकर रह गया है। कवि कहता है कि वशीकरण अर्थात् जिस व्यक्ति के पास पैसा, जमीन,जायदाद आदि है । वही व्यक्ति इस वशीकरण मंत्र को साध सकता है --

'बचपन भूखे तंत्र-सा, यौवन सूखा यंत्र ।
आज बुढापा हो गया, वशीकरण का मंत्र ॥ (११)

वृध्धावस्था आरंभ होते ही मनुष्य दिन-प्रतिदिन मरता रहता है। इसके अपने धीरे-धीरे एक-एक कर टूटने लगते हैं। जो कभी अपने थे वही सपने मात्र बनकर रह जाते हैं। इसी को लक्ष्य कर कवि किशोर काबरा लिखते हैं --

''वृध्धावस्था ने दिए, हमको कितने कष्ट ?

अपने सब सपने हुए, सपने हुए विनष्ट ॥(१२)

संसार तो जितने भी सुख परमात्मा ने प्रदान किए हैं । उनका एकमात्र उपभोक्ता मनुष्य ही है । वही इन सारी सुख सुविधाओं का भोग कर सकता है अथवा करता है। विधि का विधान भी यही कहता है कि ईश्वर की श्रेष्ठ रचना 'मनुष्य' ही है । इसीलिए किशोर काबरा भी मनुष्य को ईश्वर से बढकर मानते है। वे कहते हैं कि मनुष्य तो उस विश्व निर्माता से बहुत बडा है --

अखिल विश्व के राज्य का, जिसके लिए विधान ।

ईश्वर से कितना बडा धरती का इंसान ॥(१३)

कवि कहता है कि व्यक्ति का सच्चा सुख उसकी पत्नि और बच्चे होते हैं। यदि मित्र अच्छा मिल जाए तो सोने पर सुहागा हो जाता है। यदि दुर्भाग्यवश व्यक्ति को तीनों चीजें प्रेम रहित मिल जाए तो उसका तो जीवन नरकीय हो जाता है। कहने का अभिप्राय यही है कि उसका जीवन रेगिस्तान के समान होजाता है। रेगिस्तान रुपी जीवन में सुख और शान्ति के वृक्ष नहीं उगा सकते ---

'प्रेम रहित पत्नि मिले, स्नेह रहित संतान।

मान रहित यदि मित्र हो, जीवन रेगिस्तान ॥(१४)

कवि ने व्यक्ति के अन्तर्मन की भावनाओं का सुक्ष्मता सी अंकन किया है । कवि कहता है कि हर प्राणी यह सोचता है कि वह चिन्ता से मुक्त रहे। जबकि सच्चाई यही है कि रात को व्यक्ति नींद से मुक्त रहता है और दिन में वह चिन्ता से युक्त रहता है । कवि ने मनुष्य की इसी विडम्बना का अंकन करते हुए लिखा है ---

''रात नींद से मुक्त हो, दिन चिंता से युक्त।

जीवन के दरबार में, ऐसा नर अभियुक्त ॥(१५)

ईश्वर प्रदत इस जीवन को मनुष्य नष्ट करने पर तुला है। सर्वश्रेष्ठ मानव जीवन को आज चार निकृष्ट वस्तुओं ने जकड रखा है। कवि का कथन है ---

'आज आदमी को किया इन चारों ने अंध ।
पैसा हिंसा मूढता और यौन सम्बन्ध ॥(१६)

किशोरजी कहते हैं कि मानव जीवन आज पुरी तरह भ्रष्ट हो चुका है। इसे किसी भी प्रकार के यत्न से नहीं स्वच्छ किया जा सकता। व्यक्ति चाहे इस मल को सौ बार भी धोने का प्रयत्न करे किन्तु हर बार असफलता ही हाथ लगेगी --

''मलमल को धोता अरे, तू मल-मल बेकार ।
मल-ही-मल इसमें भरा, क्या मलता सौ बार ॥''(१७)

कवि कहता है कि मनुष्य की सांसे तो तराजू है जहाँ अनमोल वस्तुएँ तुलती हैं। अतएव हे मनुष्य तू अपने मन को मन रुपी बट्टों से तोलने का प्रयास सीख ले ----

सांस की तराजू की तरह, जहाँ तुले अनमोल।
ठाठ-बार जब व्यर्थ हों, मन से मन का तोल ॥(१८)

मनुष्य की विडम्बना यही है कि वह जीवनपर्यतन्त यशलिप्सा के लिए भागदौड करता है। स्वयं को सर्वशक्तिमान बनाने के लिए भागता रहता है। उसका जीवन इन्हीं उच्चाकांक्षाओं में उलझकर रह जाता है । जब उसकी ये महत्वाकांक्षाएँ फलीभूत हो जाती हैं तो वह जल्द ही इनसे ऊब भी जाता है । फिर इनसे छुटकारा पाने के लिए बिना पानी की मछली की तरह तडफता है । व्यक्ति की इसी दुरुहावस्था का अंकन कवि ने इस प्रकार किया है ।---

कल तक दौडा, ताकि मैं खूब बटोरुँ शक्ति ।
आज दौडता, शक्ति से कबसे पाऊँ मुहति ?(१९)

कहने का तात्पर्य यही है कि मानव तमाम उम्र इसी भागदौड में बीता देता है। उसका जीवन पाने और छोडने के झूले में ही झूलता रहता है। कवि भी मात्र इच्छाएँ पूरी करना चाहता है ताकि उसे आत्म संतुष्टि मिले ---

दो इच्छाएँ शेष अब, बाकी सबके प्राण,
मेरे शब्द चिरायु हों, मुझे मिले निर्वाण ॥(२०)

(१.२) समाज विषयक संवेदना :-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके व्यक्तित्व का विकास भी समाज में रहकर ही हो सकता है। उसके व्यक्तित्व निर्माण में समसामयिक परिस्थितियों की भूमिका सहज होती है। इसी तरह कवि भी अपनी साहित्यिक मान्यताओं का निर्माण सामाजिक ढांचे कें आधार पर करता है। अतएव कवि के व्यक्तित्व का विकास भी समाज पर निर्भर रहता है। कवि जो कुछ देखता और अनुभव करता है ; उन सभी का प्रभाव उस पर पडना स्वाभाविक है। समाज की अवधारणा के संदर्भ में डॉ. शशिभूषण सिंहल के विचार उल्लेखनीय हैं - ''समाज सोदेश्य व्यक्तियों का गतिशील गठन है। समाज अपने सदस्यों को बाह्य धातक तत्वों द्वारा नष्ट होने से बचाता है; रक्षा कर उसके व्यक्तित्व का विकास करता है और कुछ जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा कर उन्हें पाने के लिए प्रयत्नशील रहता हैं (२१)

'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' में भी कुछ इसी तरह से समाज की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है - ''वह संस्था जो बहुत से लोगों ने एक साथ मिलकर किसी विशिष्ट उदेश्य की पूर्ति के लिए स्थापित की है वही समाज है; यथा- संगीन समाज; साहित्य समाज।(२२) इसी उदेश्य का सफल निरुपण किशोर काबराजी ने अपनी 'किशोर सतसई में किया है। उन्होंने समाज विषयक संवेदना के विविध आयामों द्वारा समाज का स्वरुप स्पष्ट किया है। स्वामी (डॉ.) ओम, आनंद सरस्वतीजी 'किशोर सतसई' के बारेमें लिखते हैं - ''आज इसकी सतसई पर दो शब्द लिख रहा हुँ तो लेखनी हर्ष से काँप-काँप जाती है। इस कवि में इतनी संभावनाएँ हैं- यह किसी को भी नहीं पता था। क्षणिका से खंडकाव्य और मुक्तक से महाकाव्य तक की यात्रा करने वाला यह कवि ७०७ दोहों में जीवन एवं जगत के सभी सत्यों और संभावनाओं की परिक्रमा करता है।''(२३)

कवि किशोरजी में समाज विषयक संवेदना के अन्तर्गत समाज के लगभग प्रत्येक पहलु को अपने दोहों का आधार बनाया है। कवि कहता है कि आज समाज में साम्प्रदायिक की आग फैलती ही जा रही है। कोई व्यक्ति अथवा समाज मस्जिद बनाने में लगा है तो कोई उसे मैदान में परिवर्तित करने में जूटा है। समाज की इसी विडम्बना को कवि ने इस तरह प्रस्तुत किया है।---

''मंदिर से मस्जिद बनी, मस्जिद से मैदान।
पत्थर में ही खो गया, मेरा हिन्दुस्तान ॥''(२४)

आज समाज में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। चारों तरफ यही नजर आता है कि पापी लोग इसी भ्रष्टाचार के कारण तरक्की कर रहे है।

''इस अथाह संसार में रिश्वत ही है सार।
डुब गए धर्मात्मा, पापी पर्हुचे पार ॥'' (२५)

समाज का ढाँचा इतना बदल चुका है कि अपराधी लोग साफ बच निकलते हैं । सामाजिक अव्यवस्था के चलते सामान्य लोग इस सबका दोष किस्मत को ही देते हैं।---

'तुम करते अपराध सब, हम पाते हैं जेल।
वे फाँसी झूलते, क्या किस्मत केखेल ॥' (२६)

इसी असामाजिक के चलते लोगों नें धर्म को अपना अधिकार बना लिया है। हिन्दु हो या मुसलमान सभी ने धर्म को भ्रष्ट कर दिया है।---

'हिन्दु मुस्लिम सिक्ख हो या ईसाई, जैन ।
सब ने मिलकर धर्म का छीन लिया है चैन ॥'(२७)

समाज में व्यभिचार व्याप्त है सरकार अपने सभी कर्तव्य तो भूल चूकी है। किन्तु उसे अपने अधिकार अच्छी तरह याद हैं। कवि का शब्दों में--

'बिजली गूल, सूनी सडके कदम कदम पर फ्री सैक्स।

नागरिकों को चाहिए भरें समय पर टैक्स ॥ (२८)

साम्प्रदायिकता की इसी ज्वाला ने भारत के भविष्य पर भी प्रश्नचिहन लगा दिये है। भारत वर्ष न जाने कब तक इस धर्मान्धता के नाम पर टूटता रहेगा ? इसी संवेदना का मार्मिक अंकन करते हुए कवि कहता है---

'मैं हिन्दु तू मुसलर्मा वह ईसा का भक्त ।

सम्प्रदाय के नाम पर भारत हुआ विभक्त।' (२९)

आज समाज में ईश्वर को रहने का कहि भी स्थान नही हैं। कवि कहता है कि मंदिर आज नरक बन चुका हैं और मस्जिदें शस्त्रों को रखने की सुरक्षित जगह । ऐसे में ईश्वर इन स्थानों पर कैसे रह सकता हैं ? कवि कहता है कि ईश्वर ने अपने रहने के लिए कैसी जगह चुनी है ?

''मंदिर नरकागार हैं, मस्जिद शस्त्रागार ।

ईश्वर तूने जगह भी कैसी ढूँढी यार ॥''(३०)

आज के समय में उन्मुक्त यौन सम्बन्ध और पैसा ही प्रमुख है। लोग इन्हें २१वीं सदी का उपहार समझकर उपभोग कर रहे हैं । कवि कहता है कि ये चीजें वरदान के रुप में भयानक श्राप हैं ---

''सदी बीसवीं जा रही, देकर दो वरदान।

यौन जनित उतेजना, अर्थ जनित उत्थान ॥(३१)

जहाँ जैसा समाज होगा तो वहाँ की नगरपालिका भी यदि वैसी ही हो जाए तो कोई आश्चर्य नहीं कवि कहता हैं कि इन्हीं सब अव्यवस्थाओं के चलते नगरपालिका, नरकपालिका में परिवर्तित हो चली है ---

''कीचड, मच्छर, गंदगी, अंधकार का राज ।

नगर पालिका हो गई, नरक पालिका आज ॥(३२)

वस्तुतः समाज का इतना यथार्थ अंकन करके कवि किशोर काबरा ने अपनी लेखनी को ही सिद्ध किया है। वे जो कुछ अपने चारों ओर देख रहे हैं, उन्ही का जीवन्त चित्रण उन्हों ने इन दोहों में किया है। आज नगर पालिका की तरह न्याय पालिका भी भ्रष्ट है। कवि कहता है कि न्याय मिलना तो यह दुर्लभ हो चला है ---

न्याय यहाँ दुर्लभ हुआ, गुंडे फिरें अबाध ।
चोर चोर भाई लगें, नियम और अपराध ॥(३३)

समाज में धर्म के प्रति कट्टरता और अन्य धर्मो के प्रति संकीर्ण सोच बढती जा रही है। इसी संदर्भ में कवि कहता है कि आज इबादत; पूजा सब बेकार हैं क्यों कि लोग तो व्यापारियों की तरह धर्म को बेच रहे हैं ---

''सभी इबादत व्यर्थ हैं, सब पूजा बेकार ।
हम मजहब का कर रहे, सरेआम व्यापार ॥''(३४)

कभी लोग आनेवाली पीढियों के हित की सोचा करते थे। किन्तु, आज लोग आनेवाली पीढियों को तबाह करने पर तुले हैं। इस संदर्भ में कवि का कथन हैं ---

''खूब आज करलो भले, तुम सफेद कोस्याह ।
होंगी अगली पीढिर्यां; अपने आप तबाह ॥''(३५)

लोगों में 'राम' और 'विश्राम' के प्रति कोई रुचि नहीं है। वे तो काम और अर्थ में लीन रहने में ही अपनी उन्नती समझते हैं। कवि ने इसी सामाजिक यथार्थ को अपने शब्दों के माध्यम से स्पष्ट किया है----

''एक भरोसा काम है, एक भरोसा दाम ।
राम और विश्राम का कलियुग में क्या काम ?(३६)

इसी काम वासना ने मठों, आश्रमों आदि में भी स्थायी रुप से डेरा डाल लिया है जिसके चलते धर्म बदनाम हो चूका है ----

''मठ-आश्रम में रह गए लोभ, क्रोध औ' काम ।

दान-दक्षिणा में पला धर्म हुआ बदनाम ॥ ''(३७)

कवि ने समाज विषयक संवेदना के अन्तर्गत सामाजिक समस्याओं के मूल कारण भी बताये हैं---

देखा-देखी, दीनता, लोभ-मोह, कुविचार ।

इन पाँचों के खेत में उगता भ्रष्टाचार ॥ (३८)

संन्यास तो आज केवल नाम तक सीमित होकर रह गया है। लोग 'काम' में लिप्त रहते हैं तथा राम को व्यापार के नाम पर बेचते है।

कवि कहता है कि यह सब लोगों की संकीर्णता का नतीजा है। गीता, बाईबल; गुरु ग्रंथ साहिब, कुरान आदि के आदमी मात्र नाम ही पढ आया है ।

''कलियुग में संन्यास है; बस कहने का नाम।

मन वाणी औ' कर्म में काम राम औ' दाम ॥

गीता बाईबल ग्रंथ जी त्रिपिटक और कुरान ।

इन ग्रंथों के शब्द ही पढ पाया इन्सान ॥''(३९)

समाज में व्यभिचार अपनी सारी सीमाएँ लाँध चुका है। रति अर्थात् सैक्स से सम्बन्धित सभी बातें पहले रहस्यमयी होती थी। आज फिल्मों रति के उतेजक और नग्न दुश्य सरेआम दिखाये जा रहे है । समाज में अराजकता बढती जा रही है---

''पहले परदे में छिपे रति के सभी रहस्य।

अब परदे पर देख लो कोक शास्त्र के दुश्य॥'' (४०)

कवि तो यह सोचता है कि सभी के अपने-अपने धर है किन्तु हकीकत कुछ ओर है। धर तो मात्र दवारों में बँटा है---

''मैंने तो सोचा, यहाँ हो सब के धर-बार ।

लेकिन धर के नाम पर खडी हुई दीवार ॥''(४१)

आज समाज के प्रत्येक धर की असलियत यही है। आज हम अपने बच्चों का भविष्य भी स्वयं ही उजाडने लगे हैं। इस सामाजिक यथार्थ को कवि इस तरह व्यक्त करता है---

''हम बच्चों को किस तरह करते है तैयार।
उन्हें खिलौनों की जगह थमा रहे हथियार ॥''(४२)

समाज के प्रति नारी के द्रष्टिकोण को कवि इस तरह प्रस्तुत करता है ---

'औरत जो बेदर्द हो, करे दर्द की बात ।
औरत जो बेपर्द हो, करे मर्द की बात ॥' (४३)

आज के सामाजिक यथार्थ को कवि ने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है----

'सुख गई संवेदना, प्रथा रह गई शेष।
व्यथा वृथा अब हो गई, कथा रह गई शेष ॥' (४४)

लोगों में मानवीयता; संवेदना आदि मूल्य खत्म होते जा रहे हैं। दुनिया के इसी दस्तूर का उल्लेख कवि यूँ करता है----

''आज करे सत्कार जो कल देती दुत्कार ।
दुनिया के दस्तुर को अब तो समझ गँवार ॥(४५)

समाज में तभी शान्ति कायम रह सकती है जब लोग आपस में मिल जूलकर रहें । उनके मन में दीवारें न हों-

''अलग रहो लेकिन रहो मिल जुलकर प्रत्येक।
धर में दीवारें रहें, मन में रहें न एक ॥''(४६)

(१.३) संस्कृति विषयक संवेदना :-

संस्कृति, सभ्यता आदि चीजों से ही मनुष्य संस्कारित एवं सभ्य बनता है। जो संस्कार पैदा करे, वही संस्कृति है। मानव जीवन की सर्वोतम विशेषता संस्कृति है। इसी संदर्भ में डॉ. रामानंद तिवारी लिखते हैं

- ''संस्कृति ही मनुष्य को अन्य प्राणी वर्ग से अलगाती है। मानव जीवन की भाँति संस्कृति भी देश कालानुसार परिवर्तित होती रहती है। मानव एक सामाजिक प्राणी है और जब मानव समुह को एक अलग व्यवस्था के अनुसार साथ-साथ रहने लग जाता है तो वह समाज कहलाता है और समाज का आधार मानव है और मानव का विकास संस्कृति है ।''(४७) कहने का तात्पर्य यही है कि संस्कृति जीवन जीने की पद्धति का नाम है। किशोर-काबरा रचित 'किशोर-सतसई' में संस्कृति विषयक संवेदना केअंतर्गत कवि ने केवल मानवीय बल्कि प्रकृति की संस्कृति भी वर्णन किया है। कवि ने बडी सुक्ष्मता से संस्कृति के हर बदले पहलु का चित्रण किया है कवि ने अपनी सतसई के प्रथम दोहे में ही प्रकृति की संस्कृति का उल्लेख किया है। कवि कहता है कि सभी चीजें परिवर्तन हो जाया करती हैं इस परिवर्तन में प्रकृति की भूमिका अहम होती है। आश्चर्य है कि प्रकृति स्वयं नहीं बदलती।--

''सबको परिवर्तित करे, नित्य और अविराम ।
किन्तु स्वयं बदले नहीं, प्रकृति तुझे प्रणाम ॥''(४८)

इसी प्रकार प्रकृति के दो प्रमुख उपादानों अर्थात् बिजली और बादल की संस्कृति का उल्लेख करते हुए कवि कहता है ----

''बादल,बिजली,इन्द्रधनुष; झरमर, मूसलधार।
पल-पल वर्षा कर रही कई-कई श्रृंगार ॥
बादल-बिजली साथ, पर अलग-अलग तासीर।
एक धरा को चीर दे, एक धरा दे चीर ॥(४९)

कवि ने बिजली, पाला और धूप की संस्कृति का उल्लेख भी किया है। वह कहता है कि तीनों की संस्कृति गिरने का योग बनाती है।

''बिजली, पाला,धूप में साझा क्रिया-प्रयोग ।
तीनों के ही भाग्य में गिरने के हैं योग ॥''(५०)

प्रकृति के साथ-साथ मानवीय संस्कृति के विविध आयामों का चित्रण भी कवि ने किया है। कवि ने मानव जीवन- के चार पुरुषार्थो की बदली संस्कृति का उल्लेख करते हुए कहा है-----

''धर्म हुआ अद्धगिं औ ' अर्थ हुआ सवाँग ।
काम यहाँ जननांग है, मोक्ष यहाँ विकलांग ॥''(५१)

भारतीय संस्कृति की पहचान ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ आदि रीतियों का भी कवि ने वर्णन किया है ----

''ब्रह्मचर्य की नींव पर है, गृहस्थ का वास।
वानप्रस्थ उसका शिखर, स्वर्ण-कलस संन्यास॥''(५२)

विवाह की संस्कृति को यूँ प्रस्तुत करता है -----

''भोग-वासना शमित हो, यही लग्न का अर्थ ।
शेष रह गई वासना, तो विवाह है व्यर्थ ॥''(५३)

महानगरीय संस्कृति के माध्यम से कवि ने इसके दुष्परिणामों को चित्रित किया है । आज महानगरीय संस्कृति पुरी तरह भ्रष्ट हो चुकी है। इसका सारा भ्रष्ट मल पवित्र नदियों को भी अपवित्र कर रहा है। लोग तप,जप,ध्यान; स्नानादि कैसे करें ? कवि का कथन है कि ---

''कहाँ करे जल-पान हम, स्नान-ध्यान-जप-जाप ?
सब नदियों में बह रहे, महासागर के पाप ॥''(५४)

भारत की आधुनिक संस्कृति का चित्रण कवि नें इस तरह किया है ।------

''चादर से बाहर रखो पाँव, हमारी सीख।
बडा दयामय देश है, खूब मिलेगी भीख॥''(५५)

कवि कहता है कि यदि ऐसा ही तो भारत का स्वर्णिम इतिहास भी धूमिल हो जायेगा। भारत की लक्ष्यरुपी कार कभी भी अपनी मंजिल तक नहीं पहुँचेगी----

''भीड बहुत, चालक नया और सडक बीमार ।
कब पहुँचेगी लक्ष्य पर इस भारत की कार ॥''(५६)

आज लोग अपनी मूल संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। गीता के उपदेश तक वे भूल चुके हैं। कवि कहता है यदि सबकुछ चलता रहा तो भारत का भविष्य अंधकार में डूबता दिखाई देगा ---

''गीता का उपदेश का है कैसा अंजाम ?
सभी काम में व्यस्त हैं, भूल चुके परिणाम ॥
कर्म सभी करते मगर भूल चुके कर्तव्य ।
अंधकारमय दिख रहा भारत का भवितव्य ॥''(५७)

शहरी और ग्रामीण संस्कृतियों का वर्णन भी कवि किशोर ने किया है। आज दोनों की ही संस्कृतियों को धुएं और खाद रुपी दीमक चाट रही हैं---

''धुअँ उगलती चिमनियाँ, कुआँ निगलते खेत।
शहर-गाँव दोनों हुए, भूखे-नंगे प्रेत ॥(५८)

कवि कहता है कि आज पाश्चात्य संस्कृति लोगों के रुदयों पर इस कदर प्रभाव डाल चूकी है कि भारतीय संस्कृति ओर पाश्चात्य संस्कृति दोनों एक दूसरे में मिल गई हैं और मिश्रित संस्कृति में जीना आज के मनुष्य की पहचान बन चुकी है -मिश्रित संस्कृति के बिना अब नहीं राह अब शेष तौर तरीके देश के किन्तु विदेशी परिवेश। (५९) कलियुग रुपी दूषित संस्कृति ने रामायण कालिन प्रसंगों तक को बदल डाला है इसी को लक्ष्य कर कवि लिखता है----

''कलियुग में श्रीराम का कैसे हो परित्राण ?
स्पर्श अहल्या का मिला, राम हुए पाषाण ॥(६०)

लोगों ने धन, जमीन, जायदाद आदि को ही मूल संस्कृति मान लिया है, वे भारतिय संस्कृति के मूल प्रतिक मान लिया है। वे भारतिय संस्कृति के प्रतिक गीता,कुरान आदि को बाहर आले में रखते हैं जबकि दौलत आदि को तालों में बंध करके रखते है।

''बाहर आले में रखे गीता और कुरान।
भीतर ताले में रखे दौलत और दुकान ॥(६१)

कृषक संस्कृति के नष्ट होने का मूल कारण बताते हुए कवि कहता है---

''खाद-दवा-जल खूब दे कृषि का किया विकास।
अब धरती बंजर हुई, नहीं उगेगी धांस ॥(६२)

किशोरजी कहते है कि खाद और दवाओं के अंधानुकरण ने ऊपजाऊ भूमि को बंजर बना डाला है। इसी तरह शहरी संस्कृति के तेजी से पनपन पर कवि कह उठता है। ----

''पेड करे जंगल जले, गाँव हुए बरबाद ।
शहरों के बीच सिमेंट के जंगल है आबाद ॥''(६३)

नदियों की संस्कृति का भी बडा सटीक वर्णन कवि ने किया है। नदियों की बदली संस्कृति पर कवि कहता है ---

''नदियाँ पानी पी गई प्यासे मरते खेत।
रेत हो गई खेत औ' खेत हो गए रेत ॥
गंगा-यमुना-नर्मदा थे सदियों के नाम।
गटर-नालियाँ-गंदगी हैं नदियों के नाम ॥''(६४)

लोगों में संस्कारों के प्रति भी लगाव कम होता जा रहा है। लोग नये-नये तरीके सीखकर अपना काम (स्वार्थ)सिध्ध करने में जुटे हैं ---

''जीवन में संस्कार के ऐसे उखडे मूल ।
नए तरीके सीखकर गए सली के भूल॥''(६५)

कवि साथ ही लोगों को चेताता भी है वह कहता है कि इसी स्थिति के चलते देश में अराजकता बढेगी ।

''सदा रहेंगे देश में धोख औ ' छल छंद ।
गली-गली में हैं यहाँ जाफर औ' जयचंद ॥''(६६)

लोगों में जाफर और जयचंद जैसी भावनाएँ पनप रही है-----

सदा रहेंगें देश में धोखे औ' छल छंद ।
गली-गली में है यहाँ जाफर औ' जयचंद॥''(६७)

बदली संस्कृति का प्रभाव आज हर व्यक्ति, वस्तु पर गहराई से पड रहा है। आम के बीजों से बबूल उपजने लगे है ? फिर खाद फल अथवा अथवा खेत का इसमें दोष क्या ? कवि का कथन है ---

''खेत, बीज या खाद में कहीं रह गई भूल।
जहाँ आम बोए, वहाँ कैसे हुए बबुल ?॥(६८)

तीर्थों को भारतवर्ष में भगवान का प्रतिक माना जाता है। लोग अपने पापों, कष्टों के निवारण हेतु तीर्थ-यात्राएँ करते है कवि का कथन है कि लोग तो पाप तीर्थों में धो आते हैं लेकिन तीर्थ लोगों के पाप लेकर कहाँ जायें? इसी को लक्ष्य कर कवि ने तीर्थ संस्कृति का सुंदर वर्णन किया है----

''हम तो जाते तीर्थ में होने का निष्पाप।
तीर्थ भला जाए कहाँ, लेकर सबके पाप ?॥(६९)

कवि ने ताज और जूती की संस्कृति का मिश्रित रुप से अंकन किया है। कवि की लेखनी क्षमता का उत्कृष्ट उदाहरण उस दोहे में दृष्टिगोचर होता है ----

छोड मुकुट जिसमें छिपे कंटक और कलंक ।
पैरों में जूते पहन, कटि लगे न पंक ॥(७०)

कवि ने कविताओं की संस्कृति का उल्लेख भी किया है। यहाँ कवि की असीम संभावनाओं का रहस्य उदघाटित होता है ----

कविता सीपी की तरह, बूँदे गिरीं अनेक।
स्वाती नखत अब तक नहीं, मोती मीले न एक ।
तन में गठित कवित हो, मन में गजल अनंत ।
दोहे जैसी बुद्धि हो, तो कविता जीवन्त ।(७१)

कवि ने मानवीय और साहित्य संस्कृति का मिश्रण कर अपने कवि कर्म की कौशलता का परिचय दिया है ---

शिशु कविता, बालक कथा, नाटक युवक समान ।
उपन्यास है प्रोढ नर, वृद्ध समीक्षा जान ।।(७२)

इस तरह कवि किशोर ने विविध संस्कृतियों का चित्रण यथातथ्य रुप में कर अपनी लेखनी को सार्थक बना लिया है।

(१.४) राजनीति विषयक संवेदना :-

आज साहित्य की लगभग प्रत्येक विद्या में राजनीति विषयक संवेदना को प्रमुखता से प्रस्तुत किया जा रहा है। वास्तविकता भी यही है कि आज राजनीति ने जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है। आज शहर, गाँव, समाज आदि सभी में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से राजनीति हावि हो जा रही है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। इसलिए राजनीति विषयक संवेदनाएँ काव्य में वर्णित की जा रही हैं। राजनीति वास्तवमें राज्य की नीति को कहते हैं। ए.अप्पाडराय इस संदर्भ में लिखते हैं- ''राजनीति का सम्बन्ध राज्य अथवा राजनीतिक समाज से है । राजनीतिक समाज से अभिप्राय ऐसे लोगों से है ; जो एक निश्चित भू-भाग में व्यवस्था हेतु संगठित होते हैं।(७३) राजनीति राजा द्वारा बनाई उन नीतियों को कहते हैं जिनके अनुरुप वह अपनी शासन व्यवस्था चलाता है। ये नीतियाँ प्रजा के लिए बनी होती हैं कवि किशोर काबरा ने भी 'किशोर सतसई ' में राजनीति विषयक संवेदना का विस्तृत अंकन किया है। कवि मे आज

राजनीति के बिगडते स्वरुप पर विक्षोभ व्यक्त किया है। साथ ही राजनेताओं के तथाकथित दोहरे चरित्र का भी यथातथ्य चित्रण किया है।

आज के राज नेता सिर्फ बातें करने में माहिर हैं। वे अपने धर की तिजोरियाँ भरने में व्यस्त हैं। देश के ये कर्णधार वास्तव में देश डुबाने पर उतारु हैं। कवि ने बेबाकी से कहा है कि इन नेताओं में ब्रह्म, विष्णु और महेश तीनों देवताओं का निवास है। यही नेता आज के भगवान हैं।

''बात बनावे, धर भरे और डुबावे देश ।
नेता में अवतरित हैं ब्रह्म-विष्णु-महेश ॥''(७४)

कवि ने कुर्सी महिमा का गुणणान भी किया है। वह कहता है कि वही नेता विकास करवा सकता है जिसने कुर्सी को नहीं, आमजन को महता दी। जिसने कुर्सी को महत्ता दी; उसका कुर्सी दे ही विनाश कर दिया।

''कुर्सी के सिर जो चढा, करता रहा विकास ।
कुर्सी जिसके सिर चढी, उसका हुआ विनाश ॥''(७५)

नेताओं के बारे में कवि कहता है कि वे तो बकरी बनकर देश चरते जा रहे है । और लीद कर रहे हैं । उनके लिए शहीदों, वीरों की कोई अहमियत नहीं ----

''नेता मिलकर चर रहे और कर रहे लीद ।
इसीलिए क्या हो गए अपने वीर शहीद'' ? (७६)

नेताओं का काम जनता की सेवा है । आज के नेता करोडों का चारा खा जाते हैं । दिन-प्रतिदिन षडयंत्र रचते हैं । वास्तव में 'चरना ' तो इन नेताओं का मूल मंत्र बन चुका है।-----

''चारा चरते, विचरते, आचरते षड्यंत्र ।
नेताओं का बन गया 'चरैवेति' ही मंत्र ।''(७७)

नेताओं को तो कुटिल चालें चलने ही आती है। बेचारी जनता की उन्हें क्या फिक्र?

राजा-प्यादा सब यहाँ चले जंग की चला।

तुम गयंद की चाल तो हम तुरंग की चाल।(७८)

नेता राजनीति नही कर रहे हैं। बल्कि वे तो स्वार्थ नीति को पूज रहे हैं। वे जाति, धर्म, भाषा के आधार पर देश को बिखंडित करने में लगे हैं।

जाति-धर्म-भाषा सभी हैं मिट्टी का तेल।

दियासलाई हाथ ले, नेता करते खेल ।।(७९)

कवि कहता है कि राजनीति के आने से जीवन का प्रत्येक क्षेत्र भ्रष्ट हो चुका है । आज कोई भी राजनेता ईमानदार नहीं है। सभी एक-दूसरे से बढकर भ्रष्ट और बेइमान हैं। कवि कहता है कि लोगों के सामने केवल एक ही स्थिति है कि वे रावण को चूनें या कंस को क्योंकि कोई भी नेता राम सरीखी छवि नहीं रखता।

''लोकतंत्र में आ गया; राजनीति का अंश ।

चुनना हैं तुमको यहाँ रावण अथवा कंस।।''(८०)

कवि इन नेताओं को चेताता है कि इस देश के बारे में चिन्ता करो। हमें आजादी भीख या भेंट में नहीं मिली। इसे प्राप्त करने के लिये हमैं प्राणों की आहूतियाँ देनी पडी हैं-

नहीं भीख या भेट में, नहीं दान अनुदान।

स्वतंत्रता मिलती यहाँ, देकर अपने प्राण ।।''(८१)

राजनेताओं की इसी स्वार्थवृत्ति ने देशप्रेम और शहादत तक को बदनाम कर डाला है । कुर्सी से सदैव चिपके रहनेवाले ये नेता देशप्रम को गाली देने लगे है। उनकी नजर में देश पर जान न्यौछावर कर देनेवाला व्यक्ति पापी हैं-

''देशप्रेम गाली हुआ और शहादत पाप।

राजधानियों में करो बस, कुर्सी का जाप ।।''(८२)

आज भरपूर पैदावार हो रहा है, चारों तरफ अनाजों के ढेर लगे हैं किन्तु देश में फिर भी भूख, गरीबी फैली है। कवि कहता है कि देश का सारा अन्न तो नेताओं के पेट में चला जाता है । फिर, आम आदमी कहाँ से पेट भरे -

फसलें तो अच्छी हुई फिर भी है कुहराम ।
नेताजी के पेट में राशन के गोदाम ॥(८३)

नेता लोग शहिदों की कुर्बानियाँ भूल गए है। उन्हें गाँधीजी के 'सूत' और 'सत्य' से कोई लेना-देना नहीं। आज गाँधीजी उनके लिए 'वोट'से अधिक कुछ नहीं -

''नहीं सूत का सत्य का या लँगोट का काम ।
गाँधीजी अब रह गया एक वोट का नाम ॥''(८४)

नेताजी को भुख से कुछ लेना देना नहीं । धर्म से उनका कोई वास्ता नही। उनके लिए तो कुर्सी ही सबकुछ है। कुर्सी के इसी बढते लकलच ने देश को तबाह कर डाला है । कवि का कथन है --

''नहीं पेट की भूख हैं, नही धर्म की चाह ।
कुर्सी का लालच बडा, जिसने किया तबाह॥(८५)

आज के जमाने में साधुओं की संगति बेकार है। वही लोग तरक्की पा सकते है। जो चमचागिरी करने में सर्वश्रेष्ठ हैं ।

''साधु की संगत हुई, कलियुग में बेकार ।
चमचों की मिन्नत करो, सबके बेडा पार ॥''(८६)

नेताओं की वृत्ति का कवि किशोर ने बडी सूक्ष्मता से अंकन किया है । कवि का कथन है कि नेता बकरी है और आम जनता भेड है। भाग्य की विडम्बना देखिए भेडो को तो पेट भर चारा नसीब नहीं होता और नेता लोग बकरी बन बदाम खा रहे हैं -

नेता बकरी की तरह, जनता भेड तमाम ।

भेडो को चारा नहीं, बकरी को बादाम ॥(८७)

कभी लोकतंत्र को लोगों का तंत्र कहा जाता था। जिसमें लोगों को अहमियत दी जाती थी। आज लोकतंत्र ''गुंडातंत्र'' में तबदील हो गया है । आज लाठी, गोली, हडतालें, षडयंत्र; बलात्कार आदि लोकतंत्र की पहचान बनकर रह गये हैं-

''लाठी, गोली,दल-बदल हत्या औ' हुडदंग।

रेली; होली, बन्ध-सब सब लोकतंत्र के अंग ॥''(८८)

कवि कहता है कि असली लोकतंत्र तो कब का दफन हो चुका है। आज तो नेताओं की भीड ही लोकतंत्र है। इस भीड में स्वर्णिम अतीत धायल पडा तडफ रहा है और कह रहा है कि समय रहते मुझे बचा लो, नही तो देश पुरी तरह बर्बाद हो जायेगा ।--

लोकतंत्र की हार है, भीड तंत्र की जीत ।

और भीड के बीच में धायल पडा अतीत ॥(८९)

कवि दर्जी और नेता दोनों को एक समान मानता है। कवि कहता है कि दर्जी में भी अब नेताओं जैसे अवगुण आ गये हैं। क्योंकि वह भी जेबें कतरता हैं --

दर्जी में भी आ गए नेताजी के ऐब ।

दोनों सीते जेब को दोनों कतरें जेब ॥(९०)

आज की नीतिर्यां देश को डुबोने पर उतारु है क्योंकि राजनीति किसी भूत से कम नहीं है। पिशाच रुपी शासनतंत्र में यमदूत रुपी नेता देश का क्या भला करेंगे।--

''अर्थतंत्र है प्रेत-सा, राजनीति है भूत ।

शासनतंत्र पिशाच है, नेता सब यमदूत ॥''(९१)

कवि का कथन है कि कश्मीर समस्या भी राजनीतिज्ञों द्वारा बनाई हुई हैं । इसलिए तो कश्मीर में हर रोज खून बह रहा है । लेकिन पाकिस्तान फिर भी स्वयं को दोषी नहीं मानता। हमारे नेता सिर्फ बयानबाजी करते हैं --

''काश्मीर में कर रहा रोज खून से स्नान।
पाक साफ नहीं होता, फिर भी पाकिस्तान॥''(९२)

आज वोटों और नोटों की ही राजनीति रह गई है---

भूलों वे आदर्श अब, छोडो सभी उसुल ।
प्रजातन्त्र है; नोट से करलो वोट वसुल॥(९३)

(१.५) आधुनिकता सम्बन्धी संवेदनाः-

आधुनिकता का सम्बन्ध आज से अर्थात् वर्तमान है। आज जो कुछ भी घटता है उसका सम्बन्ध आधुनिकता से है। केवल वर्तमान के आधार पर ही आधुनिकता भूत और भविष्य को एकसुत्र में बाँध देती है। डॉ. नगेन्द्र इस बारे में लिखते हैं--''भूत से उच्छिन्न और भविष्यत पराङ्मुख आधुनिकता की धारणा वाग्विलास मात्र है ।''(९४) आधुनिकता गत्यात्मक होती है । कहने का साभिप्राय है कि जो कुछ भी हो रहा है। वही आधुनिक कहा जा सकने योग्य है । पूर्ववर्ती युगो में घटित घटनाओं और जडतत्वों के पुनर्विचार को आधुनिकता का आरंभ कहा जाता है । डॉ. विनय मोहन शर्माजी लिखते है - ''प्राचीन परिपाटी के पटपरिवर्तन का नाम ही आधुनिकता है ।''(९५) चूंकि आधुनिकता समय सापेक्ष होता है । अतएव इसमें युगानुरुप परिवर्तन होता रहता है । प्रत्येक युग की विचारधाराएँ प्रारम्भ में आधुनिक ही हुआ करती है । इन्हीं का आधार लेकर प्रत्येक नये युग की धारणाएं आधुनिकता का आवरण ओढ लेती है । किशोर काबरा आधुनिक युग के श्रेष्ठ कवि हैं । इन्होंने भी आधुनिकता सम्बन्धी संवेदनाओं के माध्यम से आधुनिक धारणाओं को स्पष्ट किया है । आधुनिकता की बढती वृत्ति ने लोगों से उनके जीवन मूल्यों को छीन लिया है । लोगों में अंधानुकरण स्वार्थ, नास्तिकता आदि की भावनाएं बलवती होती जा रही है। इन्हीं सब का चित्रण कवि किशोर काबरा ने अपनी 'किशोर सतसई' में किया है । कवि ने आज मरती मानवीय संवेदनाओं का मूल

कारण इसी आधुनिकता को माना है पिता-पुत्र और पोते में कोई अन्तर नहीं रह गया है। जिसके चलते श्रध्धा, साहस आदि जीवन मूल्यों का ह्रास हो गया है--

''पिता पुत्र औ' पौत्र में कहाँ रह गया फर्क ?
श्रध्धा साहस तर्क का क्रमशः बेडा गर्क ॥''(९६)

लोग बुजुर्गो की सेवा अपने स्वार्थो की पूर्ति हेतु करने लगे हैं । यदि दादा के पास कोई संदुक है तो लोग यही सोच कर सेवा करते है कि इसके अंदर का सारा माल एक दिन जरुर मिलेगा । इसी मरती हुई संवेदना का कवि ने मार्मिक अंकन किया है--

''कमर दबाई सिर मला झाडा बिस्तर आज ।
दादा के संदुक का मिला न कोई राज ॥(९७)

लोगों में नैतिकता का पतन होता जा रहा है पत्नी और बच्चे तभी सेवा में मग्न होते हैं जब उन्हें लगता है कि पिता अथवा पति के पास आज चैक आया है । इसी को लक्ष्य कर कवि लिखता है--

''पत्नी आज्ञा में खडी, पुत्र हो गया नेक ।
रायल्टी का आज ही आया मेरा चैक ॥(९८)

कवि कहता है कि पत्नी जो मंथरा-सा व्यवहार करती है और पुत्र तिरस्कार भाव रखते है ; पैसा मिलते ही पत्नी तो कौशल्या बन जाती है और पुत्र राम बन जाते है। आधुनिकता की इसी विडम्बना को कवि यूँ प्रस्तुत करता है---

''पत्नी कौशल्या हुई, पुत्र हुए रधुनाथ् ।
आज बैंक की पासबुक लग गई उनके हाथ ॥(९९)

वह पत्नी जो कभी पति के सिर पर हमेशा बैठी रहती थी। उसे भी आधुनिकता ने अपने रंग में रंग लिया है । पत्नी पर टी.वी. का भूत सवार हो चला है

''सिर पर बैठी थी कभी बीवी आसन मार ।

अब बीवी के शीश पर टी.वी. हुआ सवार ॥(१००)

आज मित्रता में भी दुश्मनी के गुण आ गए हैं कवि कहता है कि मित्र बनाने से दुश्मनों की कमी नहीं खलती। जमाना ही ऐसा है कि मित्र के वेश में शत्रु मिलने लगे हैं । --

''जबसे मित्रों की हुई मुझ पर कृपा विशेष ।

नहीं दुश्मनों से रही मुझे शिकायत शेष ॥''(१०१)

इस आधुनिकता का प्रभाव बहुत बुरा है। होरी जैसा भोला-भाला किशान भी इसके दुष्प्रभाव से न बच सका वह गाँव से गाय तो ले आता है किन्तु गाँव का दूध स्वयं नहीं पीता बल्कि औरों को पिलाता है और स्वयं चाय पीने को मजबूर है ---

''होरी आया गाँव से लेकर अपनी गाय ।

दूध पिलाता और को, खुद पिता है चाय ॥(१०२)

आज हर तरफ अनैतिकता और अव्यवस्था फैली है । भारत जो सोने की चिडिया कहलाता था; आज मिट्टी की चिडिया बनने की ओर अग्रसर है। यह सब तथाकथित आधुनिकता के अंधानुकरण के कारण हो रहा है। जब रखवाले साये पडे हों और मालिक बेहोश हो तो खेत की रक्षा कौन करेगा --

''रखवाले सोए पडे, मालिक हुए अचेत ।

चिडिया बनकर चुग रहीं हम विधवा का खेत ॥''(१०३)

शहरी चकाचौंध ग्रामिणों को अपनी ओर आकर्षित करती जा रही है। लोगों का गाँवों सें शहरों में आना लगातार जारी है। इसलिए आज गाँव की पगडंडी खाली-खाली-सी रहती है और शहर की हर सडक; हर चौराहा व्यस्त है--

''पगडंडी बिरहन हुई , करे न कोई बात।

सदा सुहागन सडक है, व्यस्त रहे दिन रात॥''(१०४)

इसी आधुनिकता के अंधा नुकरण ने लोगों को गाँवों से पलायन करने पर मजबुर कर दिया है गाँव आज धन से रहित हो गये है--

''गगन हुआ धनहीन अब, धरा हुई सरहीन।
गाँव हुए धनहीन अब, नगर हुए यश हीन ॥''(१०५)

यद्यपि् आज आदमी चाँद तक पहुँच गया है। ज्ञान-विज्ञान ने लोगों को अंतरिक्ष तक पर्हुचा दिया है । पश्चिम के विज्ञान ने मनुष्य को फर्श से अर्श पर बैठा दिया है । किन्तु भाग्य की विडम्बना देखिए कि पूरब का ईन्सान आजतक रोटी का मसला हल नहीं कर पाया।

''पहुँच गया है चाँद तक पश्चिम का विज्ञान ।
रोटी तक पहुँचा नहीं पूरब का इन्सान ॥(१०६)

स्वर्णिम अतीत पर आधुनिकता की कालिख कैसे चढती है ? इसका वर्णन भी कवि यथार्थ के विस्तृत धरातल पर किया है---

''देखो कैसे चढ रहा बीते कल पर आज ?
भूल गए मुमताज को, याद रह गया ताज ।(१०७)

लोगों को अब दुश्मनी के लिए मोहताज नहीं रहना पडता। यह शुभ कार्य तो दोस्त आज बखूबी कर देते हैं--

''कौन कह रहा- दुश्मनी के हम हैं मुहताज ?
यह करतब तो दोस्त भी कर देता हैं आज ।''(१०८)

लोगों में खून की प्यास बढती जा रही है। अपने स्वार्थ के लिए लोगों ने खून को पानी से सस्ता बना डाला है।--

कितनी सस्ती हो गई आज खून की प्यास ?
कितना मँहगा हो गया पानी का विश्वास।(१०९)

लोगों को पैसे की भूख है और उन्हें पानी की जगह खून की प्यास लगती है । असली भूख प्यास के मायने आज बिल्कुल बदल गये है । आधुनिकता के नामे बढती इस कलुषित प्रवृत्ति का अंकन कवि ने इस तरह किया है--

''प्यास जगी है खून की, पैसे की है भूख ।
भूख-प्यास के सुख सभी आज गए हैं सूख ॥(११०)

आज लोगों की संवेदनाएँ ही जब मर गई हों और आँखों का पानी सूख गया हो तो फिर बरसात कैसे होगी? ऐसे में बादल, बिजली, इन्द्रधनुष पर कैसे भरोसा रखें कि वे बरसात कर दें । इस मार्मिकता का अंकन कवि यूँ करता है---

''बादल-बिजली-इन्द्रधनु, सब हैं थोथी बात ।
मन का पानी मर गया, कैसे हो बरसात ?(१११)

वर्तमान परिवेश का कवि काबरा ने बहुत सुंदर अंकन किया है। राम जन्मभूमि को कवि ने 'कारागृह 'माना है। कवि कहता है कि आज के युग में जगन्नाथ भी लाचार हैं। तभी तो उसकी रक्षा निमित्त पहरेदार पहरा दे रहा हैं। भगवान भला मनुष्य की रक्षा कैसे कर सकता है वह तो स्वयं रक्षकों के घेरे में कैद है।---

''जग की रक्षा क्या करे, जगन्नाथ लाचार ?
उनकी रक्षा के लिए फौंज खडी तैयार ॥(११२)

लोग चाहे आधुनिकता का कितना ही ढिंढोरा पींटे किन्तु भारत की स्थिति वैसी की वैसी है । कवि कहता है कि यह कैसी आधुनिकता है जो भारत के दुर्भाग्य तक को नहीं बदल सकती ? कवि का कथन है--

भूख, गरीबी काहिली, लूट-पाट आतंक ।
भारत के माथे लिखे, यही भाग्य के अंक ॥(११३)

(२) 'किशोर - सतसई' में शिल्प निरुपण :-

❖ शिल्प :-

किशोर काबराजी हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत भाषा के भी अच्छे ज्ञाता हैं । इसके अतिरिक्त गुजरात,मध्यप्रदेश आदि के क्षेत्र में बोली जाने वाली बोलियों का भी उन्हे गूढ ज्ञान है। इसलिए कवि किशोर में भाषा के प्रति अनूठी सजगता दिखाई देती है । सहजता, प्रवाहमयता और ग्राह्यता आदि गुण काबराजी की भाषा शैली में स्वतः ही मिल जाता हैं । समयानुरुप उनकी भाषा में जीवन दर्शन को उत्पन्न करने वाले भावों का निरुपम मिलता है। उनकी भाषा की बनावट को शिल्प के प्रमुख तत्वों के आधार पर मुल्यांकित किया जा सकता है । अभिव्यक्ति के माध्यम के रुप में स्वीकृत काव्य के अवयव ही शिल्प के प्रमुख तत्व अथवा आधार कहे जाते हैं डॉ. (श्रीमती) ओम शुकल शिल्प को पारिभाषित करते हुए लिखती हैं कि- ''अपनी मनोगत भावनाओं को रुपायित करने के लिए कलाकार जो विधि, ढंग या तरीका अपनाता है, वही रुपायन विधि उस कला की 'शिल्पविधि' के नाम से विख्यात हो जाती है।''(११४)

डॉ. रामेश्वरलाल खंडेलाल इस संदर्भ में लिखते हैं कि - ''रुप शब्द प्रायः सीमित व व्यापक दोनों ही अर्थो में प्रयुक्त होता है । सीमित अर्थो में काव्य या साहित्य कें अभिव्यक्ति पक्ष मात्र का (जिसमें ढांचा-आकार और भाषा, छन्द, अलंकार , ध्वनि, वक्रोकित; सब कुछ समाविष्ट हो जाता है) द्योतक हैं ।''(११५) कहने का साभिप्राय यही है कि अभिव्यक्ति प्रस्तुत करने के लिए जिन उपादानों का आश्रय लिया जाता है उनका मिश्रण ही 'शिल्प ' है। कवि किशोर काबराजी रचित ''किशोर सतसई'' में निरुपित शिल्प के विविध आयामों का पर्यलोचन इस प्रकार है---

❖ भाषाः-

भाषा, अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने का सर्वाधिक सार्थक उपादान है । कवि किशोर की भाषा में असीम संभावनाएँ हैं। उनकी भाषा में तत्सम् , तदभव देशज और विदेशी शब्दों का सुंदर समायोजन मिलता है । उनका सुद्रढ और विस्तृत शब्द भंडार पाठकों की अनुकूलता का द्योतक है। किशोरजी की शब्द योजना में भावानुकूलता का गुण विद्यमान है। किशोर सतसई में निरुपित तत्सम, तदभव, देशज और विदेशी शब्दों के उदाहरण निम्नांकित हैं --

❖ ***तत्सम् :-***

''गागर छलकी शीश पर, भीगें तन-मन-प्राण ।

धूँधट पट में लग गए, किस बैरी के बाण ?(११६)

''सूक्ष्म बुद्धि प्रज्ञा अगर, सूक्ष्म सत्य ऋत-ज्ञान।

ऋतंभरा प्रज्ञा हुई , तो जीवित निवनि ।।(११७)

❖ ***तद्भव :-***

'तेज धूप में चल रहा मिली न कोई छाँव ।

पत्थर जैसे हो गए, मेरे दोनों पाँव ।।' (११८)

आँखों को परदा मिला, होंठ-होंठ से बंध ।

किन्तु कान बेपर्द हैं, गूँजे अनहद छंद ।(११९)

तत्सम्, तद्भव आदि शब्दों के सुष्ठु प्रयोग के साथ-साथ कवि देशज और विदेशी शब्दों का भी स्वाभाविक प्रयोग किया है , उदाहरण द्रष्टव्य है--

पाँच साल माँ ने लिए, बापु ने दस साल ।

आठ साल गुरु ले गए, तब हम हुए बहाल ।(१२०)

आँखों पर परदा पडा मन पर भ्रम की धूल ।

बुद्धि हुई है बावरी, कैसे सुधरे भूल ।(१२१)

❖ ***विदेशी :-***

कवि किशोर ने अरबी फारसी उर्दू आदि विदेशी शब्दों का भी प्रयोग किया है। इन शब्दो के प्रयोग से भाषा में कहीं भी क्लिष्टता नहीं आई--

''कैसे हो तुम हमसफर, कैसे हो हमराज ?

राज़ सफर का खोलकर, आज मुँहताज ।(१२२)

कफन ओढकर कब्र में लेट गए उस्ताद ।

यार, बडे बेफिक्र तुम हुए मौत के बाद ।।(१२३)

इस तरह कवि किशोर काबरा ने भाषा के विविध रुपों का सुंदर प्रयोग किया है। उनकी भाषा में स्वाभाविकता, अनुकूलता, सहजता, प्रभावोत्पादकता आदि गुण सर्वत्र दिखाई दते है । अभिव्यक्ति की क्षमता के सुंदर उदाहरण उनकी भाषा शैली में पग-पग पर दिखाई देते हैं । उनकी भाषा के अन्य तत्वों, छन्द, अलंकार, बिम्ब, प्रतिक, गुण-दोष आदि का संक्षिप्त पर्यालोचन इस प्रकार है---

❖ छन्द :-

छंद को कविता का व्याकरण कहा जाता है । यस्कि ने 'छन्दासि छादनात' लिखकर छन्द में प्रयुक्त 'छद' धातु की ओर संकेत दिया है ''छंद''अर्थ प्रसन्न करना, फुसलाना, आच्छादन करना, बाँधना, कामना और आहलादित करना आदि है । (१२४) श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु ने छंद को परिभाषित करते हुए लिखा है कि - ''जिस कविता में मात्राओं तथा वणों में क्रम, गति, एवं यति के नियत तथा चरणान्त की समता पायी जाती है; उसे छन्दबद्ध कविता कहते हैं(१२५) वस्तुतः छंद कविता का आवश्यक तत्व है। कविता तभी पूर्णरुप में प्रस्तुत होती है जब वह छंद के साथ उपस्थित हो । छन्दों की अभिव्यक्ति से ही कविता अनुशासनात्मक बनती है । यह अनुशासन अंतः एव बाह्य दोनों प्रकार का होता है । कवि किशोर की ''किशोर सतसई '' पूरी की पुरी दोहा छंद में रची गई है। दोहा छंद के सुंदर उदाहरण उनकी सतसई में दृष्टिगोचर होते हैं कवि किशोर ने स्वयं इस सतसई की छंद योजना के बारे में लिखा है कि- ''दोहा जितना सरल है उतना ही कठिन भी है । इसमें कथ्य और सत्य का जो साधारणीकरण होता है वह कवि की सम्पूर्ण लाघव क्षमता ; सांकेतिकता, सामासिकता और साहजिकता की परीक्षा ले लेता है। वस्तुतः दोहा काव्य पद्धति भी है, छन्द प्रकार भी है और काव्य विद्या भी। ''(१२६)' किशोर सतसई ' की छंद योजना बहुत सार्थक एवं स्वाभाविक बन पडी है । दोहा छन्द के प्रथम और तृतीय चरणों में १३ तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में ११ मात्राए होनी चाहिए । चरणान्त में लधु होना जरुरी है।''(१२७) किशोर सतसई से 'दोहा छन्द' के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं----

''लता वृक्ष नतशिर खडे, धाटी है बेहाल ।
पर्वत पीहर छोडकर, नदी चली ससुराल ॥(१२८)

आग बुझाओ देश की, मिल बैठो दस पाँच ।
बस चूल्हे की आग को, कभी न आए आँच ।(१२९)

लाख मुखौटे बदल लो, मगर चेहरा एक ।
नहीं बनोगे नेक तुम, अगर पुरानी टेक ॥(१३०)

भक्ति ज्ञान वैराग्य या पूजन अर्चन ध्यान।
दर्शन सब फीके लगे, दर्शन दे भगवान ॥(१३१)

आँसू में धोलूँ भले, पिछले सभी गुनाह ।
तेरी सूरत आँख से, पोछूं कैसे आह ? (१३२)

गजल कहो या गीतिका, द्विपद कहो या शेर ।
जीवित जिसके शब्द है, वह शायर शमशेर ॥(१३३)

❖ *अलंकार :-*

स्वाभाविक तौर पर मनुष्य सौंदर्य का उपासक है। इसीलिए छोटा बच्चा भी सुंदर चीजों की ओर सहज ही आकर्षित होता है। अतएव प्रकृति के सुंदर नजारों को देखकर उसका मन पुलकित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह सौंदर्यप्रियता ही उसके रहन-सहन को व्यवस्थित एवं सुंदर बनाती है । जिस प्रकार तन का श्रृंगार वस्त्रों द्वारा संभव है उसी प्रकार वाणी को अलंकारों द्वारा सुशोभित किया जा सकता है। डॉ. नरेश मिश्र लिखते है-''अलंकार वाणी का भूषण हैं । अलंकृत वाणी की अभिव्यक्ति में स्पष्टता ; भावों में अधिक प्रभावोत्पादकता, भाषा में भास्वरता उभरती है। जिस प्रकार नवयुवती वस्त्राभूषण पहनकर अधिक सुंदर लगती है ; उसी प्रकार काव्य अलंकार युक्त होकर पर्याप्त आकर्षक और श्रेष्ठ रुप प्रस्तुत करता है । (१३४) रीति सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य वामन ने भी सौंदर्य को अलंकार मानते हुए लिखा है-- 'सौंदर्यमलंकारः।(१३५)

इसी सौंदर्यमयी भावना के कारण अलंकार को साहित्य एवं कला के क्षेत्र में प्राचीनकाल से ही मिलती रहती हैं। किशोर काबरा के खंडकाव्यों में अलंकार थोपे हुए नहीं लगते वरन् स्वाभाविक रुप से कला

पक्ष के अन्तर्गत निहित हैं । उन्होंने अलंकारों का प्रयोग मात्र कवि कर्म निमित्त नहीं किया अपितु आवश्यकता और सार्थकता अनुरुप किया है। इसीलिए इनके खंड काव्यों में प्रयुक्त अलंकार कृत्रिमता के दोष से सर्वथा मुक्त हैं । अर्थ्रालंकारों और शब्दालंकारों की ऐसी सुंदर समन्यकत्मकता किशोर काबरा की काव्य-साधना को और अधिक निखारती है।

कवि किशोर काबरा की ''किशोर सतसई''में अलंकारों का निरुपण कुशलता एवं स्वाभाविकता के साथ हुआ है । कवि ने किसी भी दोहे में अलंकारों को थोपा नहीं है। भाषा में अलंकारों का सहज एवं सुन्दर प्रयोग मिलता है । अनुप्रास अलंकार का कवि ने बडा ही स्वाभाविक प्रयोग किया है । वस्तुतः ''अनुप्रास अलंकार शब्दालंकारो में सर्वाधिक विदित अलंकार है। भरत शिलामेधसेत, कुन्तक, काव्यानुशासनकार, वाग्भट्ट प्रथम्, अप्पय दीक्षित एवं पंडितराज जगन्नाथ के अतिरिक्त इनसे पूर्ववती प्रायः सभी आलंकारिको नें इसे स्वीकार किया है -इतना अवश्य है कि भामह ने इसका विवेचन माधुर्य गुण के संदर्भ में किया है ।''(१३६) 'किशोर-सतसई' में निरुपित अनुप्रास अलंकार के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं ----

उबल-उबल ओले पडे, सिहर सिहर कर धाम ।
बिन मौसम बरसात का यह कैसा आयाम ?(१३७)

कुछ सूखा, कुछ भींगता, कुछ बहता दिन-रात।
बाहर-भीतर हो रही यह कैसी बरसात ।(१३८)

धूरे-धूरे धूमती दुर्बल देशी गाय ।
बाडे मे पगुरा रही, मोटी जरसी गाय ।(१३९)

अनुप्रास के अतिरिक्त कवि ने संदेह , अतिशयोक्ति रुपक अलंकारों का भी सुष्ठु प्रयोग किया है। संदेह अलंकार में संशय की स्थिति बनी रहती है। और अतिशयोक्ति वर्णन ही अतिशयोक्ति अलंकार का प्रथम लक्षण है। जबकि रुपक अलंकार में कोई वस्तु किसी अन्य की विशेषता को बताने के लिए आरोपित की जाती है । इन अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं---

❖ ***संदेह अलंकार :-***

''तितली बोली भ्रमर से-सुनें खोलकर कान।

पँखुरी मुझका समझकर चूम रहे श्रीमान ॥(१४०)

❖ ***अतिशयोक्ति :-***

''उधर पसीना गिर रहा ईधर गिर रही धूप ।

गरमी भी रोने लगी देख स्वयं का रुप ॥(१४१)

❖ ***रुपक :-***

''पति पत्नी पोखर सदृश शिशू है कमल समान ।

केसर में रस गँध हैं पँखुरी में मुस्कान ॥ (१४२)

कवि ने मानवीकरण अलंकार का स्थल-स्थल पर प्रयोग किया है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं ---

''तारों में रोती इधर हाय अमावस रात ।

और चाँद करता उधर छिप पूनम से बात ॥(१४३)

बूँद गिरी छत पर चुई आँगन महकी प्रीत।

कारे कागज पर लिखा किसने मीठा गीत ॥(१४४)

तुम मुझको ऐसे मिलो ज्यों सुई से डोर ।

दर्द हमारी और हो दवा तुम्हारी और ॥(१४५)

उत्प्रेक्षा अलंकार का सुंदर उदाहरण देखिए ---

''मेरा मन अभिमन्यु-सा चक्रव्यूह संसार ।

कई युगों से ढूँढता मैं बाहर का द्रार ॥(१४६)

❖ ***बिम्ब :-***

वर्तमान युग में बिम्ब के अर्थ में अत्यन्त विस्तार हुआ है। साहित्य के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो में भी इसका प्रयोग बहुलता से होने लगा है । बिम्ब शब्द इतना विशद एवं व्यापक है कि इसे परिभाषा की सीमाओं में बद्ध करना प्राय : कठिन हो जाता है। ''(१४७) बिम्ब की महता स्वीकार करते हुए अंग्रेजी के महाकवि एवं आलोचक एजरा पाउंड ने तो यहां तक कह डाला है कि सम्पूर्ण जीवनकाल में एक विशाल काव्य-कृति की रचना करने की अपेक्षा एक बिम्ब का सृजन करना अधिक श्रेयस्कार है ।''(१४८) वास्तव में बिम्ब के द्वारा अमूर्त अथवा अगोचर विषय भी मूर्त अथवा गोचर होकर इन्द्रियों को आनंद देने का साधन बन जाता है । समानता की प्रस्तुति के लिए ही बिम्बों की योजना की जाती है। काव्य बिम्बों का सभी बिम्बों की अंतिम परिणति माना जाता है । डॉ. कुमार विमल इस संदर्भ में लिखते हैं कि ''स्मृति अतीत की छापों के एक बिखरे हुए संग्रह के रुप में बिम्बों का पंजीकरण और सम्मिश्रण कर उन्हें नवीन रमणीयता और विशिष्ट छवि भी प्रदान करती है। (१४९) किशोरजी रचित 'किशोर-सतसई' में बिम्बों की सुंदर नियोजन हुई है। दृश्य बिम्ब का उदाहरण देखिए----

''तारों के अक्षर लिखे रात-रात भर जाग।
सुबह उजाला ढोलकर ग़ई यहाँ से भाग ॥(१५०)

काले बादल में छिपी क्षीण चद्र की रेख ।
ज्यों लोहे के थाल में हो चाँदी की मेख॥(१५१)

घ्राणेन्द्रिय बिम्ब का भी कवि ने बडी कुशलता से उपयोग किया है।---

''कुछ खजूर ऐसे मिले, दिया गंध-रस-रुप ।
कुछ बरगद ऐसे मिले, छाया मिली न धूप ॥'' (१५२)

प्राकृतिक बिम्बों की तो कवि ने सतसई में बौछार-सी कर दी है ; ऐसा जान पडता है। प्रकृति चित्रण में ये बिम्ब बडी सार्थकता एवं स्वाभाविकता के साथ चित्रित हुए हैं। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है-

''परिमल पँखुरी -रंग-रस, हैं ऊपर के नाम ।

रवि किरणों से पुष्प के बँधे हुए हैं प्राण ॥''(१५३)

धरती नभ के बीच में धधक रहा वैशाख ।

शाख हो गई खाक औ खाक हो गई सोख ॥(१५४)

मैं गुलाब का फुल हूँ कदम कदम पर शूल ।

तुम निष्कंटक हो मगर बारहमासी फूल ॥(१५५)

जीवनपरक बिम्बों की सृष्टि भी कवि ने आत्मीयता एवं अनुकूलता के साथ की है ---

सोने के पीछे रहा, सोना हुआ हराम ।

अब जब सोने को चला मिट्टी हुआ तमाम॥(१५६)

यह तट मेरा जन्म है वह तट तेरी मौत।

बीच भँवर में फँस गया है जीवन का पोत ।(१५७)

पत्नी विधवा हो गई, बच्चे हुए अनाथ ।

पति परमेश्वर जहर खा पल में हुए सनाथ ॥(१५८)

❖ ***प्रतीक :-***

बिम्बों के साथ साथ 'किशोर-सतसई' में प्रतीकों की भी सुन्दर नियोजना हुई है। ''प्रतीक का सम्बंध चिन्तन अथवा दर्शन से होने के कारण प्राय : उसे किसी सूक्ष्म अथवा परलौकिक सता से सम्बन्धित मान लिया जाता है । भारतीय संदर्भो में यह बात अधिक सटीक बैठती है और इसका कारण है भारतीय संस्कृति जीवन दर्शन तथा साहित्य का एक विशिष्ट परलौकिक आध्यात्मिक चेतना से सम्पृक्त तथा आच्छादित होना।(१५९) प्रतिक वस्तुतः पाठक व श्रोता की कल्पना से प्रत्यक्ष रुप से सम्बन्ध होते है । डॉ. परशुराम चतुर्वेदी ने प्रतिक को परिभाषित करते हुए लिखा है -''प्रतिक से अभिप्राय किसी वस्तु की ओर

इंगित करनेवाला न तो संकेत मात्र है और न उसका स्मरण दिलाने वाला कोई चित्र या प्रतिरुप ही है । यह उसका जीता-जागता एवं पूर्णतः क्रियाशील प्रतिनिधि है।(१६०)

''किशोर- सतसई '' में प्रतीक योजना कई रुपों में अभिव्यक्ति हुई हैं । कविनें विविध प्रतीकों के माध्यम से पाठकों से उनकी कल्पनाओं से प्रत्यक्ष सम्बन्ध जोडने का प्रयास किया है । दर्शन परक प्रतीक का उदाहरण देखिए ----

''यह तो मेरी मौत है, नींद नहीं हैं कफन ।
बूढा सोते वक्त हूँ ; बालक उठते वक्त ॥(१६१)

पुत्री-चिन्ता बीस तक, सुत-चिन्ता पच्चीस ।
पत्नी चिन्ता साठ तक, अब केवल जगदीश ॥(१६२)

इसी प्रकार पति-पत्नी के लिए कवि ने पोखर और शिशु के लिए 'कमल' रुपी प्रतीक का प्रयोग किया गया है ।

पति-पत्नी पोखर सदृश शिशु है कमल समान ।
केसर में रस-गंध है ; पँखूरी में मुस्कान ॥(१६३)

साधनात्मक प्रतीक का प्रयोग भी कवि ने बडी कुशलता से किया है---

भक्ति दूब की तरह है, ज्ञान ताड का झाड ।
एक धरा की आड ले, एक गगन की आड ॥(१६४)

इसी तरह कवि ने मन के लिए मन भर दूध तो चिन्तन को ''नीबू फँक'' का प्रतीक माना है । कवि का कथन है कि यदि मन चिन्तन में रम जाण तो जीवन धन्य हो जायेगा । नहीं तो, जीवन व्यर्थ होना निश्चित है--

मन है मनभर दूध सा, चिन्तन नींबू फाँक।
जम जाये तो लेखा है, फट जाए तो खाक ॥ (१६५)

इसी तरह कविने 'खलक' का अन्तर्मन की आँखों का प्रतीक माना है ---

''खलक समूचा छानकर क्या करता नादान ?

अगर खुदी का तो मान है, खुदा बहुत आसान॥(१६६)

कवि ने दर्द को 'कडकती धूप ' तो खुशियों को 'ठण्डी छाँव' का प्रतिक माना है ।----

''दर्द झुलसती धूप है खुशियाँ ठण्डी छाँव।

इन दोनों से दूर है उस प्रियतम का गाँव ॥(१६७)

कहीं-कहीं तो कवि ने पुरे जीवन चक्र को ही प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया है--

शैशव पय, बचपन दही, यौवन धी का नाम ।

छाछ बुढापे की तरह, आगे बस हरिनाम ॥(१६८)

❖ रस :-

''रस अर्थात काव्यानंद कोई पदार्थ तत्व या उपादान नहीं है । पाठक की अनुभूति जो उसे काव्य के पारायण के परिणाम स्वरुप उपलब्ध होती है। यह निरपवाद रुप से आंनंदप्रद होती है । इसके परिणाम स्वरुप प्रमाता (पाठक) एक आत्म विस्मरण की स्थिति में आ जाता है। वह सत्वस्थित होकर ऐसी मानसिक दशा लाभ कर लेता है कि कवि की मूल अनुभूति उसकी अपनी अनुभूति बन जाती है ।''(१६९)रस को कव्य की आत्मा भी स्वीकार गया है क्योंकि इसी तत्व के कारण सहदय को आनंद की प्राप्ति होती है । साहित्य शास्त्र में रस का प्रयोग सर्वाधिक होता है । इसमें रस का प्रयोग भिन्न अर्थ में होता है काव्य के पठन, श्रवण अथवा दर्शन से पाठक, श्रोता अथवा दर्शक के ह्रदय में जो अवर्णनीय; अलौकिक आनंद होता है, वही 'रस' है।(१७०) किशोर सतसई में विविध रसों का सुष्ठु प्रयोग मिलता है । कवि ने हास्य, करुण और भक्ति आदि रसों की सुंदर अभिव्यक्ति की है । कवि ने 'पति' का केन्द्रबिंदु में रखकर उसकी हालत के बारे में जिस तरह का वर्णन किया है; वहाँ हास्य रस की सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है । कवि का कथन है ----

''जली-कटी रोटी मिले, जली-कटी ही बात ।

जला-कटा चेहरा अगर, पति के क्या हालत ?(१७१)

इसी प्रकार विवाह के बाद की जिस स्थिति के उत्पन्न होने की बात कवि ने कही है उसमें भी हास्य रस का सुंदर पुट मिलता है----

''लग्न पूर्व जो चाह थी, लग्न समय वह वाह ।
किन्तु लग्न के बाद में, वाह हो गई आह ।।''(१७२)

हास्य रस के साथ-साथ करुण रस की भी मार्मिक प्रस्तुति कवि ने की है ----

''स्याही से तुमने लिखी अपनी गाथा आप ।
आँसू से मैंने लिखे जग के करुण विलाप ।।''(१७३)

पर्वत नंगे हो गए, जंगल सब बरबाद ।
कितने पेड उजाडकर, तेरा घर बरबाद ।।(१७४)

चिन्ता नागिन की तरह, पलट-पलट दे दंश ।
अंग-अंग पर रेंगता, इसका पूरा वंश ।।(१७५)

कवि ने भक्ति रस को तो पग-पग पर प्रस्तुतीकरण किया है -----

अमृत पीकर भी रहे देव सदा बेहाल ।
विष पीकर शंकर हुए महाकाल तत्काल ।।(१७६)

सगुण ईश की भक्ति हो, निर्गुण का हो ध्यान ।
दुनिया से वैराग्य हो, तो जीवित निर्वाण ।।(१७७)

भक्त और ज्ञानी करे, अलग-अलग विश्वास ।
ईश्वर मेरे पास है, मैं ईश्वर के पास ।। (१७८)

❖ ***गुण - दोष :-***

भाषीय तत्वों में छन्द, अलंकार, बिम्ब प्रतीक; रसादि के अतिरिक्त काव्य गुण व दोष भी विद्यमान होते है । किशोर काबरा की भाषा में माधुर्य प्रसाद व ओज तीनों गुण मिलते हैं । इन्ही गुणों के कारण उनकी भाषा में सहजता मिल जाती है ।---

'किशोर सतसई' में ओज गुण स्थल-स्थल पर मिलता है ----

''पत्नी डूबी अश्रु में - सिर पर लाए सौत।
जहाँ नहीं पानी वहाँ तुम्हें मिलेगी मौत ॥(१७९)

''गागर छलकी शीश पर, भीगें तन-मन प्राण ।
धूँधट पट में लग गए, किस बैरी के बाण ॥(१८०)

''बम फूटा चिथडे उडे, खँडहर हुए मकान ।
चिंढी-चिंढी हुए गए, बापू के अरमान ॥''(१८१)

माँ ने छाती खोलकर मुझे पिलाया क्षीर ।
मैं भी छाती खोलकर झेल रहा शमशीर ॥(१८२)

माधुर्य गुण भी कवि किशोर काबर की भाषा में सर्वत्र व्याप्त है। माधुर्य गुण वस्तुतः श्रृंगार, करुणादि रसों का सहयोगी होता है । इस गुण के कारण काव्य रचना मृदुल भावों से सम्पृक्त हो जाती है । 'किशोर सतसईद की भाषा शैली में निरुपित माधुर्य गुण के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं ----

''रजनीगंधा साँझ है, सूरजमुखी प्रभात ।
दिन के दोनों छोर पर, खुशबु की बरसात ''॥(१८३)

''पलभर की खुश्बु लुटा बिखरा फूल गुलाब ।
बारहमासी फूल पर बारह मास शबाब ॥''(१८४)

पीले पते गिर रहे, कोयल लगती डाल ।
पतझर और बसंत का, यही संक्रमण काल॥(१८५)

गीत नदी की धार से उठती हुई फुहार ।
मृदुल; तरल, मीठी, सुखद, ठण्डी मुखर बदार ॥(१८६)

कविता सरिता की तरह निर्मल सरल प्रवाह ।
उसे वाद में बाँधना सबसे बडा गुनाह ॥(१८७)

भाषा के लिए अपेक्षित तीनों गुणों का सम्मिश्रण 'किशोर सतसई' में मिलता है । 'प्रसाद' गुण के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं ----

''खेतों से फसलें मिलीं, खलिहानों से अन्न ।
और अन्न से कृषक का, जीवन हुआ प्रसन्न ॥(१८८)

ढोल बजा खुश हो गए, बाँधू गले में ढोल ।
पर जीवनभर ढूँढते रहे, ढोल की पोल ॥(१८९)

चाहे तुम पूजा करो, चाहे पढो नमाज ।
लेकिन भारत भूमि पर करो हमेशा नाज ॥(१९०)

इस तरह कवि किशोरजी की भाषा शैली अपेक्षित गुणों से सम्पन्न है। इतना होने पर भी काबराजी की भाषा में कतिपय दोष भी आ गये हैं जैसे निम्न दोहे में श्रुतिकटुत्व सोष हैं क्योंकि इस दोहे में कुछ शब्द ऐसे हैं जो कानों को कतई नहीं भाते---

शाश्वत कविता मंत्र है, सुक्ष्म और संक्षप्त ।
काल चबा जाता, सभी क्षेपक औ' प्रक्षिप्त ॥(१९१)

लोक या शास्त्र में प्रसिद्धि विरुद्ध बात का वर्णन करने से प्रसिद्धि विरुद्ध दोष उत्पन्न होता है। उदा. द्रष्टव्य है--

''बाह्मण खुश बादाम से, क्षत्रिय किए सलाम ।
बनिया लिए दाम से, शुद्र दिए आराम ॥(१९२)

इस दोहे में क्षत्रिय को सलाम से खुश होता बताया है ; जबकि क्षत्रियों का ऐसा कतई नहीं कि वे सलाम करें, वे तो वीर योध्धा होते हैं। यहाँ पर प्रसिद्धि विरुद्ध काव्य दोष है।

❖ *निष्कर्ष :-*

किशोर काबरा ने अपनी 'सतसई' में संवेदना के विविध आयामों का यथार्थ परक चित्रण किया है । कवि ने व्यक्ति, समाज, संस्कृति, राजनीति और आधुनिकतापरक संवेदना का कुशलता से अंकन किया है । उनकी भाषा-शैली में अपेक्षित सभी गुण मिलते हैं । इस द्रष्टि से उनका शिल्प-पक्ष बहुत सार्थक बन पडा है। भाषीय तत्वों का सुंदर सम्मिश्रण उनकी भाषा शैली की प्रमुख विशेषता है। इस प्रकार भाव एवं कला की कसौटी पर 'किशोर सतसई' खरी उत्तरी है ।

संदर्भ सूची :-

१. डॉ. विष्णु प्रसाद ओझा, बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - पृ. १०४

२. डॉ. गणपत चन्द्र गुप्त, हिन्दी काव्य में श्रृगार परम्परा और महाकवि बिहारी - पृ. ११९

३. डॉ. गणपत चन्द्र गुप्त, हिन्दी काव्य में श्रृगार परम्परा और महाकवि बिहारी - पृ. १२०

४. डॉ. विष्णु प्रसाद ओझा, बिहारी सतसई और दयाराम सतसई - पृ. १०६-१०७

५. डॉ. (स्वामी)ओम् आनंद सरस्वती, किशोर सतसई, दो शब्द - पृ. ५

६. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २१

७. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २१

८. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २१

९. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २२

१०.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३०

११.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २३

१२.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३७

१३.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४०

१४.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २४

१५.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २७

१६.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४९

१७.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १११

१८.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १११

१९.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २२

२०.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १११

२१.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १३

२२.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २४८

२३.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५

२४.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४१

२५.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४३

२६.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४२

२७.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४४

२८.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४४

२९.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४८

३०.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४९

३१.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५०

३२.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५१

३३.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५०

३४.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५१

३५.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ च- पृ. ५२

३६.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५४

३७.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५५

३८.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५५

३९.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५६

४०.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५६

४१.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५९

४२.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५९

४३.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७७

४४.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७०

४५.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ८६

४६.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ८९

४७.डॉ. रामानंद, तिवारी, शिक्षा और संस्कृति- पृ. १३०

४८.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ११

४९.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ११

५०.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ११

५१.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १९

५२.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४०

५३.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३९

५४.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४१

५५.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४३

५६.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४३

५७.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४४

५८.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४५

५९.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६०

६०.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४६

६१.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४६

६२.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४८

६३.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५६

६४.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६३

६५.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६३

६६.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६३

६७.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६३

६८.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६४

६९.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६४

७०.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६७

७१.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६७

७२.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७३

७३.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७४

७४.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३

७५.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४१

७६.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४२

७७.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४२

७८.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४४

७९.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ८०

८०.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४९

८१.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४९

८२.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४९

८३.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५१

८४.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५१

८५.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५१

८६.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५२

८७.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५२

८८.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५३

८९.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५३

९०.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५७

९१.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६१

९२.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६२

९३.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५८

९४.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४६

९५.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २२१

९६.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १

९७.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २३

९८.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३३

९९.डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३३

१००. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३३

१०१. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३७

१०२. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४५

१०३. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४८

१०४. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५४

१०५. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५५

१०६. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५४

१०७. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५४

१०८. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५५

१०९. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५८

११०. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५८

१११. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६१

११२. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५०

११३. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४४

११४. डॉ. (श्रीमती) ओम शुक्ल, हिन्दी पन्यास के शिल्प विधि का विकास - पृ. ८

११५. डॉ. रामेश्वरलाल खंडेलवाल, जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला - पृ. २

११६. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३३

११७. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ९८

११८. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १०३

११९. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २४

१२०. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १०४

१२१. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १०४

१२२. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २५

१२३. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३२

१२४. थास्क नित्तकतक, श्लोक संख्या- ७।११

१२५. जगन्नाथ भानु, छन्द प्रभाकर - पृ. १

१२६. डॉ. किशोर काबरा, 'किशोर सतसई' की भूमिका से उद्धत शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७

१२७. डॉ. शंभुनाथ पांडेय, रस अलंकार पिगल - पृ. १२६

१२८. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १९

१२९. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५२

१३०. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ६९

१३१. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १०२

१३२. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३४

१३३. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७१

१३४. डॉ. नरेश मिश्र, अलंकार दर्पण - पृ.३१

१३५. डॉ. नरेश मिश्र, अलंकार दर्पण - पृ. ३१

१३६. डॉ. ब्रह्ममित्र अवस्थी,अलंकार कोश - पृ. ३४-३५

१३७. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १५

१३८. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २०

१३९. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४९

१४०. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १८

१४१. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १८

१४२. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३७

१४३. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १५

१४४. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७४

१४५. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १०८

१४६. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १०७

१४७. डॉ. ब्रज किशोर सिंह, पदमाकर का बिम्ब विधान - पृ. १

१४८. डॉ. सी.डे. लीविस,दि पोइटिक इमेज - पृ. २५

१४९. डॉ. कुमार विकल, सौदर्य शास्त्र के तत्व - पृ. २०६

१५०. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १४

१५१. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १४

१५२. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३२

१५३. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १४

१५४. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १७

१५५. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १८

१५६. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २५

१५७. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३१

१५८. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३६

१५९. डॉ. संतोष शर्मा, महादेवी का बिम्ब बोध और प्रतीक सृजन- पृ. १३९

१६०. डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव, हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा - पृ.१२१

१६१. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २७

१६२. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३६

१६३. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३७

१६४. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १००

१६५. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १००

१६६. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १०३

१६७. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १०५

१६८. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १०५

१६९. डॉ. पुष्पा बंसल, काव्यशास्त्र- हिन्दी साहित्य चिन्तन- पृ. ६२

१७०. डॉ. शंभुनाथ पांडेय, रस, अलंकार पिगल - पृ. १३

१७१. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २८

१७२. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३०

१७३. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७४

१७४. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३६

१७५. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ८०

१७६. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ९२

१७७. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ९५

१७८. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ९६

१७९. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३३

१८०. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ३३

१८१. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ४५

१८२. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५८

१८३. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १९

१८४. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १८

१८५. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २०

१८६. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७२

१८७. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७२

१८८. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. १६

१८९. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. २८

१९०. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ५३

१९१. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७६

१९२. डॉ. किशोर काबरा, किशोर सतसई शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ७७

****

अध्याय – ५

'डॉ. किशोर काबरा' एक समग्र मूल्यांकन : उपलब्धियाँ एवं सम्भावनाएँ ।

प्रस्तावना :-

डॉ. किशोर काबरा आधुनिक युग के स्थापित साहित्यकारों में है। मालवा के एक गाँव में सामान्य परिवार में जन्मे काबराजी ने मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और बाद में गुजरात को अपनी कर्मभूमि बनाया । एक साहित्यकार की द्रष्टि से उन्होंने समूचे हिन्दी साहित्य को अपने साहित्यिक कृतित्व से चमत्कृत किया है । मूलतः कवि होते हुए भी काबराजीने हिन्दी की अनेक विद्याओ का साहित्य सृजन किया है।

समकालीन कविता मानव जीवन में फैली भावशून्यता और उसकी अस्मिता की तलाश की कविता है। इस कविता में आम आदमी की आशा, आकांक्षा, उत्थान; पतन, खुशहाली, बदहाली और अनन्त संधर्ष की प्रतिध्वनि गुंजती है। डॉ. किशोर काबराजी की संवेदनशीलता इन्ही परिस्थितियों की उपज है। विषम परिस्थितियों से जूझते हुए जीवन की जड बुनियाद की तलाश से सरोकार रखकर कवि काबरा ने अपनी अनुभूतियों को पोषण दिया है।

वर्तमान की विसंगतियों एवं असमंजस भरी स्थिति दोनों में काबराजी की कविता सूर्योदय की कविता जैसी लगती है । कवि के हृदय से अनुभूति मानवजीवन के मूल्यो के तलाश करते है । हम कह सकते है कि काबराजी की कविता रुदन-हास्य- प्रतिक्ष और आकांक्षा की कविता है ।

वर्तमान सामाजिक जीवन, जटिल अन्तर्विरोधों उलझनों, विसंगतियों और पाखंण्डों से भरे संदर्भो के बीच से गुजर रहा है । रचनाकार इन परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नही रहता । डॉ. काबराजी ने समय के यथार्थ को कविता, कहानी उपन्यास, नाटक, संस्मरण; रेखाचित्र आदि सभी विद्याओं के माध्यम से उजागर किया है। इस तरह सामाजिक वैषम्य और वर्गचेतना समकालीन साहित्य का भूल कथ्य हो गए है। वैज्ञानिक और आन्तरिक प्रगति के उन्माद ने एक ऐसे हिंसक पूंजीवाद को जन्म दिया है जिसने आम आदमी

के जीवन को आक्रान्त करने में सामन्ती युग को भी पीछे छोड दिया । डॉ. किशोर काबरा जैसे अध्येता रचनाकारों ने आम आदमी के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए एक नई चेतना का आह्वान किया।

मध्यवर्गीय जीवन की जुडता फंडा अभाव और अनास्था आदिको को डॉ. काबरा ने बहुत पास से देखा परखा और सहा है । इसी से उन्होंने सशक्त और स्पष्टवादिता के साथ लिखा है। बौद्धिक आहवान और पीडा बोध ने मानवीय संवेदनाओं को निरंतर बोझल किया है। डॉ. काबरा ने इस बौद्धिक अहंवाद को तोड ने का प्रयास अपनी रचनाओं में किया हैं ।

❖ डॉ. किशोर काबराजी के साहित्य का वैविध्य :

डॉ. काबरा के विपुल साहित्य में गीता और मुक्तक शैली में लिखे गए संग्रह- 'जलते पनधट बुझते मरधट', 'सारथी मेरे रथ को लौटा ले', 'साले की कृपा', 'आज यौवन ने पुकारा देश को', 'ऋतुमती है प्यास', और टुटा हुआ शहर है। पाँच प्रबन्ध रचनाएँ- परिताप के पाँच क्षण, नरो वा कुंजरो वा, धनुष भंग, उत्तर भागवत,एवं उत्तर रामायण है । एक चुटकी आसमान तथा एक टुकडा जमीन इनके दो लधुकथा संग्रह है। डॉ. किशोर काबरा ने बालोपयोगी साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा। तितली के पंख, टिम-टिम तारे , बाल रामायण ,बाल कृष्णायन, हम सब पंछी,खट्टे अंगुर तथा भारत दर्शन इनकी बाल साहित्य रचनाएँ एवं सदाचार की कहानिर्यां इनकी बाल कहानियों की रोचक पुस्तकें है गद्य साहित्य के क्षेत्र में भी डॉ. किशोर काबरा का उल्लेखनीय योगदान है। इन्हों ने 'रीतिकालीन काव्य में शब्दालंकार विषय पर महत्वपूर्ण शोधकार्य किया है । यह शोध कार्य शब्दालंकार विषय के वर्तमान अध्येताओं के लिए प्रकाश स्तम्भ का काम करेगा । कलम, कागज और कविता शीर्षक से एक साहित्यिक निबन्ध संग्रह भी काबराजी का हैं । इस निबन्ध संग्रह में संग्रहित निबन्ध काव्य और गद्य साहित्य की विविध विधाओं पर आलोचनात्मक प्रकाश तो डालते ही है। साथ ही इनमें लेखक की अनुभूति और विवेचन का कौशल भी दिखाई देता है। सम्पादन, संकलन, अनुवाद तथा पाठ्यपुस्तक निर्माण सम्बन्धी कार्य उनकी विशिष्ट उपलब्धियों में गिने जा सकते हैं ।

❖ उपलब्धियाँ एवं सम्भावनाएँ :-

डॉ. किशोर काबरा का व्यापक साहित्य उनकी उपलब्धियों का साकार प्रमाण है। इस साकार प्रमाण में जो प्रेरणा और प्रोत्साहन पाठकों और श्रोताओं के लिए विद्यमान है उसे यथार्थ रुप में शब्दों में बांधना

कठिन प्रतीत होता है। काबराजी अपनी हर कृति में एक लक्ष्य लेकर आगे बढे है और बडे सुनियोजित; सुविचारित चिन्तन के साथ उन्होंने रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । कथ्य की द्रष्टि से उनकी रचनाओं में सामाजिक दायित्व और कर्तव्य की और प्रवणता स्पष्ट परिलक्षित होती है। सामाजिक दायित्वो का निर्वाह कवि को पलायनवादी होने से रोकता है । कवि की इसी विचार धारा की झलक उनकी रचना सारथी मेरे रथ को लौटा ले' में भली भाँति देखी जा सकती है। राजमहल छोडकर जग के फलेशों से डरकर दुखों से निवृत्ति के लिए साधना पथ पर चले जाने वाले बुद्ध के प्रयाण को महाभिनिष्क्रमण की संज्ञा दी गई परन्तु डॉ. काबरा का कुछ और ही लक्ष्य रहा । बुद्ध की पलायन वृत्ति को उन्होंने उचित नहीं माना। वे कहते हैं कि आदमी कर्म और दायित्व से विमुख होकर कैसे भाग सकता हैं ---

''पहले धर जाकर खाना खाना है;
जल्दी से पार्ट टाइम पर टयुशन पर जाना है,
पंचर जुडवाना है , खाता खुलवाना है ।''(१)

अपने दायित्वों के प्रति सजग रहना कवि काबरा की द्रष्टि में आदमी का सही पौरुष है । इस मनुष्य जगत का सबसे बडा दर्शन यही है । चरैवेति-चरैवेति का चिन्तन आदमी की भूख से उपजा है।

'चलने का पाठ एक रोटी ने पढाया है ।'(२)

सत्य और ईमानदारी का गला धोंटकर जीवित रहना मानवीय जीवन का यथार्थ आदर्श नही है परन्तु अधिकांशतः व्यक्ति ऐसी ही बेवशी में जी रहा है जहाँ सब कुछ सहते हुए भी कुछ नहीं कह पा रहा है---

''चोंच न खोजने की शर्त पर,
शाम सबेरे दो दाने पाता हूँ ।।''(३)

डॉ. किशोर काबरा ने आज के समाज की आतंक और भ्रष्ट जीवन शैली पर बहुत स्पष्ट चोट की है। ऐसे साहसी रचनाकार विरल ही होते है। स्वयं की सुविधाओं की रिस्वत ठुकराकर ऐसे साहित्यकार समाज को सही दिशा निर्देश देते है । डॉ. काबरा के साहित्य की सबसे बडी उपलब्धि यही प्रतीत होती है कि इन्होंने

नेताओं और अफसरों का नाम लिए बिना उनके भ्रष्ट आचरणों पर प्रहार किए है और सामान्य जन के दुःखों और कष्टों को उजागर कर आम आदमी को संघर्ष की चेतना भी प्रदान की है।

नगरों और महानगरों में फैले सांस्कृतिक प्रदुषण पर अपनी रचनाओं में डॉ. काबराजी ने गहरी चिन्ता व्यक्त की है । भारतीय सभ्यता और संस्कृति के ह्रास का सिलसिला शहरों से शुरु हुआ और अब गाँवों में भी यह पहुँच रहा है। शहर की यही सबसे बडी टूटन कवि की द्रष्टि में है----

''अच्छा है तुम्हारा नगर,
अच्छे हैं तुम्हारे नागरिक,
एक बात बताओं दोस्त,
यह 'नागरिक' नाग से ही बना है न ?''(४)

उपरोक्त उदाहरण में डॉ. काबरा ने 'नागरिक' शब्द की व्युत्पति 'नाग' शब्द से बतलाई है जो कि शब्द रचना की दृष्टि से गलत है। वस्तुतः 'नागरिक' शब्द की व्युत्पति 'नगर' से हुई है । और 'नागरिक' शब्द का अर्थ नगर में निवास करनेवाला होता है। वर्तमान की पतनोन्मुखी पीढी जो येन-केन प्रकारेण प्रमाण-पत्र हासिल कर नौकरी की तलाश की अन्धी दौड में शामिल हो जाती है और भौतिक सुख- सुविधाएँ हथियाने की गंदी जुगाड में लग जाती है । डॉ. किशोर काबरा ने अनेक कविताओं में इस प्रकार की स्थितियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं ।

''अर्जुन, उस डाली पर तुमको क्या दिखता है ?
डिग्री; फिर नौकरी, फिर बीबी,
फिर बच्चे, फिर बच्चे, फिर बच्चे, फिर.....।
बस-बस-बस , छोडो वह बाण ,
और लेलो प्रमाण-पत्र । (५)

❖ ***डॉ. किशोर काबराजी की उपलब्धियाँ :***

- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे लगभग ५०० रचनाओं का प्रकाशन
- 'नरो वा कुंजरो वा' खण्डकाव्य को 'राष्ट्रीय महाकवि आत्मा पुरस्कार' की प्राप्ति
- आकाशवाणी से लगभग २०० कविताओं, वार्ताओं एवं हिन्दी पाठों का प्रसारण
- अखिल भारतीय हिन्दी प्रचार प्रतिष्ठान पटना द्वारा 'साहित्यमणि' की उपाधि
- दूरदर्शन से कविताओं, गीतों एवं शब्दचित्रों का प्रसारण
- 'परिताप के पाँच क्षण' खण्डकाव्य को उ.प्र. का अकादमी पुरस्तकार
- 'धनुष भंग' खण्डकाव्य को भावनगर युनि. के पाठ्यक्रम में स्वीकृति
- शब्दचित्रों की विभिन्न स्थानों पर प्रदर्शनियाँ
- शताधिक कवि सम्मेलनों, कवि-गोष्ठियों एवं परिचर्चाओं में आमंत्रण
- गुजरात के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज में सहयोगी शोध-कार्य
- 'कादम्बिनी' गीत प्रतियोगिता में नवगीत पुरस्कृत
- बीसियों लघुकथाएँ पुरस्कृत
- कई सम्मान एवं अभिनन्दन समारोहों का आयोजन एवं अभिनंदन पत्रों की प्राप्ति
- अभिनव भारती और गीतांजलि नामक संस्थाओं का संचालन
- पत्र-पत्रिकाओं में कलम लेखन
- 'उत्तर महाभारत' - अर्चना पुरस्कार कलकत्ता, १९९२ - ५०००/-
- 'उत्तर रामायण' - मारवाडी सम्मेलन पुरस्कार, बम्बई, १९९२ - ५०००/-
- 'खट्टे अंगुर' - राष्ट्रीय बाल पुरस्कार, नई दिल्ली, १९९६ - ५०००/-
- समग्र साहित्य के लिए 'जयशंकर प्रसाद पुरस्कार' - गुजरात साहित्य संगम - १९९४
- डॉ. किशोर काबरा को 'दीनदयाल साहित्य पुरस्कार' - अहमदाबाद, यह पुरस्कार छोटी खाटू में आयोजित एक विशेष समारोह में केन्द्रीय संचार, राज्यमंत्री श्री तपन सिकंदर के करकमलों से डॉ. किशोर काबरा को शाल,ताम्र पत्र एवं ग्यारह हजार की राशि भेंट दी गई - १९९९।
- गुजरात की संस्था ने पिछले दिनों उन्हें हिन्दी गरिमा सम्मान से भी अभिनंदन किया है।

❖ युगबोध :-

परम्परा और समकालीन संदर्भो में औचित्यपुर्ण सामजस्य स्थापित करने की अदभुत क्षमता डॉ. किशोर काबरा में है। इनके प्रबन्ध काव्यों में रामायण और महाभारत काल की धटनाओं को वर्तमान युगीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक युगबोध को अतीत से जोडकर काबराजी नें नये निष्कर्ष प्रस्तुतकर हिन्दी साहित्य को नवीन उपलब्धि प्रदान की है। 'परिताप के पाँच क्षण ' खंड काव्य में कुरुकुल वृद्ध पितामह भीष्म के मनस्ताप का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि आधुनिक समाज में होने वाली अन्याय पूर्ण गतिविधियों के मुक्त दर्शक इससे प्रेरणा ग्रहण कर अन्याय के विरोध में सक्रिय हो सकेंगे । हस्तिनापुर के राज दरबार में भीष्म ने अपनी आँखों के सामनें हुए पाप को देखा था और शक्ति होते हुए विरोध नहीं कर सके थे । उनकी वही विवशता उनके परिताप का कारण बनी। आज भी सामाजिक परिवेश में ऐसी धटनाएँ धटित होती रहती है और आधुनिक भीष्म अपने हाथों से नही बल्कि अपनी आँखों से पाप कर रहे है। और फिर पश्चाताप करते हैं ।

'परिताप के पाँच क्षण ' की भांति ही डॉ. किशोर काबरा ने 'धनुषभंग' तथा 'नरो वा कुंजरो वा' खण्ड काव्य को समसामयिक युग बोध से जोडा है। 'धनुषभंग' में विश्वशांति और विश्वमानव के कल्याण को आधार बनाया गया है ; वही 'नरो वा कुंजरो वा' में द्रोणाचार्य के मन की कुण्ठा का चक्रवात है ।

कविता अनन्त सम्भावनाओं का स्त्रोत होती है और ऐसी अनन्त सम्भावनाएँ डॉ. किशोर काबरा के काव्य में हैं । उनकी कविता में वर्तमान और भविष्य दोनों की ही प्रेरक सम्भावनाएँ विद्यमान है । 'उतर महाभारत' महाकाव्य के विषय में उन्हों ने स्वयं लिखा है - ''मेंने अतीत के बीजों को वर्तमान की भूमि पर भविष्य के लिए बोने की कोशिश की है।(६) इसी प्रकार उतर रामायण भी अलौकिक त्याग, बलिदान, संधर्षपूर्ण उत्तार चढावोवाली मानव मनोभूमि पर आधारित महाकाव्य है ।

❖ अनुवाद :-

डॉ. किशोर काबराने गुजराती से हिन्दी में अनुवाद कार्य भी किए है। अनुवाद दुस्साध्य होता है परन्तु काबराजी को इसमें पूर्ण सफलता मिली है। काबराजी द्वारा स्वयं के दो उपन्यास का गुजराती में अनुवाद किया गया है । यह अनुवाद प्रायः पाठकों ने सराहा है ।

❖ सम्पादन :-

सम्पादन और सहसम्पादन की कला में भी काबराजी निष्णात है। 'पंखेरु पश्मि के', बुंद-बुंद धटमें, आधुनिक गुजराती कविताएं, पछुआ के हस्ताक्षर इनके सम्पादन कार्य के नमूने हैं। साथ ही इन्हों ने गुजराती साहित्य के हस्तलिखित ग्रथों की खोज का भी महत्वपूर्ण कार्य किया है।

❖ शब्दचित्र :-

डॉ. किशोर काबरा के साहित्यिक व्यक्तित्व का एक अनोखा पहलु उनके 'शब्दचित्र' हैं । इस दिशा में इनका नवीन प्रयास है। इन्होंने शब्द के अक्षरों को मोडकर एक नई आकृति प्रदान की है । इस शैली में शब्द तो अपने मूल रुप में ही रहता है परन्तु वह एक कलाकृति का रुप ले लेता है। शब्दों की चित्रकला के क्षेत्र में डॉ. किशोर काबरा को प्रथम शब्दचित्रकार माना जाता है। इस सम्बन्ध में डॉ. किशोर काबराने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए है - चित्रालंकार नए-नए प्रयोगों को जन्म दे सकता है। अक्षरों की आकृति से चमत्कार उत्पन्न करना शब्दों मे छीपे अर्थ को अक्षरों की लिखावट से व्यक्त करना एवं सार्थक शब्द चित्रों का प्रयोग करना चित्रालंकार का ही विकास है। पर्वत, बादल, लहर, पशु,पक्षी,वाद्ययंत्र, धर गृहस्थि की वस्तुएं, वाहन,फल, फुल, ईश्वर के रुप मानवीय मनोभाव अदि को इन्होंने अपने शब्द चित्रों का विषय बनाया है।

❖ पत्र पत्रिकाएँ और पाठय पुस्तकें :-

काबराजी पत्र-पत्रिकाओं एवं पाठ्यपुस्तकों से भी सक्रिय रुप से जुडे रहे है। इन्होंने साठ से अधिक पाठ्यपुस्तकों की रचना विभिन्न कक्षाओं के लिए की । पत्र-पत्रिकाओं में इनकी ५०० से अधिक रचनाओं का प्रकाशन हुआ है। अधिकांश काव्य कृतियाँ विभिन्न प्रादेशिक सरकारो और प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है।

❖ भाषा की द्रष्टि से :-

प्रत्येक रचनाकारके भाषा प्रयोग के निजी व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब झलकता है। डॉ. किशोर काबरा के बहु आयामी लेखन में प्रस्तुत भाषा प्रयोग उनकी निजी विशिष्टता कहा जा सकता है । उनका भाषा के

सम्बन्ध में निजी विचार है--''कविता भाषा की लाक्षणिकता, भावों की व्यंजना एवं विचार के साधारणीकरण का नाम है।(७) इनमें से एक भी तत्व की कमी और श्रोताओं तथा पाठकों को कसकती रहती है।

''शब्दों का कद कितना छोटा है?
फिर भी वे नाप रहे कबसे वेदान्त ॥''(८)

विश्व जीवन के समग्र दर्शन का रहस्य शब्द ही खोलते आए है । इसी से सफल रचनाकार शब्द प्रयोग में सतत सावध रहता है। डॉ किशोर काबरा आधुनिक नवगीत लेखकों में भी अपना विशिष्ट स्थान रखते है । उनके नव गीतों की भाषा प्रांजल सोदेश्य और भाव प्रकाशन में सक्षम है। प्रकृति के नवीन प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से उन्होंने अपने नवगीतों को एक नई भाषा प्रदान की है---

टूट गए धूप के खिलौने
तैर गए किरण के इशारे
दुबक रही बिजली की हंसुली।(९)

उनके ''ऋतुमति है प्यास'' नवनीत संग्रह में नवगीत का निखरा हुआ रुप देखा जा सकता है।

हर क्षेत्र में जीवन की अभिव्यक्ति के लिए काबरा जी ने विषय के अनुरुप भाषा का प्रयोग किया है। कृषि प्रधान देश में धेत और खेतौं में खडी फसलों के चित्रण का एक उदाहरण देखिए---

''खेतों की माटी में मेरे
बसे हुए है प्राण
गेहूं की बाली में मानो
छिपा हुआ निर्माण ॥(१०)

डॉ. किशोर काबरा ने नीति और उपदेशपरक भाषा का व्यवहार भी किया है। मानवीय मूल्यों में आ रही निरंतर गिरावट के प्रति चिंता प्रकट करते हुए एक जगह वे लिखते है-----

''एक कफन दो गज जमी, इस जीवन का मोल।
सोने, चाँदी, रत्न में, रहा स्वयं को तोल ।। (११)

काबराजी की व्यंग्य रचनाओं की भाषा पैनी और प्रहारक है। यद्यपि उनके व्यंग्य के विषय आज की जीवन शैली के अंग बन चुके है और पाठकों , श्रोताओं को कोई आश्चर्य नहीं होगा फिर भी एक सामाजिक बुराई पर प्रहार करना रचनाकार का धर्म है----

''सन्यास लेने के बाद ,
मेरे एक मित्र के व्यक्तित्वका
अंग-अंग खिल रहा है ।
अब उसे धर की जगह आश्रमों,
पुत्र की जगह शिष्यों
और पत्नी की जगह
योगिनियों का सत्संग मिल रहा हैं ।''(१२)

खडी बोली हिन्दी के कवि मन्दसौर मध्य प्रदेश के मालवी परिवेश में जन्मे काबराजी लम्बे अरसे से अहमदाबाद गुजरात में निवास कर रहे हैं । गुजराती साहित्य और समाज में निवास के कारण इनकी भाषा में गुजराती लहजा भी झलकता है।

❖ ***डॉ. किशोर काबरा की काव्य साधना :***

डॉ. किशोर काबराने काव्य विधा के सभी अंग प्रस्तुत किये है और उनके अधिकांश प्रयोग सफल रहे हैं।, उनकी प्रकाशित काव्यकृतियों में महाकाव्य, 'उत्तर महाभारत', 'उत्तर रामायण' और 'उत्तर भागवत्' खण्डकाव्य : 'धनुष-भंग', 'नरो वा कुंजरो वा', 'परिताप के पांच क्षण', काव्य-संग्रह : जलते पनघट : बुझते मरघट, टुटा हुआ शहर, सारथि ! मेरे रथ को लौटा ले, ऋतुमती है प्यास, हाशिए की कविताएँ मैं एक दर्पण हूं, सतसई : किशोर - सतसई, गजल-संग्रह : चंदन हो गया हूँ प्रमुख हैं।

प्रबन्ध काव्यों में महाकाव्यों की रचना अत्यंत कठिन मानी गयी हौ ऋषि-मुनि तो वनों में जाकर एकान्त में कठोर तप द्वारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति करते थे, किंतु महाकाव्यकार को तो परिवार और समाज में रहकर तथा दायित्वों का निर्वाह करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करना पड़ता है। अतः जब तक वह जनक की

भाँति विदेह न हो जाए, उसे सही अर्थो में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। किशोर काबरा के तीनों महाकाव्यों उत्तर महाभारत, उत्तर रामायण और उत्तर भागवत के अनुशीलन से यह स्पष्ट ज्ञान होता है कि कवि ने लखनी उठाने से पूर्व अपने विषयो से संबंधित सामग्री एकत्रित करने के लिए गहन अध्ययन किया है। इतना ही नहीं उत्तर महाभारत, उत्तर रामायण और उत्तर भागवत के युग में घटित घटनाओं और तत्कालीन समाज पर उनके प्रभाव का सही मूल्यांकन करने के लिए उन युगों में एक पात्र के रुप में जीवन जिया है। उन्हीं के शब्दों में ''मैंने अपने सभी प्रबन्ध-काव्यों में पात्रों से अपना तादात्म्य स्थापित कर उन्हें जिया है। उनकी अदम्य इच्छाएँ, लालसाएँ, महत्वकांक्षाएँ, सफलताएँ और असफलताएँ - इन सबको मैने पात्रो में स्वयं प्रवेश कर अनुभव किया है और तभी मैं अपने पात्रों के साथ न्याय कर सका हूँ। द्रौपदी का चरित्र-चित्रण करते समय मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि द्रौपदी ही अपनी आत्मकथा लिख रही है। मैं तो कवेल निमित्त मात्र हूँ।''

इन तीनों महाकाव्यों के मूल में सद् और असद के संघर्ष की भावना ही प्रमुख हैं। ये संघर्ष हमारे अंतर्मन में सदा ही चलते रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इनसे प्रभावित है। जब हमारी आसुरी प्रवृत्तियां हम पर हावी हो जाती हैं तो हमारा व्यवहार पशुवत हो जाता है; किन्तु जब सद प्रवृत्तियाँ हमें प्रभावित करती हैं तो हमारे व्यवहार में करुणा, प्रेम और सहानुभूति के दर्शन होते हैं। उत्तर महाभारत में पांच पांडवों और द्रौपदी के स्वर्गारोहण की कथा है। यह प्रतीकों के शमन के माध्यम से षड़ शास्त्रों की प्राप्ति का बिम्बात्मक आख्यान है। मनोविश्लेषण की द्रष्टि से यह छः व्यक्तियों के स्वभाव की विचित्रता की आड़ में पूरे मानव-समाज के अंतरंग और बहिरंग को रुपायित करता है। पांच कर्मेन्द्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियां पांडवो के बहिरंग और अंतरंग है और द्रौपदी मन है जो इनसे बंधा रहता है। काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर इनके प्रतीक रुप में कविने द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन, भीम और युधिष्ठिर को प्रस्तुत किया। वे किसी न किसी विकास से पूर्णतया ग्रस्त है; अतः उनका पतन स्वाभाविक है। युधिष्ठिर अवश्य श्वान के साथ स्वर्ग तक पर्हुचते है; पर 'नरो वा कुंजरो वा' के अर्धसत्य के कारण उन्हें भी तो नर्क के द्वार तक जाना ही पड़ता है। इतना ही नहीं, मत्सर से पीड़ित उनके मन में भी यह भावना थी कि द्रौपदी उनके अधिक अर्जुन से प्रेम करती थी। भीम के प्रश्न पर-

किन विकारों के गलित संस्पर्श का
हमको मिला है यह दुखद परिणाम॥

युधिष्ठिर का उत्तर था-

वीर अर्जुन को अधिक ही चाहती थी द्रौपदी।(१४)

संपूर्ण महाभारत महाकाव्य से जो प्रश्न उभर कर सामने आता है वह यह कि द्रौपदी के माध्यम से क्या कवि की द्रष्टि में नारित्व की सार्थकता अदमनीय कामवासना की पूर्ति में ही है ? क्या कौमार्य और मातृत्व नारी अस्तित्व की समग्रता की परिधि में नहीं आते ? धनुष-भंग में कवि ने सीता को एक अविवाहीत ग्राम्य कन्या के रुप में देखा है जो जन-जीवन से, ग्राम की प्रकृति से, वहां की परंपरा से पूर्णतः जुडी हुई है। किशोरजी के शब्दों में - 'सीता जनता की आकांक्षाओं की प्रतीक है, सीता खेत और खलिहानों की प्रतिच्छाया है। सीता के माध्यम से मैंने गाँवो में कई शाश्वत चित्रों को पूरी उन्मुक्तता से लिया है। निमि के शब्दों मे - 'बेटी सीते ! टिका हुआ है । पूराजन जीवन तेरी ही घड़कन पर पूरा ही ऋतुचक्र घूमता तेरे हास - रुदन पर। भारतीय गाँव की किसी भी किशोरी अविवाहिता बालिका को ले आप उसमें जनकपुर की सीता के दर्शन कर सकते हैं। यहाँ वह कामवासना से पीड़ित नहीं है; वरन् उन्मुक्त सरल हास की नरंगादित प्रतिमा है।

किन्तु उत्तर रामायण की सीता और राम इनके पृथक है। किशोरजीने इन दोनों चरित्रों को जो गरिमा प्रदान की है, वह श्रद्धा स्पद है। रामायण की पारंपरिक कथा में सीता का परित्याग राम को युग - युग के लिए दोषी बना देता है पर कविने राम को जो मर्यादा पुरुषोत्तम के रुप में प्रस्तुत किया है; उसमें राम पर लगाये गये लांछन का भी निराकरण है। यथा-

''अरे ए राम !
तू है कष्ट का पर्याय केवल
संकटो का तू विवश अध्याय केवल
सतत चलता ही रहेगा
चलत अंतिम श्वास जब तक
अटल सीमा पर रहेगा
राम का विश्वास तब तक
आप को अब भी यही विश्वास होता है कि
मैंने जानकी पर की कुशंका

तो इसी क्षण भस्म हो जाए

अभागे राम की यह देह लंका।''(१५)

राम का यह कथन सीता के प्रति अटूट प्रेम का प्रमाण है फिर भी राम ने सीता को वनवास दिया और उन्हें गर्भावस्था में लक्ष्मण के साथ वाल्मीकि आश्रम भेज दिया। सीता को वन की ओर ले जाते समय लक्ष्मण के मन की स्थिति का भी मार्मिक चित्रण कविने किया है। राम ने ऐसा क्यों किया ? कविने राम द्वारा उठाये गये इस कदम की पुष्टि की है। यथा -

''राम के इस राज्य में ही

राम के बेटे कलंकित हों नहीं

इस हेतु भी मैंने चुना था

जानकी के वास्ते वनवास

वह वनवास जिसमें

मैं स्वयं से युद्ध करना चाहता था(१६)

इस तरह राजन्य संस्कृति के कलुष को

वन्य संस्कृति के कलश से

शुद्ध करना चाहता था।

और भी कारण यहां पर है

सिया के त्याग से

संबद्ध जो इस लोक से, परलोक से

जड़-जीवनमाया- ब्रद्ध से

शाश्वत नियति से

जानकी से, विष्णु के अवतार से

मेरे पिता से

जानता हूँ मैं जिन्हें

यह जानकी भी जानती है

और यह मेरी प्रजाभी

कुछ समय के बाद सब कुछ जान लेगी।''(१७)

किन्तु मात्र राम के इस कथन से पाठ को संतोष न होगा, अतः कविने स्वयं सीता से राम के साथ युग युगान्तर से चले आनेवाले संबंध को कहलाया है। यथा -

राम में मैं, राम मुझमें

एक उर्जस्थित सहज चैतन्य

घेरे था हमारे प्रेम को

जिसमें समर्पण था अगर विद्धल नदी की धार जैसा

तो मुखर स्वीकार भी था

एक सागर के तरंगित ज्वार जैसा

आह ! कितना मधुर, कितना सरल, कितना दिव्य, कितना सरल

मेरा और मेरे राम का अद्‌भूत अलौकिक प्रेम।

डॉ. किशोर काबरा रचित उत्तर भागवत महाकाव्य निश्चय ही पिछले दो दशकों में प्रकाशित हिन्दी महाकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। यदि पाठक इसके संपूर्ण कथानक पर द्रष्टिपात करता है तो यह अपने में पूरे द्रापर युग को समटे हुए हैं और अनेक स्थलों पर त्रेता और कलियुग को भी स्पर्श करता है। इसका संपूर्ण कथावृत भगवान कृष्ण के जन्म से लेकर अवसान तक की सभी घटनाओं को अत्यंत कुशलता से प्रस्तुत करता है। स्वयं काबराजी के शब्दों में - विरोधाभासों और विपरीत ध्रुवों के मध्य संतुलन स्थापित करने की कला में दक्ष हैं पुरुषोत्तम कृष्णा।

आज विश्व के मर्यादा पुरुषोत्तम राम के स्थान पर पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण की आवश्यकता है। ऐसे कृष्ण को नायक बनाकर नंद किशोर ने जिस नंदकिशोर का चरित्र-चित्रण किया है वह महासागर के समान है।

उत्तर भागवत की समीक्षा करना सहज नहीं है। इस पढ़ने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि समीक्षा लिखने का अधिकारी वही है, जिसे ईश्वर इस कृति के प्रति न्याय करने की क्षमता प्रदान करे। स्वयं

कवि कहता है - और ग्रंथ तो मैंने लिखे है, पर 'उत्तर भागवत' मुझसे लिखवाया गया है।'' उत्तर भागवत के प्रत्येक अंश पर स्वतंत्र चर्चा हो सकती है, पर समग्र में इसका मूल्यांकन असंभव है।

कृष्ण का चरित्र कपूर की तरह है, जलता है, सुवास देता है पर पीछे कुछ नहीं छोड़ता-

कृष्णा उजले अक्षरों की प्रेम पाती,
कृष्ण का जीवन नहीं धृत - दीप - बाती।
कृष्ण को कर्पूर की मोहक डली है,
हो रही जिससे सुवासित हर गली है।
जल गया तो लपट सी रचनता वही है,
बुझ गया तो शेष कुछ कुछ बचता नहीं है।(१९)

डॉ. किशोर काबरा के उत्तर भागवत महाकाव्य का अक्षर-अक्षर नवधा भक्ति के चंदन से चर्चित है। उसमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। उसमें स्नान करके मैं धन्य हो गई हूँ।

खण्डकाव्य में 'धनुष-भंग', 'नरो वा कुंजरो वा', और 'परिताप के पाँच क्षण'' उल्लेखनीय है। कविने परंपरा से हटकर इन तीनों खण्ड काव्यों में जीवन और समाज के कुछ मूलभूत प्रश्नों को उठाया है। धनुष-भंग रामचरित मानस में वर्णित राम के द्वारा शिव धनुष को तोड़कर सीता के साथ विवाह की कथा मात्र नहीं है। कवि के शब्दों में - ''धनुषभंग में मुझे जहां निशस्त्रीकरण की झलक मिली है, वही धरती की पुत्री सीता में मुझे श्वेतों और खलिहानों की कच्ची मिट्टी का सोंघापन नजर आया है। कथा के अंत में निमि का स्वप्न सार्थक होता है और वे सीता की पलकों को छोड़कर चले जाते हैं। सीता राम को जयमाला पहनाने के लिए आगे बढ़ती है। इस प्रकार जयमाला को लेकर ठिठ की हुई सीता के द्वारा भोगे हुए एक पल की कहानी को शास्त्र, शस्त्र और श्रम के त्रिआयामी द्वंद्व से जोड़कर उन्मुक्त प्रकृति की गोद में सांस लेनेवाली कृषि-संस्कृति के शाश्वत जीवन-दर्शन को इस कृति में उभरा गया है।

'परिताप के पाँच क्षण' में भीष्म के संपूर्ण जीवन की कथा - व्यथा को उनके अंतिम पांच क्षणों में वर्णित किया गया है। कभी-कभी यह सोचकर दुःख होता है कि भीष्म आदि से अंत तक दूसरों के लिए और

दूसरों के लिए ही मरे, किंतु अंतिम क्षणों में भी उन्हें शांति नहीं मिल सकी। यह खण्डकाव्य परिताप और उपेक्षा की कहानी है।

विश्व के इतिहास में एक नहीं, अनेक ऐसे प्रसंग मिलेंगे जहां उपेक्षिता नारियों ने देशो की संस्कृति और इतिहास को बदल दिया है। किलयोपेट्रा, डिडो, शूपर्णखा, द्रौपदी, कुणाल की विमाता आदि अनेक एसी नारिर्यां हैं जिन्हें उपेक्षिता की संज्ञा दी जा सकती है। अंबा भी ऐसी ही एक उपेक्षिता नारी थी । अंब न शाल्यराज की प्रेयसी बन पायी, न विचित्रवीर्यने ही उसे स्वीकार किया और भीष्म तो अपने प्रण से बंधे थे। यह काव्य हमारे सामने इस प्रश्न को प्रस्तुत करता है कि जब नारी की स्वाभाविक काम चेतना का समाधान पति या प्रेमी के रुप में किसी पुरुष को प्राप्त करने में निहित हैं तो उसे इस अधिकार से वंचित कर उसे असहाय अवस्था में छोड़ देने का अधिकार क्या समाज को है ? क्या आज वेश्यावृत्ति में लगी हुयी सैंकड़ो नारियों की कहानी अंबा से मिलती झुलती नहीं है ? भीष्म का यह अन्याय अंबा ने कभी क्षमा नहीं किया। हस्तिनापुर के सिंहासन की रक्षा के लिए वे अपने अतवीर्य भाई के लिए काशी की तीन राज कुमारियों का हरण कर आये थे। अंबिका और अंबालिका को तो किसी प्रका विचित्रवीर्य ने स्वीकार किया, किंतु अंबा कही की न रही - ''भीष्म तूने मेरी सारी जिंदगी बरबाद कर दी है। मैं तुम्हारी मृत्यु का कारण बनूंगी। भीष्म मैं अवश्य प्रतिशोध लगी। और शिखंडी के रुप में उसने प्रतिशोध लिया।

'परिताप के पाँच क्षण' का एक अन्य चित्र देखिए इसमें शब्द और ध्वनि दोनों प्रकार की चित्रात्मकता है।

''लो ! सुराहीदार गर्दन से सुरा ऐसी बही
मेंहदी बनी कोमल हथेली पर
मेहावर सी निखर कर रह गयी पटक्षेप में
खनकती हैं चूड़ियां नि द्वंद्व
खनकते हैं पायलों के छंद
खिल-खिल हंस रह हैं मोगरे के पुष्प
पाकर समय अनुकुल।(२०)

शब्द, ध्वनि, गंध और स्पर्श - इनके समन्वित चित्र भी आप किशोरजी की रचनाओं में पाएँगे। उनका उक्ति वैचित्र्य और वक्रोकित का प्रयोग भी असाधारण है। वह ऐसी चोट करता है कि व्यक्ति तिलमिला जाए। जैसे-

अनछुई असफलता की खाई देखकर
मैं कुछ देर विश्राम कर लेता हूँ
अवसर के गाँव में
किंतु लोग समझते है - मैं चल नही सकता
शायद
दर्द हो रहा है पांव मैं।(२१)

'सारथि ! मेरे रथ को लौटा दो' काव्य शास्त्र की द्रष्टि से यदि देखा जाए तो अत्यंत समर्थ एवं विज्ञ कवि की कृति है। काव्य के सिद्धांतो का उन्हें पूरा ज्ञान है और अपने प्रबंध काव्यों में उन्होंने उन सिद्धांतो का निर्वाह किया है। छंद और लय की विविधता उनकी विशेषता है। किंतु वे बहु आयामी कवि है, इसलिए उन्होंने सतसई, गजलें और क्षणिकाएँ लिखी हैं। किशोर - सतसई चंदन हो गया हूँ और हाशिए की कविताएँ इसकी प्रमाण है। निश्चय ही समकालीन कविता के संदर्भ में डॉ. किशोर काबरा एक सशक्त हस्ताक्षर है जो छायावादी युग के उतरकाल से भी जुड़े हुये है, साथ ही अति आधुनिक कविता से थी।

❖ ***सतसई परंपरा की अविस्मरणीय उपलब्धि : 'किशोर सतसई'***

'दोहा' अनन्त अनुभवों के क्षीर-सागर से प्राप्त अमृत छन्द-धट है, इसकी वापसी वस्तुतः कविता में छन्द की वापसी है । यह आश्चर्य की बात है कि हिन्दी में इसका वापस आना हिन्दी गजल के समानान्तर हुआ है ; पर प्रतिस्पर्धी के रुप में नहीं, पर प्रतिपूरक के रुप में । वस्तुतः कोई छंद किस प्रकार पुनर्जीवित हो सकता है, उसका प्रमाण दोहा है । डॉ. किशोर काबरा की 'किशोर सतसई ' देखकर तो यह विश्वास और प्रबल हो गया है कि दोहा ही वही लौटा है, उसकी सतसई परंपरा भी दरवाजे पर दस्तक दे रही है। 'सतसईया के दोहरे ज्यों नावक के तीर वाली' उक्ति यदि ''किशोर सतसई'' पर भी लागू होने लगे तो आश्चर्य नहीं । ७०७ दोहों के इस अप्रतिम ग्रंथ-रत्न को मैं सतसई-परंपरा की नवीनतम कडी मानती हूँ।

कुछ बात दोहा छंद की करली जाए। दोहा विश्व में सबसे अधिक प्रचलित छंद है। यह अपभ्रंश से लेकर आज तक शिष्ट- साहित्य के साथ ही लोक -साहित्य की जिह्वा पर रहा है। यह एक बहुरुपिये की तरह कई वेश बदलकर जनता-जनार्दन का मार्गदर्शन एवं मनोरंजन करता रहा है। राजस्थान और गुजरात में - विशेषतः सौराष्ट्र में इसे दसवाँ वेद माना गया है। भक्ति, श्रृंगार और नीति के साथ ही यह वीर रस के लिए भी अत्यन्त उपयोगी माना गया है। अब तो आधुनिक जीवन की सभी विडम्बनाओं और संत्रासों को भी इस छंद के माध्यम से वाणी दी जाने लगी है। दोहा वस्तुतः मात्रिक छंदों में 'अनुष्टुप' की तरह प्रभावपूर्ण एवं पूज्य है यह ईसा की दूसरी शताब्दी से आज तक काव्य पद्धति के रुप में, छंद-प्रकार के रुप में और-विधा के रुप मैं अपना आसन जमाकर बैठा है ।

'किशोर-सतसई' का अवलोकन करती हूँ तो आश्चर्यचकित रह जाती हूँ । प्रबंध काव्यों के प्रणेता किशोर काबरा मुक्तक कविता में भी उतना ही प्रभावपूर्ण, बल्कि अधिक प्रभावपूर्ण लगते हैं। इस कवि की प्रबन्ध चेतना एवं मिथकीय उपलब्धियाँ की मैं पृथक रुप से कई स्थानों पर चर्चा कर चुकी हूँ ; विस्तार से लिख भी चुकी हूँ। आज इसकी सतसई पर दो शब्द लिख रही हूँ तो लेखनी हर्ष से काँप-काँप जाती है । इस कवि में इतनी संभावनाएँ हैं - यह किसी को भी नहीं पता था। क्षणिका से खण्डकाव्य और मुक्तक से महाकाव्य तक की यात्रा करनेवाला यह कवि ७०७ दोहों में जीवन एवं जगत के सभी सत्यों और संभावनाओं की परिक्र मा करता है । इसमें सप्त सोपान निर्मित किए है । जिनमें प्रकृति, पुरुष, परिवेश, पर्यवेक्षण, परिलेखन, पर्यालोचन और परिणति के माध्यम से अनुभूति के सभी आयामों को छुआ है ।

इन सप्त सोपानो को मैं संक्षेप में विवरण करना चाहती हूँ -

(१) प्रकृति :

कवि का मन प्रकृति चित्रण में बहुत रमा है। इसलिए उसने अन्य काव्यों की भांति इस सतसई में भी प्रकृति का चित्रण किया है। प्रकृति के विभिन्न उपादानों चाँद, सूरज, बादल, बिजली, तारों, भंवरे, वृक्ष, सरिता, पक्षी, फूल आदि के माध्यम से विभिन्न अवस्थाओं के मनोभाव दृश्य चित्रित किए हैं। आरम्भ में कवि शाश्वत अपरिवर्तित प्रकृति को प्रणाम करता हुआ पूज्य भाव प्रकट करता है। प्रकृति को परिभाषित करता हुआ कवि कहता है-

''सबको परिवर्तित करै, नित्य और अविराम।

किन्तु स्वयं बदले नहीं, प्रकृति तुझे प्रणाम॥''(२२)

प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत कवि ने कई मन-भावन दृश्य खींचे है। विशुद्ध प्रकृति चित्रण में सभी ऋतुओं के दृश्य प्रस्तुत किए गए हैं। यथा वर्षा ऋतु के प्राकृतिक सौन्दर्य को कवि ने बड़े ही रोचक रुप में चित्रित किया है-

''बादल विजली, इन्द्रधनु, झरमर मूसला धार।

पल - पल वर्षा कर रही, कई - कई श्रृंगार ॥''(२३)

इसी प्रकार कवि ने शीत ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु के दृश्यों को चित्रित किया है।

❖ ***शीत ऋतु :***

''उबल-उबल ओले पड़ैं, सिहर सिहर कर धाम।

बिन मौसम बरषात का, यह कैसा आयाम॥''(२४)

❖ ***ग्रीष्मऋतु :***

''उधर पसीना गिर रहा, इधर गिर रही धूप।

गरमी भी रोने लगी, देख स्वयं का रुप॥(२५)

प्रकृति के विभिन्न उपादानों वृक्ष, सुरज, हवा, पानी आदि सभी मानवजीवन के लिए अत्यावश्यक हैं। प्रकृति में व्याप्त ये वृक्ष जिनमे मानव के प्राण बसे हैं, इनके बिना जिन्दगी शून्य है। इसी भाव को कवि ने प्रकट किया है-

''वृक्ष हमारी सांस है, वृक्ष हमारे प्राण।

बिना वृक्ष के जिन्दगी, जलता हुआ मसान॥''(२६)

वृक्ष ही क्या ये हवा, जल, धूप आदि अनेक प्राकृतिक सम्पदायें भी मानव जीवन को पालते पोषते हैं और मानव जीवन में सौन्दर्य विखेरते है-

'सहवा और जल में छिपे, कोटि-कोटि परमाणु।

इस जीवन को पालते, कितने ही जीवाणु॥''(२७)

सूर्य, चाँद, तारा आदि मानव के हर्ष-शोक के भाव को प्रकट करते है। उदय से ही प्रसन्नता औ उमंग से उत्साहित करनेवाले एवं सबको काम देने वाले सूरज को भी कवि ने परिभाषित किया है-

''उगने पर उल्लास दे, ढलने पर विश्राम।

दिन भर सबको काम दे, सूरज उसका नाम॥''(२८)

कवि ने प्रकृति का आलंकारिक रुप में भी चित्रण किया है। जहाँ अन्योक्ति, उपमा, अनुप्रास, रुपक आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है- उपमा अलंकार का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

''बूँद स्वाति की सीप में, जैसे आँसु नैन।

डबडब मिलती पीर है, टपटप मिलता चैन॥''(२९)

प्रकृति से ही मानव का हर्ष-विषाद जुड़ा हुआ है। खेतों में लहलहाती फसलें, खलिहानों में रखा हुआ अन्न तथा अन्न से जुड़ा हुआ किसान, जिसका हर्ष-विषाद प्रकृति पर ही निर्भर है-

''खेतो में फसलें मिली, खलिहानों में अन्न।

और अन्न से कृषक का, जीवन हुआ प्रसन्न॥(३०)

प्रकृति चित्रण में कवि की सूक्ष्म और व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है। संवाद शैली का एक उदाहरण इस प्रकार है-

''आक धतूरे पूछते थूहर से क्यों आज,

घर आंगन वन बाग में, केवल अपना राज ?''(३१)

वर्तमान में अनुसूचित जाति और जनजाति के आरक्षण की बात को कवि ने बड़ी ही कुशलता से वाणी प्रदान की है-

''थूहर ने हँसकर कहा, सभी और सब भांति।

अब आरक्षित हो गई, अनुसूचित जन जाति ॥(३२)

आरक्षण के सम्बन्ध में उपरोक्त उदाहरण में व्यंग्य के माध्यम से कुछ प्रहार भी किया गया है। इसी प्रकार से अनेक स्थानों पर कवि का रोमानी भाव भी देखने को मिलता है-

''पँखुरी मुझको समझकर, चूम रहे श्रीमान''(३३)

(२) पुरुष :

दूसरे सोपान के पुरुष शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने आदमी के भीतरी एवं बाहरी स्वरुप को उजागर करने का प्रयास किया है। आरम्भ में कवि ने पुरुषत्त्व को परिभाषित किया है। भोजन, निंद्रा, भय मैथुन आदि को पशुता की निशानी माना है। कवि की दृष्टि में पुरुष कहाने का अधिकारी वही है जो इन सब पाशविक क्रियाओं से ऊपर उठा हुआ हो-

''भोजन निद्रा काम भय, पशुता के हैं वंश।

इनसे ऊपर जो उठा, वही पुरुष का अंश ॥''(३४)

यहाँ पर कवि ने अपने आप से प्रश्न किए हैं और स्वयं ही उनके उत्तर भी दिए हैं। जीवन क्या हैं। जीवन जन्म एवं मृत्यु के बीच एक अल्प विराम की तरह है। सारी सृष्टि किसी दूसरी अदृश्य शक्ति द्वारा संचालित है और मानव तो मात्र एक अभिनेता की भांति है जो जिन्दगी के रंग मंच पर अभिनय कर रहा है-

''रंग मंच है जिन्दगी, हम अभिनेता मात्र।

करने सबको हैं, यहाँ, अपने - अपने पात्र॥''(३५)

आज का आदमी रात दिन श्रम करता है फिर भी उसे अपने श्रम के अनुकूल फल प्राप्त नही हो पाता है। हमेशा वह यश, धन, वैभव आदि को पाने की हाय हाय में दौड़ता रहता है और 'जब उसे उनकी प्राप्ति हो जाती है तो वह उनसे मुक्ति पाने के लिए छटपटाता है। पुरुष की इसी प्रकृति को काबरा जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

''कल तक दौड़ा, ताकि मैं खूब बटोरुँ शक्ति।

आज दौड़ता शक्ति से, कैसे पाऊँ मुक्ति ?''(३६)

पुरुष के जीवन में सुख और प्रसन्नता उसके पत्नी, पुत्र एवं मित्र आदि के सम्बन्धों के ऊपर निर्भर है। इन सबका प्रेम ही पुरुष के जीवन में सौरभ बिखेरता है वर्ना प्रेम रहित जीवन तो सूखे रेगिस्तान की भांति है जहाँ सुख एवं शांति की कल्पना भी नहीं की जा सकती-

''प्रेम-रहित पत्नी मिले, स्नेह रहित संतान।

मान-रहित यदि मित्र हो, जीवन रेगिस्तान॥''(३७)

सुख एवं शांति से दूर आज का मानव धन कमाने की हाय - हाय में लगा हुआ है। उसने अपने जीवन को सुख चैन के नाम नीलाम कर दिया है और इसी हाय-हाय में उसके जीवन का अन्त हो जाता है। काबरा जी ने दोहों के माध्यम से अपने अन्तःकरण की पीड़ा को व्यक्त किया है। जिनकी मित्रता पर कवि बड़ा घमण्ड करता था, वे ही मित्र दुश्मन से भी अधिक धोखे बाज निकले, विश्वासघाती हुए-

''कल तक जिनकी मित्रता, पर करता था नाज।

वे दुश्मन से भी अधिक, निकले धोखेबाज॥''(३८)

आज की दुनिया में बफादारों और मित्रों का बड़ा अभाव है सभी और दुश्मन और बेवफा लोग ही दिखाई देते हैं। कवि की दृष्टि में मानव की मन मौजी और स्वेच्छा चारिता की भावना का ही ये परिणाम है-

''दुनिया सारी बेवफा दुश्मन लोग तमाम।

अपने मन की जिन्दगी, जीने का परिणाम॥''(३९)

वर्तमान में कोई भी विश्वास योग्य नहीं रह गया है। जिसे निश्छल और निस्वार्थ मानकर भरोसा किया जाय। कवि की व्यक्तिगत पीड़ा उसके दोहों में दिखाई देती है-

''ऐतवार तुम पर किया, छोड़ सभी छल छंद।

तुम भी निकले बेवफा, कौन भरोसेमंद॥''(४०)

कवि जीवन से पलायन करने का पक्षघर नहीं है। वह जीवन को अच्छी-बुरी परिस्थितियों में भी जीना चाहता है उसकी दृष्टि में भोग ही योग है-

''मैंने चाहा भागना, तुमने चाहा भोग।
तुम तो योगी हो गये, मुझे लग गया रोग॥''(४१)

सांसारिक जीवन का दृष्टिकोण भोगवादी है परन्तु मृत्यु किसी पर रहम नहीं करती। सभी को एक न एक दिन मृत्यु का वरण करना ही पड़ता है। परन्तु कवि ऐसी जिन्दगी का पक्षधर हैं जिसमें विवशता न हो । मजबूर एवं परतंत्र जिन्दगी से तो मृत्यु ही श्रेष्ठ है-

'समौत बड़ी ही बेरहम, मौत बुरा पैगाम।
किन्तु मौत से भी बुरा, मजबूरी का नाम॥''(४२)

आज के यांत्रिक युग की आपाधापी और संघर्ष भरी जिन्दगी में कवि प्यार की तलाश कर रहा है-

''जीवन की इस धूप में, खोज रहा हूँ प्यार।''(४३)

पाप और अपराध से अर्जित की गई सम्पत्ति से आज के लोग प्रसन्नता का अनुभव करते हैं परन्तु काबरा जी की दृष्टि में यह ठीक नहीं है । वे तो परिश्रम के द्वारा मिलनेवाली दो रोटियों में संतुष्ट हो जाने को ही सुख मानते हैं-

''सभी खा रहे पेट भर, पाप और अपराध।
बिना पाप के रोटियाँ, मेरे मन की साध॥''(४४)

काबरा जी ने दोहों के माध्यम से सामाजिक रिश्तों पर प्रकाश डाला है। पत्नी, बहू, माँ, पिता आदि के सम्बन्धों और मनोभावों को बड़े कौशल से उभारा है। नई नवेली दुलहन की पीड़ा को एक दोहे में बाँधकर काबरा जी ने एक ऐसा दृश्य उपस्थित किया है जिसमें नव-विवाहिता का तन तो ससुराल में रहता है लेकिन मन पीहर में केन्द्रित है-

''तन आया ससुराल पर, मन पीहर में कैद।
नई बहू की पीर का, जान गये सब भेद॥''(४५)

दोहों के माध्यम से आज के आदमी के दोहरे स्वरुप को भी उभारा गया है जहाँ आदमी ऊपर से सीधा-सादा और नेक दिखाई देता रहता है परन्तु भीतर से ऐसा नहीं होता। बाँस की तरह उसके पोर-पोर में गाँठें और रोम-रोम में फाँसे होती हैं-

''तुम उतने सीधे लगे, जितने सीधे बाँस।
पोर-पोर में गाँठ है, रोम-रोम में फाँस॥''(४६)

प्रेमी हृदय के अन्तः भावों को प्रकट करने में काबरा जी बहुत सफल हुए है-

''मुक्ति प्रेम का नाम है, प्रेम-मुक्ति है शूल।
पत्नी फूहड़ सी लगे, और प्रेमिका फूल॥''(४७)

जीवन में दूसरों के ऐहसानों का भार उतारना सरल नहीं है। ऐहसानो के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करके हम उसके भार को और अधिक बढ़ाते हैं। काबराजी का विचार है कि आभार प्रदर्शन मात्र से ही किसी की ऐहसानों के बोझ कप नहीं उतारा जा सकता बल्कि ऐहसानों के बोझ को कुछ करके ही कम किया जा सकता है-

''नहीं उतरना सरल है, ऐहसानों का भार।
और बढ़ाते भार तुम, कह करके आभार॥''(४८)

आधुनिक युग में जी रहा मानव भौतिक साधनो जुटाने में लगा है-

''अब बीबी के शीश पर टी वी हुआ सवार॥''(४९)

इन भौतिक साधनों में आदमी इतना खो गया है कि वह अपने जीवन के मूल उद्देश्य से ही भटक गया है। बेटे - बेटियों और नाते-रिश्तेदायिों के गुणा भाग में ही उलझा हुआ है-

''बेटे धन, ऋण बेटियाँ, गुणा भाग ससुराल।
पूरा जीवन हो गया, करते यही सवाल॥''(५०)

कवि के मन में भौतिक उपलब्धियों की इच्छा नहीं है वह तो परिवार एवं समाज में स्नेह का आकांक्षी है। यही स्नेह समाज के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि है-

''वह करता उपलब्धि की अन्तिम सीमा पार।

जिसको घर बाहर मिले, स्नेह और सत्कार॥''(५१)

सामाजिक रीति रिवाजों और संस्कारों के स्वरुप की मौलिक व्याख्या भी इन दोहों में की गई है। विवाह संस्कार को कवि ने भोग वासना के शमन का रुप माना है यदि विवाह के पश्चात भी भोग वासना समाप्त नहीं होती तो विवाह अर्थ हीन हो जाता है-

''भोग वासना शमित हो, यही लग्न का अर्थ।

शेष रह गई वासना, तो विवाह है व्यर्थ॥''(५२)

मनुष्य जीवन बीतता चला जाता है फिर भी कुछ और पाने की लालसा बनी ही रहती है। इस भावना से कवि काबरा बड़े दुखी हैं और वे परमात्मा से प्रार्थना भी करते हैं कि मनुष्य के जीवन की कामना को परिवर्तित करने की कृपा करें-

''बरष गये बरषों बरष, तरस न मिटती अल्प।

परस तुम्हारा जब मिलै, तब हो कायाकल्प॥''(५३)

संसार के समस्त प्राणी मृत्यु से भयभीत रहते हैं। यही काल की परम्परा रही है कि लोग हमेशा उससे डरते रहें। लेकिन कवि काबरा मृत्यु से भयभीत नहीं हैं। उन्होंने इसी निर्भय आत्म भाव को दोहे के माध्यम से व्यक्त किया है-

''बाल-युवक-बूढ़ा डरे, यही काल की रीति।

मैं किशोर मुझको नहीं, जरा मरण से भीति॥''(५४)

(३) परिवेश :

इस खण्ड में कवि काबरा ने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिवेशों की स्थिति को स्पष्ट किया है। नेताओं के सामाजिक स्वरुप के ऊपर उन्होंने करारा व्यंग्य किया है। वे लोगों को भ्रमित कर अपने घरों को ही भरने में लगे हुए हैं-

''बात बनावे, घर भरे, और डुबावे देश।

नेता में अवतरित हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश॥''(५५)

नेताओं की तरह ही विद्यार्थियों की पतनोन्मुख स्थिति पर भी उन्होंने व्यंग्य किया है। हाथ में डिगरियाँ लिए विद्यार्थी दर-दर की ठोकरें खाता फिर रहा है। काबरा जी ने विद्यार्थी की करुण और दीन दशा इस प्रकार चित्रित की है-

'समुख पर करुणा दैन्य है, कर ले डिग्री-पात्र।

नौकरियों की खोज में, दर-दर घूमें छात्र॥''(५६)

मानव में समाप्त होते जा रहे कृतज्ञता के भाव के प्रति कवि ने घोर निराशा व्यक्त की है। जो धरती मनुष्य को अमूल्य जीवन देती है। मनुष्य उसी धरती को प्रदूषण से भरा रहा है-

''धरती ने हमको दिये निर्मल जीवन सत्व।

बदले में हमने उसे, दिये प्रदूषित तत्व॥''(५७)

आज के युग में मनुष्य की कुछ ऐसी स्थितियाँ बदल गई हैं कि अपराध करने वाला साफ बच जाता है और सजा किसी और को भुगतनी पड़ती है। यह जीवन की विडम्बना ही है कि दोषियों को सजा नहीं मिल पाती और निर्दोष फाँसी पर झूलते हैं-

''तुम करते अपराध सब हम पाते हैं जेल।

वे फाँसी पर झूलते, क्या किस्मत के खेल॥''(५८)

सत्य और ईमानदारी मनुष्य से कोसों दूर है झूठ और रिश्वत का बोलवाला है पापी मौज मस्ती कर रहे हैं और धर्मात्मा दुर्दशा में हैं-

''इस अथाह संसार में, रिश्वत ही है सार।

डूब गये धर्मात्मा, पापी पहुँचे पार॥''(५९)

डॉ. काबरा को भारत का भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होता है। आज गीता के उपदेश का अर्थ तोड़ा मरोड़ा जा रहा है। कर्तव्य को भूलकर लोग केवल अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। हिन्दु मुसलमान, सिकख और ईसाई सभी सम्प्रदायों के लोग आपस में लड़ रहे हैं । आज का धर्म शांति पर्याय नहीं रहा। धार्मिक कट्टरता ने सामाजिक जीवन को विषाक्त कर दिया है-

''हिन्दू, मुस्लिम, सिकख हो या ईसाई, जैन।
सबने मिलकर धर्म का, छीन लिया है चैन॥''(६०)

देश में चारों और भूख और गरीबी फैली है। लूट-पाट, बेईमानी और हिंसा का आतंक बना हुआ है। विधाता ने हमारे देश के भाग्य में क्या यही लिखा है ? काबरा जी ने एक दोहे में यथार्थ स्थिति उभारी है-

''भूख गरीबी काहिली, लूटपाट आतंक।
भारत के माथे लिख, यही भाग्य के अंक॥''(६१)

आज के युग में धर्म के प्रति मनुष्य की श्रद्धा और आस्था सात्विक नहीं रही। भौतिक वैभव की भूख ने श्रद्धा और आस्था के रुप बदल डाले हैं। भौतिक सम्पत्तियाँ तिजोड़ियों में बन्द रहती हैं और गीता कुरान बाहर पड़े रहते हैं । तात्पर्य यह है

''बाहर आले में रखे, गीता और कुरान।
भीत ताले में रखे, दौलत और दुकान॥''(६२)

व्यक्तिगत सुख और वैभव के साधन इकट्ठे करने के साथ देश की उन्नति के लिए भी कुछ करने के लिए डॉ. काबरा ने प्रेरणा प्रदान की है-

''तन मन पर धन खर्च कर, खूब हो गया सुर्ख।
अपने प्यारे वतन की, सुध कब लेगा मूर्ख॥''(६३)

इस संसार का समस्त वैभव मनुष्य के लिए ही है। विधि के विधान के अनुसार मानव जीवन सर्वश्रेष्ठ है। काबरा जी ने मनुष्य को ईश्वर से भी बढ़कर माना है-

''अखिल विश्व के राज्य का, जिसके लिए विधान।

ईश्वर से कितना बड़ा, धरती का इंसान॥''(६४)

परन्तु यही इंसान अपनी मूल प्रकृति खोकर हिन्सक और विलासी बन गया है। भोग विलास ने उसे अन्धा कर दिया है-

''आज आदमी को किया, इन चारों ने अन्ध।

पैसा हिंसा मूढ़ता और यौन सम्बन्ध॥''(६५)

कवि काबरा ने अपने दोहों में वर्तमान परिवेश को बड़े कौशल के साथ प्रकट किया है। राम जन्म भूमि की चर्चा करते हुए उन्होंने उसे कारागार की संज्ञा दी है जहाँ भगवान राम गर्भगृह में कैद और बाहर उनकी सुरक्षा के लिए सैनिकों का पहरा है-

''जग की रक्षा क्या करे, जगन्नाथ लाचार ?

उनकी रक्षा के लिए, फौज खड़ी तैयार॥''(६६)

महानगरों में मानव जीवन विविध समस्याओं से झूझता रहता है। दैहिक आवश्यक्ताओं की पूर्ति में मनुष्य यंत्रवत् लगा रहता है। महानगरों की व्यस्त जिन्दगी को काबरा जी ने यांत्रिक जिन्दगी कहा है-

''महानगर की व्यस्तता जैसे कोई आग।

स्नान-ध्यान-भोजन-शयन, सब में भागम भाग॥''(६७)

आज के युग का चिन्तन दर्शन और भाव विकृत हो गया है। खिलौने की जगह बच्चों को हथियार थमाये जा रहे है-

''उन्हें खिलौने की जगह थमा रहे हथियार।''(६८)

४. पर्यवेक्षण :

पर्यवेक्षण का तात्पर्य जांच पड़ताल होता है। कवि काबरा एक पर्यवेक्षक के रुप में विविध स्थितियों का पर्यवेक्षण कर रहे हैं और इस पर्यवेक्षण में उन्होंने कुछ पोलें भी खोली हैं। तीर्थों में हो रहे अनाचार पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा है-

''हम तो जाते तीर्थ में, होने का निष्पाप।
तीर्थ भला जाये कहाँ, लेकर सबके पाप ?''(६९)

कविता में संवाद सौन्दर्य उपस्थित करने की परम्परा पुरानी है। काबरा जी ने भी ऐसे ही कुछ संवादात्मक चित्र रखे हैं-

''उगते सूरज ने कहा, दीपक ले कर थाम।
मैं पहरे पर आ गया, तू करले विश्राम॥''(७०)

''दीपक ने हंस कर कहा सुबह भली या शाम।
जब तक बाती तेल है, मुझे कहाँ विश्राम॥''(७१)

रीति कालीन कवि बिहारी की भांति डॉ. काबरा ने भी श्रृंगार वर्णन की परम्परा में नायिका के सौन्दर्य को चित्रित किया है। नायिका का गोर रंग काले बाल और खिल-खिलाहट भरी हँसी देखकर कवि को अमावस में पूर्णिमा का आभास होता है-

''काली लट गोरा बदन, मुख पर खिलखिल हास।
मुझे अमावस में हुआ, पूनम का आभास॥''(७२)

कवि की दृष्टि में दुनिया में भावुकता से काम नहीं चलता, मनुष्य को गम्भीर बनना पड़ता है। भावुक होना जरुरी नहीं है जबकि भावुकता एक कवि के लिए आवश्यक तत्त्व है-

''दुनियादारी के लिए, भावुकता है दोष।
किन्तु सर्जना के लिए, यह अमृत का कोष॥''(७३)

आज समाज में औपचारिक व्यवहार बढ़ता जा रहा है। मनुष्य की संवेदनशीलता समाप्त होती जा रही है-

''सूख गई संवेदना, प्रथा रह गई शेष।''(७४)

५. परिलेखन :

इस खण्ड में कवि काबरा ने लेखन से सम्बन्धित अपने हृदयस्थ भावों एवं विचारो को दोहों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। कविता के माध्यम से काबरा ने अपने मन की पीड़ा को व्यक्त किया है जिसे वो स्वयं स्वीकार करते हैं यथा-

''अक्षर - अक्षर में छिपी मेरे मन की पीर।''(७५)

कविता को वादों या खेमों में नहीं बांटा जा सकता। लेकिन आज अनेक लोगों ने कविता को वादों में बांधकर सके साथ अन्याय किया है। कविता तो नदी का वह जल है जो कल-कल करता प्रवाहित होता रहता है।

''कविता सरिता की तरह, निर्मल सरल प्रवाह।
उसे बाद में बांधना सबसे बड़ा गुनाह॥''(७६)

रस निष्पत्ति को कवि ने दोहों के माध्यम से व्यक्त किया है- भाव, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है-

''भाव बीज अनुभाव जल, औ विभाव उत्पत्ति।
संचारी सब फूल है, यह है रस-निष्पत्ति॥''(७७)

सच्चा कवि तो संसार में भोग-विलास एवं वैभव से दूर रहता है। कवि तो थोड़े में संतुष्ट होने वाला है। उसके लिए दो वक्त का भोजन, कागज, कलम और दवात के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए-

''आसन, भोजन, दो वसन, कागज कलम दवात।
इतना कवि को मिल गया, फिर पूछो मत बात॥''(७८)

सफल कवि वही है जो व्यक्तिगत स्वार्थ भुलाकर मानव समाज को प्रेम पूर्वक सही राह की और प्रेरित करे। आलोचनाओं से दूर रहे। तीखी एवं कटु पूर्ण आलोचनाओं वाला कवि सफल नहीं हो सकता है। ये तो कवि को असफता की राह पर ले जाते हैं।

''बड़े प्रेम से सफल कवि, देता सही सलाह।
तीखी कटु आलोचना, असफल कवि की राह॥''(७९)

सच्ची कविता पर समय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता वह शाश्वत एवं चिरंतन है। महा प्रलय के बाद तक जीवित रहती है-

''सच्ची कविता जी रही, महाप्रलय के पार।''(८०)

व्यक्ति, देश, काल एवं अन्य प्रभावों से प्रभावित होने वाला कवि संसार में धन्यता नहीं पा सकता। संसार में वही कवि महाकवि कहलाने का अधिकारी है जो अपने में काव्य को मुखरित करता है।

''नहीं देश या काल ही, नहीं व्यक्ति या अन्य।
परम सत्य जिसने जिया, वही महाकवि धन्य॥''(८१)

गीत, गजल एवं विभिन्न छंदो को स्वतंत्र रुप से लिखने के पश्चात् भी कवि स्वयं को अभिव्यक्त न कर सकने की अपनी विवशता को प्रकट करता है-

''गीत लिखे, गजलें लिखीं, लिखे छंद स्वच्छंद।
जब मैंने खुद को लिखा, कलम हो गई बन्द॥''(८२)

६. पर्यावलोचन :

किशोर ने समाज को देखा है। परखा है। और उसका गहन अध्ययन किया है। यह बात उनके दोहों को देखकर कही जा सकती है। समाज के चारों वर्णो-ब्राह्मण, बनिया, क्षत्रिय, शुद्र की प्रकृति को कवि ने बड़े ही सटीक रुप में उभारा है-

''ब्राह्मण खुश बादाम से, क्षत्रिय किए सलाम।

बनिया लिए छदाम से, शूद्र दिए आराम॥''(८३)

नारी के स्वभाव वैचित्र्य को भी दोहों में वर्णित किया गया है-

''औरत जो बेदर्द हो, करे दर्द की बात।

औरत जो बेपर्द हो, करे मर्द की बात॥''(८४)

इंसान बदल गया है। अब वह अनैतिक तरीके - छल, धोखे, बेईमानी आदि से उपलब्धियों को अर्जित कर रहा है। कवि की दृष्टि से सांप और बिच्छू के काटने का तो उपाय हो सकता है लेकिन आदमी के काटने का नहीं-

''काटे बिच्छु, सांप तो जहर उतारा जाय।

किन्तु काट ले आदमी, उसका नहीं उपाय॥''(८५)

दोहों के माध्यम से कवि ने अपने विचारों को भी प्रकट किया है। कवि कर्मवादी है इसीलिए वह कर्मफल के सिद्धान्त को मानता है। पूर्व में किए गए सत्कर्म ही वर्तमान के भाग्य बनते है-

''भाग्य यही - कल जो किया, भोगो उसको आज।

कर्म यही कल के लिए, अच्छे कर लो काज॥''(८६)

इसी प्रकार-

''किस्मत नागिन की तरह, और कर्म है बीन।''(८७)

प्रस्तुत दोहों में कवि ने भरपूर रुप में अपने मौलिक 'चिन्तन दर्शन' को सरल भाषा-शौली में अभिव्यक्ति किया है यथा-कला और विज्ञान को कवि ने दुःख एवं सुख का संतुलन माना है-

''दुःख की पूंजी धैर्य है, सुख की पूंजी ज्ञान।

दोनों का संतुलन ही, कला और विज्ञान॥''(८८)

इसी प्रकार सुख-दुःख के दर्शन को भी कवि ने अभिव्यक्त किया है-

''दुःख का सुख है नम्रता, सुख का दुःख है दम्भ।

दोनों के सीमान्त पर, दर्शन का प्रारम्भ॥''(८९)

सत्य बोलने के लिए बुद्धि की आवश्यक्ता नहीं होती। बिना सोच विचार कर भी सत्य बोला जा सकता है। लेकिन झूठ बोलना सरल नहीं है। उसके लिए याददास्त तो तेज होना जरुरी है।

''सच कहने में है भला, अगर बुद्धि है ठूँठ।

स्मरण शक्ति यदि तेज है, तभी कहोगे झूठ॥''(९०)

व्यक्ति को दुःख में रोना नहीं चाहिए। क्योंकि रोने का कुछ भी परिणाम नहीं होता बल्कि दुःख को तो प्रसन्नतापूर्वक, सहन करना चाहिए, जिसने भी संसार में दुःख को हँसकर सह लिया वही संत है-

''दुखःड़ा रोने से यहाँ, क्या आया परिणाम ?

हँसकर जो दुःख सह गया, संत उसी का नाम॥''(९१)

खण्ड में कवि ने प्रेम को विभिन्न परिभाषाओं में व्यक्त किया है - प्रेम एक कर्तव्य है। प्रेम एक अधिकार है। प्रेम अपेक्षा का ही दूसरा नाम है। प्रेम में व्यक्ति बदले में कुछ चाहता है, अगर उसकी चाह की उपेक्षा की तो फिर वही प्रेम प्रतिशोध का रुप ले लेता है।

''भले अपेक्षा प्रेम की, सहती रहे विरोध।

किन्तु उपेक्षा प्रेम की, बन जाती प्रतिशोध॥''(९२)

<u>७. परिणति :</u>

प्रसन्नता ही सर्वोपरि भक्ति है। जो संसारी दुःखो से प्रभावित नहीं होते दुःख में भी मुस्कुराते रहते है। सुख एवं दुःख में समभाव बनाए रखतें हैं। अन्दर से स्थिर रहते हैं । वही सच्चे इंसान है-

''आँखों में आंसू रखे, होठों पर मुस्कान।

लेकिन भीतर स्थिर रहे, वह सच्चा इंसान॥''(९३)

संसार की प्रत्येक वस्तु सभी तक अच्छी लगती है जब तक व्यक्ति नीरोग है। मानसिक एवं शारीरिक रोगी को सारा संसार अस्त व्यस्त दिखाई देता है-

''तन-मन यदि नीरोग है, अणु-अणु है आत्मस्थ।
अस्त व्यस्त संसार है, तन-मन यदि अस्वस्थ॥''(९४)

संसार एक माया जाल की भाँति है। इसमें व्यक्ति एक बार उलझ गया फिर निकलना बड़ा ही दुष्कर है। कवि भी इसी संसारी माया जाल में उलझा हुआ है। वह बाहर निकलने के लिए छटपटा रहा है तभी तो वह नंदकिशोर से गुहार लगा रहा है-

''उलझ गया संसार में कैसे पाऊँ छोर ?
सुलझा दो इस गाँठ को, मेरे नंदकिशोर॥''(९५)

काव्य के अन्त में कवि लेखन की शाश्वता अमरता एवं संसार से मुक्ति की कामना करता है-

दो इच्छाँएँ शेष अब, बाकी सबसे त्राण।
मेरे शब्द चिरायु हो, मुझे मिले निर्वान॥''(९६)

गंगा यमुना और सरस्वती के त्रिआयामी बिम्बों के माध्यम से कवि जीवन की पावनता का निर्देश करता है ---

''तन यमुना का नीर है, मन गंगा की धार।
सरस्वती प्रज्ञा सदृश, यह प्रयाग का सार ॥''(९७)

मन को कवि ने लौकिक और अलौकिक सभी परिदृश्यों का मूल माना है । हमारा चिन्तन उसे कहाँ से कहाँ ले जा सकता है------

''मन है मनभर दूध-सा, चिन्तन नींबू फाँक ।
जम जाए तो लाख है , फट जाए तो खाक ॥''(९८)

आज के मानव की विडम्बनाओं और असफलताओं पर कवि ने कई दोहों में व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ दी हैं । पूर्व और पश्चिम के विज्ञान ने मनुष्य को किन-किन नजरों से देखा है ; देखिए -------

''पहुँच गया हैं चाँद पर पश्चिम का विज्ञान ।
रोटी तक पहूँचा नही पूरब का इन्सान ॥''(९९)

प्रेम, पीडा, प्रारब्ध और परिवेश से जुडे कई प्रश्नों को उठाया है , कवि ने दोहे तो पूरे चित्र की तरह बडे फलक पर फैले नजर आते हैं, जैसे ------

''मंदिर से मस्जिद बनी, मस्जिद से मैदान ।
पत्थर मैं ही खो गया ; मेरा हिन्दुस्तान ॥''(१००)

भूख, गरीबी, काहिली, लूटपाट, आतंक ।
भारत के माथे लिखे यही भाग्य के अंक ॥(१०१)
पाँवों मैं बैसाखियाँ, हाथों में हथियार ।
लँगडी-लूली यह सदी आ पहूँची इस पार ॥(१०२)

'किशोर सतसई' में संक्षिप्ति, गोपन, सारल्य, तारल्य, सांकेतिकता; लाधव, अर्थ गाभीर्य, साहजिकता, रमणीयता, लोकप्रियता; लोकरंजकता, श्रुति-सुखदता, चित्रात्मकता, शाश्वती और समसामयिकता का मंजुल मिलन हुआ है। इन दोहों देखकर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दोहा बनाया नहीं जाता, बन जाता है। किशोर में छिपा नन्दकिशोर स्वयं को भी ढूँढ रहा है इनमें स्वयं के त्राण का उपाय भी ढूँढ रहा हैं इनमें ------

उलझ गया, संसार में कैसे पाऊँ छोर ।
सुलझा दो इस गाँठ को मेरे नन्दकिशोर ॥(१०३)

कवि ने जिन दो इच्छाओं को पूर्ण करने की प्रार्थना की है वे पूरी हों,- यही परमात्मा से प्रार्थना हैः

''दो इच्छाएँ शेष हैं, बाकी सबसे त्राण ।
मेरे शब्द चिरायु हो, मुझे मिले निर्वाण ॥''(१०४)

संदर्भ सूची :-

१. सारथि मेरे रथ को लौटा ले - डॉ. किशोर काबरा, अभिनव भारती प्रकाशन, अहमदाबाद। सन् १९७६ पृ. ७२

२. सारथि मेरे रथ को लौटा ले - डॉ. किशोर काबरा, अभिनव भारती प्रकाशन, अहमदाबाद। सन् १९७६ -पृ. ६

३. टूटा हुआ शहर - डॉ. किशोर काबरा, प्रकाशक :- साहित्य सहकार दिल्ली, सन् १९८३ - पृ. १२

४. टूटा हुआ शहर - डॉ. किशोर काबरा, प्रकाशक :- साहित्य सहकार दिल्ली, सन् १९८३ - पृ. २२

५. टूटा हुआ शहर - डॉ. किशोर काबरा, प्रकाशक :- साहित्य सहकार दिल्ली, सन् १९८३ - पृ. ३१

६. उत्तर महाभारत - डॉ. किशोर काबरा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९९० - पृ. १२

७. साहित्यिक निबंध : कलम, कागज और कविता - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९४, - पृ. २३८

८. ऋतुमती है प्यास - डॉ. किशोर काबरा, चिन्ता प्रकाशन, पिलानी राजस्थान, सन् १९९० - पृ. १४

९. ऋतुमती है प्यास - डॉ. किशोर काबरा, चिन्ता प्रकाशन, पिलानी राजस्थान, सन् १९९० - पृ. १०

१०. आज यौवन ने पुकारा देश को - डॉ. किशोर काबरा, प्रकाशक सद्विचार परिवार, अहमदाबाद, सन् १९८५ - पृ. १६

११. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ. ११०

१२. हासिएँ की कविता - डॉ. किशोर काबरा, कर्णावती प्रकाशन, अहमदाबाद - सन् १९९५ - पृ. ५३

१३. ताप्तीलोक - साहित्यविचार, संस्कृति चिंतन एवं जीवन विवेक का पाक्षिक उद्घोष - अंक - ०१, १६ जुलाई, २००७ - पृ. ११

१४. ताप्तीलोक - साहित्यविचार, संस्कृति चिंतन एवं जीवन विवेक का पाक्षिक उद्घोष - अंक - ०१, १६ जुलाई, २००७ - पृ. १२

१५. ताप्तीलोक - साहित्यविचार, संस्कृति चिंतन एवं जीवन विवेक का पाक्षिक उद्घोष - अंक - ०१, १६ जुलाई, २००७ - पृ. १२

१६. ताप्तीलोक - साहित्यविचार, संस्कृति चिंतन एवं जीवन विवेक का पाक्षिक उद्घोष - अंक - ०१, १६ जुलाई, २००७ - पृ. १३

१७. तात्तीलोक - साहित्यविचार, संस्कृति चिंतन एवं जीवन विवेक का पाक्षिक उद्घोष - अंक - ०१, १६ जुलाई, २००७ - पृ. १३

१८. तात्तीलोक - साहित्यविचार, संस्कृति चिंतन एवं जीवन विवेक का पाक्षिक उद्घोष - अंक - ०१, १६ जुलाई, २००७ - पृ. १३

१९. तात्तीलोक - साहित्यविचार, संस्कृति चिंतन एवं जीवन विवेक का पाक्षिक उद्घोष - अंक - ०१, १६ जुलाई, २००७ - पृ. १३

२०. तात्तीलोक - साहित्यविचार, संस्कृति चिंतन एवं जीवन विवेक का पाक्षिक उद्घोष - अंक - ०१, १६ जुलाई, २००७ - पृ. १५

२१. तात्तीलोक - साहित्यविचार, संस्कृति चिंतन एवं जीवन विवेक का पाक्षिक उद्घोष - अंक - ०१, १६ जुलाई, २००७ - पृ. १९

२२. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ११

२३. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ११

२४. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १५

२५. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १८

२६. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १३

२७. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १३

२८. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १६

२९. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १४

३०. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १६

३१. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १६

३२. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १७

३३. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १८

३४. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २१

३५. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २१

३६. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २५

३७. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २४

३८. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २५

३९. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २६

४०. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २६

४१. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २६

४२. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २७

४३. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २७

४४. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २७

४५. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. २९

४६. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ५

४७. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ३४

४८. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ३५

४९. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ३६

५०. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ३६

५१. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ३७

५२. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ३९

५३. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४०

५४. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४०

५५. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ५१

५६. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४१

५७. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४२

५८. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४२

५९. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४३

६०.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४४

६१.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४४

६२.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४६

६३.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४८

६४.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४८

६५.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४९

६६.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ५०

६७.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ५४

६८.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ५९

६९.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ६७

७०.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ६८

७१.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ६८

७२.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ६९

७३.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७०

७४.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७०

७५.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७१

७६.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७२

७७.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७३

७८.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७५

७९.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७५

८०.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७६

८१.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७६

८२.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७६

८३.किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७७

८४. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७७

८५. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७८

८६. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७८

८७. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७८

८८. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ८१

८९. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ८२

९०. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ७९

९१. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ८९

९२. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ९१

९३. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ९३

९४. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ९४

९५. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १११

९६. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १११

९७. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १०३

९८. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १००

९९. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ५४

१००. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४१

१०१. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ४४

१०२. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. ५६

१०३. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १११

१०४. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन - १९९७, पृ. १११

****

अध्याय-६

उपसंहार

डॉ. किशोर काबरा रचित 'किशोर सतसई' सरल, गोपनीय एवं प्रभावपूर्ण है । जब सतसई पढ़ने बैठती हूँ तो लगता हैं मानों एक ही बैठक में पूर्ण कर लूँ - इतनी ज्ञानबोध्य भी लगती है । किशोर काबराजी ने लगभग प्रत्येक वर्ष पाठकों का कुछ न कुछ नया देने की प्रतिज्ञा सी ली हुई जान पड़ती है । तभी तो उनकी लेखनी ने महाकाव्य, खंडकाव्य के बाद सतसई अपनी परम्परा में अपना कुछ योगदान देने की ठानी, जिसकी परिणति 'किशोर-सतसई' आज पाठकों के बीच हैं । ७०७ दोहोवाली यह रचना सतसई परम्परा की अविस्मरणीय उपलब्धि कही जा सकती है । यह रचना सतसई परम्परा की नवीनतम और सार्थक कड़ी है । जिसे कि प्रतिनिधि सतसई के रुप में देखा जा सकता है । विश्व साहित्य परम्परा में 'दोहा' सर्व प्रचलित छंद रहा है । हिन्दी साहित्य के उद्‌भव काल से लेकर अद्यतन इस छंद ने अपनी पकड को मजबूती प्रदान की है । आज इस छंद का महत्व इतना बढ गया है कि पश्चिमोतर राज्य इसे 'दसवें वेद' के रुप में स्वीकारने लगे हैं । और तो और आधुनिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों का बडी जीवन्तता के साथ इसी छंद के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है फिर किशोर काबरा जैसा समायुनुकुल कवि भला इसका अपवाद कयों रहता । कवि की इसी उपलब्धि के संदर्भ में स्वामी (डॉ.) ओम् आनंद सरस्वतीजी लिखते हैं - क्षणिका से खण्डकाव्य और मुक्तक से महाकाव्य तक की यात्रा करनेवाला यह कवि ७०७ दोहों में जीवन और जगत् के सभी सत्यों और संभावनाओं की परिक्रमा करता है। वस्तुतः कवि किशोरने इन दोहों मे कबीराना अंदाज में अपना मंतव्य स्पष्ट किया है । इन ७०७ दोहों को कवि ने सात सोपानों, 'प्रकृति' 'पुरुष', 'परिवेश' पर्यालोचन', परिणति, 'पर्यवेक्षण' और 'परिलेखन' के माध्यम से प्रस्तुत किया है । वस्तुतः यदि ये कहा जाए कि ७०७ दोहों के इस सतरंगी गुलदस्ते में रुप, रंग, सौंदर्य और उल्लास का अद्वितीय संगम है तो कोई अतिश्योक्ति न होगी । कवि ने कई दोहों में यह माना है कि 'मन' लौकिक अथवा अलौकिक सभी शक्तियों से परे है । शायद इसी कारण इसकी गति पूरे ब्रह्माण्ड मे सर्वाधिक है । इसी को लक्ष्य कर कवि कहता है -

''मन है मन भर दूध - सा, चिन्तन नीबूँ फाक ।

जम जाए तो लाख है, फट जाए तो खाक ॥(१)

कहीं - कहीं कवि ने मात्र एक की दोहे में जीवन के सार का वर्णन कर दिया है -

''ब्रह्मचर्य की नींव पर है गृहस्थ का वास ।

वानप्रस्थ उसका शिखर स्वर्ण कलश संन्यास ॥(२)

एक सुसंस्कृत बहु की घर को स्वर्ग के समान बना देती है किन्तु आज फैशन के इस अंधे युग में नई बहुएँ अपने सास, ससुर और ननंद को अतिरिक्त भार ही समझती है । इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कवि कहता है कि -

''पति सुविधा भोगी बना, बच्चे सब संत्रास ।

सास ससुर अड़चने, अगर नई बहु बिंदास ॥ (३)

प्रकृति और जीवन के अटूट सम्बन्धों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है -

''सागर से बादल बँधा, बादल से जलधार ।

जलधारा से है बँधा, यह पूरा संसार ॥''(४)

प्रकृति को मानवीकरण रुप में चित्रित करते हुए कवि ने उसमें असीम संवेदनाओं को खोज निकाला है -

''सरे रहा नंगा हुआ सेमल वस्त्र निकाला ।

काली टेसू की कली हुई शर्म से लाल ॥''(५)

आज भारत देश में कर्फ्यु और हड़तालों का ही बोलबाला है । हर दूसरे - तीसरे दिन कोई ने कोई सरकारी अथवा अर्ध सरकारी संस्था हडताल का झंडा बूलंद किए रहती है जिसकी आज आम आदमी पर ही गिरती है -

''बस, ट्रक, ट्रेने बंध है, रिक्शों की हडताल,

माँ का टेलीग्राम हैं जल्दी आ भोपाल ॥(६)

कवि किशोरजी का कथन है कि यदि समाज में सिर उठाकर जीना चाहते हो तो स्वयं को कभी भी बड़ा मत समझो । हंमेशा ही ''में'' की प्रकृति से दूर रहों क्योंकि इसी ''मैं के चलते आदमी जीवन पर्यन्त दुःख भोगता है । इस तथ्य का कविने बड़े ही प्रतीकात्मक अंदाज में प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि -

''छोड मुकुट जिसमें छिपे कंटक और कलंक ।

पैरों मे जूते पहन, काँटे लग न पंक ॥(७)

कवि ने लोगों की तीर्थाटन वृति पर बड़े व्यंग्यात्मक लहजे में कहा है -

''हम तो जाते तीर्थ में होने को निष्पाप ।

तीर्थ भला जाए कहाँ, लेकर सबके पाप ॥''(८)

किशोर काबरजी की मान्यता यही रही है कि कविता तो कविता तभी है जब वह किसी भी 'वाद' से मुक्त हो -

''कविता, सरिता की तरह, निर्मल सरल प्रवाह ।

उसे वाद में बाँधना, सबसे बड़ा गुनाह ॥(९)

कबीर की तरह ही किशोर काबरा ने भी माया को महाठगिनी (नर्तकी) माना है । वे कहते हैं की यदि नर्तकी फिसल गई तो निश्चित रुप से धनवान व्यक्ति एकदम कंगाल हो जाएगा तथा फिर उसके पास सिवाय भजन - कीर्तन करने के कुछ नहीं रहेगा -

''माया सीधी नर्तकी, जब तक रहता दंभ,

उलट गई यदि नर्तकी, कीर्तन का आरंभ ॥''(१०)

जीवन की विडम्बना देखिए कि व्यक्ति जीवनभर यश, धन, दौलत के चक्कर में फंसा रहता है । यह सर्वश्रेष्ठ दिखना और बने रहना चाहता है किन्तु अंत में उसके पास कुछ भी शेष नहीं रहता ।

''तन - धन - पद - यश - नाम की नहीं रहेगी साख।

शेष बचेगी अन्त में, केवल मुट्ठी राख ॥''(११)

इस प्रकार कवि किशोर ने 'सात सोपानों' के माध्यम से जीवन के गूढ़तम रहस्यों को बड़े ही सरल और प्रभावी शब्दों में खुलासा किया है कहा जा सकता है कि किशोर सतसई में संक्षिप्त, गोपन, सारल्य, तारल्य, सांकेतिकता, लाघव, अर्थ गांभीर्य, सहजता, रमणीयता, लोकप्रियता, लोकरंजकता, श्रुति-सुखदता, चित्रात्मकता, शाश्वती और सम-सामयिकता का मंजुल मिलन हुआ है ।इसके साथ ही साथ अन्य सतसईयों की तुलना में यह सतसई यथार्थ परक रचना लगती है। इसमें न कही ज्यादा कल्पना की उड़ान है न आसमान के सितारें, चाँद, सूर्य आदि से सम्बन्धित ज्यादा बातें। हैं तो मिट्टी की महक, दारुणी गरीबी, कटू यथार्थ और दीन - हीन लोगों की अनुगूँज। मेरे अपने मतानुसार मैं यह कह सकती हूँ कि किशोर सतसई आज के मनुष्य के जीवन की संघर्ष - गाथा है।

****

संदर्भ सूची :-

१. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ.१००

२. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ.३९

३. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ.३५

४. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ.१२

५. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ.१९

६. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ.४४

७. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ.६७

८. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ.६७

९. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ.७२

१०. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ.९४

११. किशोर सतसई - डॉ. किशोर काबरा, शांति प्रकाशन, रोहतक, सन् १९९७ - पृ.११०

परिशिष्ट

अपनी बात

❖ एक साक्षात्कार - किशोरजी के साथ :-

मेरे एम.फिल. के शोधकार्य 'किशोर काबराजी के प्रबन्ध काव्य' तैयार करते समय दिमाग में अनेकानेक प्रश्न उठ रहे थे। तब मेरे शोध निर्देशक डॉ. गिरीशभाई त्रिवेदीजीने शंका - आशंकाओं का समाधान कर ही दिया था पर साथ ही कवि से भेट - मुलाकात भी करवा दी थी जिससे मेरा शोध कार्य सफल हो सका।

और फिर आगे Ph.D. के शोध कार्य संबंधी बात आयी। गुरु शौर शोध निर्देशक 'वही' शोध विषय भी वही थोड़ा परिवर्तन और नया।

काबराजी की सतसई कर काम करना मेरे लिए टेढी खीर सा काम लगा कयोंकि कहीं कोई संदर्भ ग्रंथ न मिले, न अन्य सामग्री तब पुनः 'आयो शरण तुम्हारी' कह कर काबराजी के पास दौडी। मेरी इस दौड़ में साथ दिया मेरी बहन शांति और मेरे पतिदेव क्रिष्ना ने।

किशोरजी के निवास स्थान पर जा कर कई-कई प्रश्न किये जिन का प्रत्युतर अत्यंत प्रेमभाव पूर्ण ढंग से आपने देकर मुझे लाभान्वित किया । कोटि कोटि प्रणाम॥

यहाँ पर प्रस्तुत है वह वार्तालाप।

देवी : आदरणीय गुरुजी ! आपकी बहुत प्रचलित 'किशोर-सतसई' पर शोध कार्य करने का अवसर मिला यह बात मेरे लिए गौरव की है। आज मैं आपसे कुछ संगोष्ठी करना चाहती हूँ। सबसे पहेले यही बात कहूँगी कि आप अपने जन्म स्थान, परिवार, बचपन, शिक्षा आदि के विषय में बताईए।

कविवर काबराजी उतर बताते है इनसे पहेले एक बात बतार्दू कि काबराजी मुझे हंमेशा 'देवी' की जगह 'दिव्या' ही कहकर पुकारते हैं। हमारे समाज में बचपने से ही बच्चे का नाम फूफी रखती है, लेकिन मेरा नामकरण 'देवी' तो था ही फिर भी उन्होंने बता दिया कि कभीभी अकेली 'देवी' नहीं होती। सरस्वती देवी,

शारदादेवी अपना नाम 'दिव्या' रख लो। इसलिए तब से आज तक डॉ. काबराजी मुझे 'दिव्या' ही कहते है। मुझे आनंद है।

किशोरजी : देखो दिव्या। आपने तो मेरी जन्मभूमि का स्मरण दिलाया। मेरा जन्म मध्यप्रदेश के मालवा अंचल में स्थित मन्सौर नगर में २६ दिसम्बर, १९३४ को हुआ। पौष कृष्णा ५, बुधवार, मीन लग्न, सिंह राशि और माध्याहन बुधार्क योग। माहेश्वरी परिवार, जो शैव और वैषण्व संस्कारों से पूर्णतः आपूरित और सुसज्जित रहा, उसमें श्री प्रभुलालजी काबरा के यहाँ माँ सरयूबाई की स्नेहमयी गोद में मैंने अपनी आँखे खोलीं। पड़ौस में एक विजय वर्गीय परिवार में रहता था, जिसके किसी बच्चे का नाम नन्दकिशोर था, मेरा नाम भी नन्दकिशोर रख दिया, जो घिसते-घिसते 'किशोर' रह गया। पिताजी निष्ठावान, कर्म और उग्र स्वभाव के, माँ भोली-भाली, सरल गैया जैसी। उग्रता और सरलता के मध्य मेरा बचपन बीता। दादाजी से वैचारिक मतभेद कोने के कारण पिताजी अलग रहने लगे थे। उनके जिद्दी स्वभाव के समझोतों और समाधान के स्वर को भी स्वीकार नहीं किया था, फलतः गरीबी और दारिद्रय को अपनी पूंजी मानकर मन्दसौर के निकट एक छोटे से गाँव में सामान्य सी दूकान लगाकर जीवन-निर्वाह करने लगे। मेरे दो बड़े भाई, बड़ी बहन और मेरे बाद होनेवाले शिशुओं के साथ हम सब प्राणी कष्टों की करुणा कथा के अश्रु निमज्जित पात्रों की तरह दैन्य के प्रवाह में बहते रहें, उगमगाते हुए चलते रहे। यही कारण था कि मैं किसी तरह इण्टर मीडिएट करके तैयार हुआ, तो पिताजीने साफ शब्दों में कह दिया, अब पढ़ाई बंध ! कमाई करो और पैट भरों मैंने कम्बल केन्द्र में सर्विस की फिर उसे छोड़कर शिक्षक बना और अपने अध्ययन को चालु रखते हुए, बी.ए., एम.ए. साहित्यरत्न और बाद में पीएच.डी. करके अपनी ज्ञान-पिपास को शान्त करता रहा।

देवी : गुरुजी, आपके जीवन - संघर्ष के बारे में कुछ बाते बताएँगे ?

किशोरजी : काबराजीने उसके जीवन-संघर्ष को लम्बी कहानी सुनाई। और ये सारी बातों वहीं रही जो पहले अध्याय में उसके व्यक्तित्व को लेकर है। इसलिए पहले अध्याय में 'जीवन-संघर्ष' का पूरा का पूरा वर्णन कर दिया है। इसलिए मैं यहाँ पुनरुक्ति नहीं करना चाहती।

देवी : आपका जीवन संघर्षमय रहा है, फिर भी आप स्वयं किता सफल मानते है?

किशोरजी : संघर्ष ही जीवन है, बिना संघर्ष हम जीना ही नहीं चाहते। संघर्षो से ही मुस्कुराना सीखा हूँ। अश्रुओं को मैंने आँखो से गिरने के पूर्व ही कविता के धागे में पिरोना सीख लिया है। जीवन के सभी क्षेत्रो में

मुझे संघर्ष करना पड़ा है। अचानक और अनायास मुझे तिनका भी नहीं मिला और मिलता तो कई चारा गाहों के कट जाने के बाद पर कष्ट, पीड़ा और वेदना को भी एक आनंद होता है। अगर मेरे साथ संघर्ष या कष्टों की थानी नहीं होती तो मैं कवि नहीं होता, ये मात्र अध्यापक बनकर रह जाता। कष्टों की व्यथा-कथा मेरे साथ नहीं होती तो मैं पढ़ भी नहीं पाता और छोटा - मोटा बनिया बनकर रह जाता। मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानता हूँ कि नियति ने मेरी झोली में पीड़ा का प्रसाद डाला है। वर पीड़ा जिसने मुझे अश्रु केशर में गला-गलाकर रत्न बनाया है, रत्नाकर बनाया है, एक अच्छी बात और यह रही कि कष्टोंने मुझे कटु नहीं बनने दिया। मेरे मनमें कड़वाहट नहीं रही, एक मीठा रस मेरे मन मस्तिक में हंमेशा धुलता रहा।

देवी : कवि जन्म से ही कवि होता है या कर्म से।

किशोरजी : मैं अपनी बात करुँ तो मैं जन्म से कवि हूँ। मेरे दादाजी - परदादा कवि नहीं थे पर पिताजी मैं कवि के कुछ अंश जरुर थे, वह कविता नहीं रचते थे लेकिन भजन गाते और लिखा करते। अतः मुझे पिताजी से मिल गया। कवि जन्मजात से कवि है वह मैं हूँ।

कुछ कवि कर्म से कवि बनते है। तुम कवयित्री बन सकती हो यदि तुम भावुक हृदय की हो तो हर छोटी चीज में भावुकता आ जाने का मतलब कवि से है। वैसे भी कविता वियोग से ही बनती है। तुम में किसी के दुःख को देखकर आँख में आँसू आये तो कवि बन सकती हो। किसी के कष्ट से परेशान व्यक्ति कवि हो सकता है । छंद, लय, काव्य-शास्त्र आदि जानने से कवि बन सकते है। कवि श्रम से, महेनत से बन सकता है। सुकवि बनने के लिए संस्कार, संवेदना, स्वाध्याय और समर्पण अत्यंत आवश्यक है।

देवी : कवि की सामाजिक भूमि पर आपके विचार किया है ?

किशोरजी : कविता हृदय को छूती है। कविता का आसार छोटा होता है। कविता सूक्ष्म है। वह मनुष्य के तेज हृदय पर घात करती है। साहित्य की हर विद्या में कविता श्रेष्ठ है। कविता पढ़कर सोचते हैं। हृदय को प्रभावित एवं पवित्र कर देते हैं। समाज सुधार कविता से ही हो सकता है। राम-राज्य का निर्माण कविता से ही हो सकता है।

देवी : कविता और आलोचना में क्या सम्बन्ध ?

किशोरजी : कवि हैं वह आलोचना नहीं करता और आलोचक कविता नहीं देता। कवि जो समीक्षा से बचना चाहिए। कवि को दूसरे से बचना चाहिए। कवि को भाषण और इधर-उधर की भटकन को छोड़ देना चाहिए।

देवी : साहित्यिक बिधाओं में आपको कविता ही क्यों ज्यादा पसंद है ?

किशोरजी : मुझे पद्य-गद्य दोनों मे रुचि है। अतः गद्य में रुचि नहीं गति है। मैंने साहित्यिक निन्ध भी लिखे हैं। मेरे ३२ निबंध हैं। मैंने १००० पृष्ठो में गद्य लिखा है। मेरा पीएच.डी. का विषय भी गद्य से सम्बन्धित हैं।

कविता में ज्यादा रुचि इसलिए है क्योंकि उसमें आनंद मिलता है। गद्य मेरी दूसरी स्त्री है और कविता मेरी माँ है। चाचियाँ बहुत सी हो सकती है जैसे निबन्ध, उपन्यास आदि। किन्तु माँ एक ही होती है जो मेरे जीवन में कविता से सम्बन्धित है। मेरा मूल स्वर कविता है। प्रबन्ध - चेतना बड़ी चीज है जो विस्तृत फलक पर दिखाई देती है। प्रबन्ध-चेतनावाला कवि बड़ी चीज को कह सकते हैं। गज़ल में भी मुझे ज्यादा रुचि है क्योंकि वह एक-दो घण्टें में खत्म हो जाती है। अतः यश भी मुझे कविता से ही मिला, पुरस्कार भी कविता से मिला। मुझे प्रबन्ध-चेतना का कवि माना जाता है।

देवी : हिन्दी साहित्यकारों में से आपके प्रिय साहित्यकार कौन हैं ? क्यों ?

किशोरजी : सुनो दिव्या। मैं हरिवंशराय बच्चन, शिवमंगलसिंह सुमन और दिनकर से ज्यादा प्रभावित रहा हूँ। क्योंकि गीत की द्रष्टि से दिनकर और उन्मुक्ता की द्रष्टि से बच्चन मेरे प्रिय साहित्यकार रहे है।

देवी : आपको काव्य रचने की प्रेरणा कहाँ से मिली और आपकी प्रथम रचना कब छूपी ?

किशोरजी : मेरे पिताजी प्रभुलालजी स्वयं कवि थे। कम पढ़े-लिखे होने पर भी उन्हें लयबोध था, गला अच्छा था, अतः अपने द्वारा लिखे गए भजन आदि लोगों को सुनाते थे या कथा-वार्ता-कीर्तन आदि के समय सार्वजनिकरुप से उनका गान करते थे। ये संस्कार मुझे अनायास ही मिल गए। बचपन में मुझे ऐसा लगता था, जैसे कोई अन्तर्लय भीतर गूँज रही है। छोटी-मोटी तुकबन्दियाँ करके हम अपने कुछ मित्रों के साथ मनोरंजन कर लिया करते थे। कक्षा ८ में जब वार्षिक समारोह के अवसर पर विद्यालयीन पत्रिका के प्रकाशन को सूचना मिली और छात्रों से रचनाएँ माँगी गई; तब मैंने भी टूटे-फूटे शब्दों में एक कविता लिखकर अपने अध्यापक

श्री मदनलालजी जोशी को दी । वे कविता देखकर प्रसन्न हुए। उन्होंने उसकी अशुद्धियाँ ठीक कीं, छंद सुधारा, लय को दुरस्त किया और मेरी पीठ ठोक कर कहा, 'किशोर ! तुम में कविता के संस्कार है। तुम कवि बन सकते हो। गुरुजी का वह वाक्य मेरा लक्ष्य बन गया। तब से लेकर आजतक कविता की साधना चल रही है। आगे भी चलती रहेगी।

देवी : आप अपने दो महाकाव्यों उत्तर - महाभारत और उत्तर रामायण के माध्यम से क्या संदेश देना चाहते है ?

किशोरजी : दिव्याजी, प्रारंभ में मैंने कोई महाकाव्य लिखने की योजना थोड़े ही बनाई थी। पुटकर गीत, गज़ल, अछादस, मुक्तक आदि लिखता रहा। पत्र-पत्रिकाओं में छपने और तीन - चार काव्य संग्रह प्रकाशित होने के बाद मित्रों के आग्रह से प्रबन्ध - काव्य की और उन्मुख हुआ। 'परिताप के पाँच क्षण' 'नरो वा कुंजरो वा' और 'धनुष-जंग' जैसे खण्डकाव्यों के बाद कलम में ताकत आ गई और महाकाव्यों के प्रणयन का श्री गणेश हुआ। 'उतर महाभारत' में पाँच पांडवों एवं द्रौपदी के हिमशिखरों पर अपने पूरे जीवन को पुनरावलोकन की कथा को मैंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर से मुक्ति पाकर आत्मा के परमात्म तत्व में विहीन होने की साधनायात्रा और उसकी प्रतीकात्मकता से जोड़ा है। यहाँ महाभारत की उत्तरकथा में जीवन की संवेदनाओं से जुड़े कई प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं, जो अतीत, वर्तमान और अनागत को स्वयं में समेटे हुए हैं। 'उतर रामायण' में सीता - परित्याग के कलंक को ढोनेवाले राम को मैंने निष्कलंक बनाने के लिए सीता के माध्यम से ही पूरी रामकथा की नवीन अवधारणा की है। इस तरह यह ग्रंथ 'सीतापन' बन गया है जो वाल्मीकि के ऋषि और कविरुप को एक गरिमा प्रदान करता है। मेरे तीसरे महाकाव्य 'उतर भागवत' में कृष्ण के पुरुषोत्तम रुप का मानवी सम्भावनाओं से जुड़ा सर्वभोग्य प्रस्तुत हो गया है जो दिव्य चमत्कारों से मुक्त रहकर हमें जीवन की आखस्ती प्रदान करता है।

देवी : आज हिन्दी कविता की क्या दशा एवं दिशा है ?

किशोरजी : आज हिन्दी कविता का संक्रमण काल चल रहा है। वह एक और जनवादी कटघरे से मुक्त होने के लिए छटपटा रही है और दूसरी और एस्ट्रेक्ट होती हुई अपनी गद्यलय से छुटकारा पाने के लिए छंदो की और दौड़ रही है। दलित कविता मात्र गाली - गलौच बनकर रह गई है और ललित कविता फिल्मी ढंग के गीत बनकर कवि सम्मेलनीय ढंग की गज़लेंबनकर, नुकबन्दियाँ बनकर सड़कों पर उत्तर आई है। इनके मीडियाने

सस्ती प्रसिद्धिने, अर्थतंत्र के आकर्षणने कविता की आत्मा को दो कोड़ी के भाव बेच दिया है। अब कविता या तो वाणी-विलास है या पैसा कमाने का समझौतावादी साधना साधना की तरह, पूजा की तरह, उपासना की तरह कविता को कौन लिख रहा है ? आजतक कविता सबसे अधिक जिद्दी जन ही है और वही सबसे अधिक नीचे गिर रही है। कहानी - उपन्यास संभल कर चला है, आत्मकथा - लघुकथा बड़ी सतर्कता से अपनी जुगत लगा रहे हैं, पर कविता का कोई ठौर-ठिकाना नहीं है। वह दशकों में बँट गई है । कविता का राष्ट्रीय चरित्र नहीं उभर रहा है।

देवी : आप पौराणिक महाकाव्यों की प्रासंगिकता को आजके संदर्भ में किस प्रकार देखते हैं ?

किशोरजी : समय को हम विभाजीत नहीं कर सकते । वह एक दूसरे से जुड़ा रहता है। काल तो अणाड होता है, जिसे हम खण्ड-खण्डकार के देखते है, मेरे पौराणिक महाकाव्यों में घटनाओं का आधार चाहे अतीत का है, पर संदर्भ सारे वर्तमान के हैं, भविष्य के हैं, मुझे आज की प्रत्येक समस्या में बीते कल की घटनाओं एवं आगे आनेवाले कल की संभावनाओं की ध्वनियाँ सुनाई देती है। उदाहरणके रुप में मैंने 'परिताप के पाँच क्षण - में स्त्री - पुरुष के सह सम्बन्धों और जड़ता से युक्त सत्याग्रहों को आधार बनाया है। 'नरो वा कुंजरो वा' में अर्द्धस्य एवं पूर्ण सत्य के संघर्ष को दिखाकर शिक्षक के दायित्व को रुपायित किया है। 'धनुषभंग' में राजन्य संस्कृति और जन-संस्कृति के अंत संघर्ष को बहिर्प बताया है, जो आज की मूल समस्या है। 'उतर महाभारत' में काम के उर्ध्वीकरण और षड्ऋतुओं के विवश को तथा षड्दर्शनों की प्रगति का आधार दिया है। 'उतर - रामायण' में व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्र और त्याग तथा समर्पण के गणित को राम तथा सीता के माध्यम से समझाया है। 'उतर भागवत' मैं सामान्य पुरुष के पुरुषोत्तम के छिपे होने का कृष्ण के माध्यम मे समझा पाया है। देवत्व एवं मानवीयता के इस घर्षण में मानव की सदा विजय होती है- यह भी इस कवि का संदेश बनता है।

देवी : आपके जीवन से जुड़ा कोई ऐसा प्रसंग, जो आज भी आपको उद्वलित करता है, इसके बारे में बताएँ ?

किशोरजी : व्यक्ति के जीवन में कई घटनाएँ बनती है, यह बात स्वभाविक है। लेकिन कई प्रसंग ऐसे आए हैं, जो मुझे उदेलित करके चले गए हैं। लम्बी छाप छोड़नेवाले प्रसंग भी कई है, कई मीठे हैं, कई कड़वे, कई तीखे

हैं। मन्दसौर स्थित मेरे मित्र रामानुजादास मंत्री के साथ यदि मेरी आत्मीयता नहीं होती, जीवन की कटुता में मधुरता नहीं आ पाती, क्योंकि वह मित्र सदा ही सम पर जीता रहा और आज भी जीता है। मेरे प्रिंसीपल श्री मदनलाल गुप्त की विराटता का मैं अंहमन्यता मानता रहा और उसी पागलपन में मैं उनका अपमान भी करता रहा, उनकी उपेक्षा भी करता रहा। आज पछताता हूँ कि मैं कही गलत था। मुझेसे काम लेकर कई व्यक्ति पक्षी की तरह पंख फैलाकर उड़ गए, मेरी विपति के समय उनके चहेरों पर व्यंग्य की रेखाएँ उभरीं पर अब यह सब अतीत में चला गया है। मन पर पुराना बोझ अधिक नहीं रहा, क्योंकि वह सब लेखन के माध्यम से किसी पात्र का सहारा लेकर बाह्य भोग्या और स्थाही में फैलकर लुप्त हो गया। अब कोई अंश नहीं है।

देवी : वर्तमान शोध-प्रविधि के बारे में आपके क्या विचार है।

किशोरजी : दिव्या ! यह दुःख की बात है कि आज शोध का स्तर गिरता जा रहा है। शोधार्थी कम कार्य करते है। शोध आज साहित्य में व्यावसायिक स्तर पर आ गया है। जो छात्र पढ़ाई में कम महेनत करता है वह शोध में कैसे गरिमा ला सकता है। आज हमारे यहाँ शोध गिरा है उसके पीछे शोधार्थी तो जिम्मेदार है ही साथ ही साथ प्राध्यापक, निर्देशक और व्यवस्थातंत्र भी उतने ही जिम्मेदार हैं। ये लोग बदनामी की परवाह नहीं करते। वर्तमान शोध से मैं ज्यादा संतुष्ट नहीं हूँ। शोधकार्य के लिए धैर्य, समर्पण, कर्मठता आदि गुणो की आवश्यक्ता रहती है वे दुर्लभ हो गए है। डिग्री प्राप्त करने और डिग्री के बाद पद-प्रतिष्ठा को केश करने का साधन रह गया है। शोध-कार्य शोध-स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है विभिन्न विश्व विद्यालयों में घड़ल्ले से काम हो रहा है।

अब तो शोध-प्रबन्ध लिखने का धंधा भी कालापदा चिन्ता ही है। थोडा बहुत परिवर्तन करके एक ही ग्रंथ कई विश्वविद्यालयों में सबमिट हो रहा है। क्योंकि उसे छपना नहीं है, अतः डिग्री मिलते ही वह अलमारी में बंध हो जाती हैं। शोध से जुड़े सभी आचार्यो को इस विषय पर राष्ट्रीय - उपनिषद बुलानी चाहिए और मिल बैठकर इस समस्या का समाधान करना चाहिए।

देवी : आपके कविताओं का जीवन-आदर्श क्या है ? आप अपनी काव्यों के माध्यम से पाठकों का क्या कहना चाहते है ?

किशोरजी : मैं सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का उपासक हूँ। परम सत्य को शाश्वत शिवत्व के लिए अद्वितीय सौन्दर्य के साथ व्यक्त किए भावात्मक एवं लयात्मक विचारों को मैं कविता सहता हूँ। संक्षेप में कहें तो कविता सत्य की सुन्दरतम शिवरुपा भाव दशा है। मैंने कविता को कभी भी फैशन की तरह या मन के संत्रास को बाहर निकालकर हलका होने के लिए काम में लाए गए किसी साधन की तरह नहीं माना। मैंने कविता को नियति का परम उपहार माना। मैंने कविता को पूजा की तरह, उपासना की तरह, समर्पण की तरह एक नैतिक कर्तव्य की तरह जिया है। प्रारंभ में अवश्य ये विचार गहरे नही थे पर मूल उद्देश्य उस समय भी अन्तर्मन मैं यही कहा था। मैं कविता के माध्यम से समाज को, राष्ट्र को, विश्व को और इन सब से ऊपर समय को काल जो कुछ दे सकूं तो अपने जीवन को सार्थक मानूँ। यह भाव हमेशा मन में रहा है। कविता से यश मिलेगा, धन मिलेगा, पद्म मिलेगा - ये सब गौण विचार आए और चले गए, पर मैं शाश्वत सत्य को सुन्दरता के साथ शिवत्व के लिए मानव कल्याण के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ - ये भाव सदा ही मन में बने रहे। मैं सौभाग्यशाली हूँ कि मैं कवि हूँ, कि मुझे अच्छे पाठक मिले, सौ भाग्यशाली हूँ कि मुझे अच्छे समीक्षक मिले, अच्छे शोधार्थी मिले अच्छे प्रकाशक मिले।

देवी : जीवन में श्रेष्ठ समय कौन - सा रहा ?

किशोरजी : मेरा जीवन संघर्षो की लम्बी गाथा है। उसमें आराम या निश्चितता का कोई समय नहीं रहा । मैं पहले पढ़ाई मैं, फिर सर्विस, पढाई और परिवार पालन में और बाद में लेखन में व्यस्त रमहा। आज भी लेखन, साधना एवं सेवाकार्यो में व्यस्त हूँ। मैं ऐसा मानता हूँ कि इस द्रष्टि से मेरा पूरा जीवन ही श्रेष्ठ रहा। क्योंकि प्रतिपल में आगे बढ़ने का पूरे उत्साह के साथ प्रयत्न करता रहा। वैसे बाहरी द्रष्टि से देखा जाये तो १९५५ से १९६८ तक मध्यप्रदेश में की गई नौकरियों के मध्य गाँवो में व्यतीत किया गया समय, १९६८ से १९८८ तक केन्द्रीय विद्यालयों में निर्दिन्द्र और निश्चल मित्रों के मध्य गुजरा समय आनंदमय रहा भीतरी दृष्टि से देखा जाये तो इस समय साधना उपासना और लेखन में जो समय रहा है वह श्रेष्ठतम है।

देवी : आपके जीवन में कटुता के समय में आपके भाव कैसे रहे ?

किशोरजी : मेरे जीवन में कटूता के कई प्रसंग आये नौकरियों में निरंतर प्राचार्यो में संघर्ष चला। मैं सत्य के लिए अहना था, कटुता के साथ बदले में कटुता मिलती थी। परिवार में भी अर्थ और अहं को लेकर इकराहट होती थीं। गुरुओं से भी विषय मिला है। शिष्यों से भी उपेक्षा मिला है, कुछ में मेरी मूर्खता थी, जिद्दीपन था, दंभ था लेकिन लोग मुझे बहुत देर से पहचान पाये यह सत्य है, हाँ मैं इस मूखर्तापूर्ण चित्रण में रहा कि लोग मुझे जल्दी पहचाने अब वह मूर्खता नहीं है। अब कटुता के प्रसंग नहीं आते और सामनेवाले के तो जबरदस्ती कुछ छटुताएँ आती भी है तो मैं शान्त रहता हूँ। मुस्कुराता रहता हूँ, भीतर स्थिर रहता हूँ। कटु-प्रतिक्रियाएँ नहीं रहता थोड़े समय के बाद सब ठीक हो जाता है।

देवी : जीवन में किसी कमी का अहसास ?

किशोरजी : मेरा जीवन अभाव से ही बीता। समय पर कुछ प्राप्त नहीं किया। यही सत्य है कि प्रारंभ में मेरे स्वभाव में ही मैं कटुता, जिद्दीपन, मुँह फर चरित्र और बड़बोलापन अधिक था, शिक्षा धीरे-धीरे मिली, नौकरी में प्रमोशन धीरे-धीरे मिला, यश भी रेंगते - रेंगते मिलता। अतः मन में अभाव हरबार रहा। जब - जब मैंने किसी को पाना चाहा, दूर-दूर रहा, जब उपेक्षा की या मौन हो गया तो वह आकर मिला। त्याग से ही प्राप्ति होती है यह मैं अब सीख पाया हूँ और भीतरी अभाव, भक्ति और ज्ञान से ही भरा यह समझ पाया हूँ कि अब कोई अभाव नहीं है, क्योंकि किसी से कोई अपेक्षा नहीं है।

देवी : जीवन की उपलब्धि किसे समझते हों ?

किशोरजी : मैं मानसिक संतोष और आध्यात्मिक आनंद को जीवन की परम उपलब्धि मानता हूँ। बाहरी सारी यात्राएँ भागदौड़ संघर्ष आपाधापि हर समय ठीक है। आदमी से कहीं न कहीं रुकना ही पड़ता है। बहुत भाग-दौड़ करने पर भी जब हम थमते हैं तो पता लगता है कि हम वहीं खड़े है। जहाँ से यात्रा प्रारंभ का था। जीवन को वरदान की तरह अविरत की तरह जीना ही बुद्धिमानी है, और बिखरे हुए मोतियों की चल-चपला से क्षणिक प्रकाशमय धागे में पिरो लेना ही उपलब्धि हैं। गंगासती ने ठीक ही कहा कि - बिजली ने झबकारे मोती पिरोने पानपाई।

देवी : विद्यार्थी जगत एवं साहित्य जगत के लिए क्या संदेश है ?

किशोरजी : विद्यार्थीओं को एक ही बात कहना चाहता हूँ कि खूब मेहनत करें, सही मेहनत करें, इमानदारी से मेहनत करें निरन्तर मेहनत करें, महेनत कोई विलम्ब नहीं है, जीवन में 'शार्ट कट' कभी न अपनाएँ कल देर से सही मिलता अवश्य है। कोई काम व्यर्थ नहीं जाता।

साहित्यकार मित्रों से कहना चाहता हूँ कि जमकर लिखें, ईमानदारी से लिखें, शाश्वत लिखें, अनवरत लिखें, छिछरी लोकप्रियता में न बहे, परम सत्य का अनुभव करके लिखें। अपनी भीतरी केन्द्र को पहचानकर विधा का चुनाव सरें। कई गाडियों में सवार न हो, रोज-रोज विधान बदलें। हृदय को सिन्दुमति को सिर्फ शारदा की कृपा को स्वाति सुविचारों को जलबिन्दु और कविता को मोती समझे फिर उन्हें शाश्वत चित्र या दर्शन के धागे में पिरोकर जनता जनार्दन के गले में पहनाएँ।

देवी : सच्चा मित्र आप किसे समझते हैं ?

काबराजी : जिस पर हम स्वयं से भी अधिक विश्वास कर सके और जिसे गोपनीय से गोपनीय बात कर सके, बड़ी से बड़ी विपत्ति में जो छाया की तरह साथ खड़ा हो जाये वह सच्चा मित्र है। ऐसे मित्र जिसे मिले परम सौभाग्यशाली हैं। ऐसे मित्र ज्यादा नहीं होते एक-दो भी मिल पाये तो बेड़ा पर हो जाता है।

पर आप स्वयं दूसरों के कैसे मित्र हैं ? स्वयं आप सच्चे मित्र हैं या नहीं ? यदि नहीं तो आपको सच्चा मित्र मिलेगा ही नहीं। मतलब यही कि आप जैसे है वैसा आपका मित्र होगा। आप अपेक्षा करेंगो तो यह भी करेगा फिर व्यापारी जैसा सम्बन्ध होगा। आप केवल देते रहेंगे तो आपको निरंतर मिलता रहेगा। आप सोचेंगे कि मेरे मित्रने मेरे लिए क्या किया ? तो सब गुड़ गोबर हो जायेगा। यदि आप यह सोचते हैं कि मैंने अपने मित्र के लिए बिना किसी स्वार्थ के, शर्त के क्या दिया ? उस दिन कम से कम आप सच्चे मित्र की श्रेणी में आ जायेंगे ?

देवी : 'सतसई' लिखने की प्रेरणा कहाँ से मिली ? सतसई को आपने सात सोपानों में विभाजित किया, ऐसा करने के पीछे आपका मूल मंतव्य क्या था ?

किशोरजी : गीत, गज़ल, अछांदस तथा खण्डकाव्य - महाकाव्य लिखते समय छोटे - छोटे विचारों के स्फूलिंगों का आक्रमण मुझ पर सदा होता रहा है। जब वे कथात्मक रुप से मेरे पास आते तो मैं लघुकथाएँ

लिख देता और इस तरह तीन लघुकथा संग्र 'एक चुटकी आसमान', 'एक टुकडा जमीन' और 'बूँद-बूँद कडवा सच', 'प्रकाशित हो गये' लेकिन जो विचारात्मक एवं चिन्तात्मक तरंगे आती थीं, उनका कोई उपयोग नहीं हो पाता था। वे जुगनू की तरह चमककर लुप्त हो जाती थीं। उन में मेरे अनुभवों का निचोड़ भी होता था। आखिर एक दिन ऐसा कि दोहा-छंद पर सवारी करके कई विचार मेरे दरवाजे पर मेहमान बनकर आ गए हैं। फिर तो लगभग छह माह तक यही काम रहा कि प्रत्येक विचार दोहे की शकल में ही आया। 'किशोर-सतसई' इस तरह आकार लेती रही। ७०७ दोहोंवाली इस कृति के प्रकाशन के पूर्व मुझे ऐसा हुआ कि इसको सात सोपानों मे बांटा जा सकता है, क्योंकि इसमें प्रकृति, पुरुष, परिवेश, पर्यवेक्षण, परिलेखन, पर्यालोचन और परिणति जैसे मुख्य शीर्षको के आधार पर विचारों तथा भावों का गुंजन हुआ है। वैसे भी जीवन का प्रारंभ प्रकृति से होता है और उसकी अन्तिम परिणति परमतत्व के साथे एकाकाररुप में होती है। मैंने जीवन, जगत और जगन्नति से जुड़े सभी विषयों को इसमें लिया है। मुझे ढंग समझने के लिए इस सतसई को पढ़ना आवश्यक है।

****

ग्रंथानुक्रमणिका

❖ आधार ग्रंथ - हिन्दी

(१) किशोर सतसई - १९९७ - शान्ति प्रकाशन रोहतक. (मुख्य आधार ग्रंथ)

(२) जलते पनघट : बुझते मरघट (१९७२) अभिनव भारती, अहमदाबाद ।

(३) साले की कृपा (१९७५) अभिनव भारती, अहमदाबाद ।

(४) सारथी मेरे रथ को लौटा ले (१९७९), अभिनव भारती, अहमदाबाद ।

(५) टूटा हुआ शहर (१९८३), साहित्य सहकार, दिल्ही ।

(६) ऋतुमती है प्यास (१९९०), चिन्ता प्रकाशन, दिल्ही ।

(७) हाशिये की कविताएँ (१९७५), कर्णावती प्रकाशन, अहमदाबाद ।

(८) मैं एक दर्पण हूँ (१९९५), अविराम प्रकाशन, दिल्ही ।

(९) चंदन हो गया हूँ (१९९९) पश्चिमांचल प्रकाशन, अहमदाबाद ।

(१०) उतर महाभारत (१९९०), अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ही ।

(११) उतर रामायण (१९९८), अविराम प्रकाशन, दिल्ही ।

(१२) परिताप के पाँच क्षण (१९७९), स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद ।

(१३) नरो वा कुंजरो वा (१९८४), साहित्य सहकार, दिल्ही ।

(१४) रीतिकालीन काव्य में शब्दालंकार (१९७५), जवाहर प्रकाशन, मथुरा ।

❖ परिशिष्ट - ब :

❖ सहायक ग्रंथ

(१) डो. विनय मोहन शर्मा, हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास ।

(२) डो. (श्रीमती) ओम शुकल, हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विलास ।

(३) डो. रामेश्वरलाल, खंडेलवाल, जयशंकर प्रसाद - वस्तु और कला ।

(४) डो. ब्रज किशोरसिंह पद्माकर का बिम्बविधान ।

(५) डो. सतिष शर्मा, महादेवी का बिम्बबोध और प्रतीक सृजन ।

(६) डो. स्नेहलता श्रीवास्तव, हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परंपरा ।

(७) डो. पुष्पा बंसल, काव्यशास्त्र - हिन्दी साहित्य चिन्तन ।

(८) डो. शंभुनाथ पांडेय, रस, अलंकार पिंगल ।

(९) डो. सूर्यप्रकाश विद्यालंकार, समकत्रयः आधुनिकता और परंपरा ।

(१०) डो. सुधाकर पाण्डेय, कृपाराम, ग्रंथावली ।

(११) डो. सुधाकर पाण्डेय, बिहारी सतसई (लाल चन्द्रिका) ।

(१२) श्यामसुन्दर दास, सतसई समक, भूमिका से ।

(१३) डो. शिवनन्दनकपूर लेख - समयगणना केविभिन्नमान संस्कृत अंक - १९८१।

(१४) ना. प्र. पत्रिका, वर्ष, ५६, अंक - ३ - ४, संवत - २००८ ।

(१५) श्रीधर वासुदेव सोहोनी; लेख, कालिदास, हाल सातवाहन और चन्द्रगुप्त द्वितीय।

(१६) डो. हरिराम आचार्य, महाकवि हाल और गाथा सप्तशती ।

(१७) ऋग्वेद - १ / १२३ / १० (कमनीय कुमारी के समान अलंकृत वेष में फलदायी - सूर्य के पास जाकर वह युवती मुस्काती हुई अपना वक्ष अनाव्रत कर देती है ।)

(१८) यास्क निष्कतक, श्लाक संख्या ।

(१९) जगन्नाथ भानु, छन्द प्रभाकर

(२०) डो. ब्रह्ममित्र अवस्थी, अलंकार कोश ।

❖ <u>अंग्रेजी</u>

(२१) ए. अप्पाडराय द. सब्सटेंसिस ओफ पोलिटिक्स ।

(२२) डो. आर. जी. भंडारकर - अर्ली हिस्ट्री ओफ दि दकखन ।

(२३) डो. सी. डे. लीविस दि पोइटिक इमेज ।

परिशिष्ट - क

क्रम	पुस्तक का नाम	संपादक	प्रकाशन - वर्ष
१	वृहद हिन्दी कोश	कालिदास प्रसाद	ज्ञान मंडल लिमिटेड बनारस-१ दि.सं.
२	संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर	--	नागरी प्रचारिणि सभा काशी
३	हिन्दी साहित्य कोश	धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञान मंडल वाराणसी, वि. २०२०
४	बड़ा कोश (हिन्दी - गुजराती)	प्रा. रतिलाल सा. नायक	अक्षरा प्रकाशन - ४२८, १५ जुलाई, २००१.

परिशिष्ट - ड

क्रम	पत्र-पत्रिका का नाम	संपादक	प्रकाशन - वर्ष
१	ताम्रीलोक	घनश्यामप्रसाद सनाढ्य	१६ जुलाई-२००७